नानक सिंह

पाप की छाया

उपन्यास

पाप की छाया

उपन्यास

नानक सिंह

एक दुर्घटना

"इतनी जल्दी इसको क्या हो गया है ? अभी तो यह भला-चंगा था।"

"आधा घण्टा भी नहीं हुआ, जब मैंने इसे देखा था। तब भी रोज़ की तरह यह आश्रम के 'साइन बोर्ड' को बड़े ध्यान से पढ़ रहा था।"

"बेचारा, कितनी अचानक मौत मरा है। क्या पता कुछ खा लिया हो ?"

"खाना क्या था इसने, पहले ही मरा हुआ था। लोग कहते हैं यह पागल था। पर बहन, मुझे तो इसमें पागलपन का कोई भी लक्षण दिखाई नहीं देता था। कई दिनों से यह दरवाज़े पर आकर खड़ा हो जाता था और घण्टों बोर्ड को पढ़ता रहता था। माता जी ने भी कल कहा था कि कोई पागल है।"

"परसों सायंकाल को जब यह दरवाज़े के आगे लेटा हुआ था तो पिता जी उससे टकरा गए थे और गिरते-गिरते बचे थे, पर उन्होंने बदले में इसकी पीठ सहलाते हुए पूछा था, 'महात्माजी, कहीं चोट तो नहीं आई ?' तुझे तो पता है कि वह किसी की बात का जवाब नहीं देता था।"

"अच्छा अब यह तो हो गया। अब पिता जी को जल्द खबर करनी चाहिए। इस तरह बेचारे की लाश आश्रम के दरवाज़े के आगे······।"

"आश्रम का चौकीदार उनकी कुटिया की ओर गया है।"

उपरोक्त वार्तालाप करने वाली इसी आश्रम की निवासिनें हैं। लाश के चारों ओर भीड़ जमा होती जा रही है। समय प्रातःकाल का है।

थोड़ी ही देर में भीड़ इतनी बढ़ चुकी थी कि आश्राम के बड़े दरवाज़े का रास्ता बिलकुल बन्द हो गया था।

उसी समय दूर से अधेड़ आयु के एक महात्मा अपनी स्त्री सहित इधर आते दिखाई दिए। उनको देखते ही सारी भीड़ पीछे हट गई। सबने आदरपूर्वक उन दोनों को लाश तक पहुंचने में सहायता दी। आश्रम की स्त्रियों ने उन्हें घेर लिया और 'पिताजी' तथा 'माताजी' के सम्बोधन के साथ उन्हें, उस मृतक के बारे में बताने लगीं।

आश्रम के प्रबन्धक महात्माजी सचमुच ही एक पहुंचे हुए व्यक्ति मालूम होते थे। उनकी आंखों और चेहरे से शान्ति टपक रही थी। उनके स्वच्छ, उज्ज्वल और कांतिमय चेहरे को देखते ही हृदय में उनके प्रति श्रद्धा जागने लगती थी। उनसे बातें करने पर लगता था जैसे उनके मुंह से पुष्प-वर्षा हो रही हो।

अमृतसर के लोग इस जोड़े की देवी-देवता के समान पूजा करते थे। 'शान्ति निवास आश्रम' के लिए हजारों रुपये के खर्च का भार इसी शहर पर था। परन्तु, महात्माजी ने स्वयं कभी भी किसी से एक पैसा भी नहीं मांगा था। फिर भी आश्रम का खजाना हमेशा भरा रहता था।

इस आश्रम को खुले लगभग अठारह वर्ष हो गए थे। लोगों का विचार है कि महात्माजी और उनकी साथिन ने अपनी सारी जमा पूंजी को खर्च कर, किसीकी याद में इस आश्रम की स्थापना की थी। परन्तु, अब इसका सारा खर्च नगर-निवासियों ने अपने ऊपर ले लिया था।

यहां पर लगभग पचास स्त्रियां रहती हैं, जिन्हें मानव-मात्र की सेवा के लिए हर प्रकार की शिक्षा दी जाती है तथा जिनका मुख्य उद्देश्य ही सेवा-भाव है। शहर के कई छोटे-छोटे अस्पताल इसी आश्रम के अधीन चलते हैं।

आश्रम में रहनेवाली सभी स्त्रियां, महात्माजी एवं उनकी साथिन की प्रेरणा से ऐसे स्थानों से लाई गई थीं जिन्हें 'नरक-कुण्ड' अथवा 'पाप की दुनियां' कहना ही अधिक उपयुक्त होगा। आज वे पवित्रता की मूर्तियां बनी हुई थीं, परन्तु कभी वे पाप अथवा दुराचार का एक रूप थीं।

मृतक की दयनीय दशा उसके फटे हुए कपड़े, बढ़े हुए बाल और मिट्टी से लथपथ शरीर को देखकर दोनों दुःखी हो उठे।

लाश के समीप बैठते हुए महात्माजी के हृदय से दुःख भरी आवाज निकली, "आह, अन्त में यह चला ही गया।"

भीड़ में से कुछ लोगों ने पूछा, "स्वामीजी, क्या आप इसे जानते हैं, यह कौन था?"

"भाइयो! कुछ पता नहीं" महात्माजी ने भीड़ से कहा, "कई दिनों से यह आश्रम के दरवाज़े पर खड़ा देखा जाता था। बहुत बार इससे भोजन और पानी के लिए भी पूछा था, परन्तु इसने कभी भी न तो कुछ लिया था और न ही यह बोला करता था। शायद इसका दिमाग खराब था। तभी तो घण्टों तक साईन-बोर्ड की ओर टकटकी ......।"

बात कहते-कहते महात्माजी एकदम रुक गए। सिसकने की आवाज़ उनके कानों में पड़ते ही उनका ध्यान भीड़ से हटकर अपनी साथिन की ओर चला गया।

मृतक की दायीं बाजू पर खुदे हुए अक्षरों को निहारती हुई वह रो रही थी।

"हैं!" महात्माजी ने आश्चर्य में साथिन से पूछा, "आप रो रही हैं?"

वह बोली कुछ नहीं, केवल मृतक की बाजू पर खुदे अक्षर उसने महात्माजी को दिखाए।

महात्माजी ने बड़े ध्यान से उन अक्षरों को देखा। उनका चेहरा गम्भीर हो उठा। इतना गम्भीर कि आंखों से टप-टप आंसू झरने लगे और गहरी सांस भरते हुए बोले, "भगवान! तेरी लीला अद्भुत है।"

भीड़ में के बहुत सारे लोग महात्माजी के श्रद्धालु थे। बहुत सारे ही क्यों, कुछ परदेसियों को छोड़, शेष सब ही महात्माजी तथा माताजी की इस दशा को देख द्रवित हो उठे और उनका ध्यान लाश से हटकर उनकी ओर खिंच गया। वे उनसे तरह-तरह के प्रश्न पूछने लगे।

इसी समय आश्रम खुलने की घण्टी बजने लगी। वहां खड़ी सभी स्त्रियां बारी-बारी से पिताजी और माताजी को प्रणाम कर अन्दर चली गई।

किसी भी प्रश्न का जवाब देने से पूर्व महात्माजी ने लाश को भीतर ले जाने का संकेत किया। तुरन्त ही आदेश का पालन किया गया।

बहुत-सी भीड़ तो तितर-बितर हो चुकी थी, परन्तु कुछ लोग

लाश के पीछे-पीछे आश्रम में पहुंच गए थे।

इसके पश्चात मृतक के दाह-संस्कार का प्रवन्ध किया जाने लगा।

महात्माजी की साथिन उसी प्रकार गम्भीरता की मूर्ति वनी हुई थी। लगता था जैसे पुरानी यादों ने उसके हृदय में तूफान जगा दिया हो।

"स्वामीजी ! यह कौन था?" फिर कई प्रश्न उठे। उत्तर में महात्माजी ने हाथ से सवको वैठ जाने का इशारा किया।

सभी वैठ गए। एक घनवान व्यक्ति इन सवसे आगे आकर वैठ गया। उसके जीवन पर महात्माजी की संगत का विशेप प्रभाव पड़ा था। मृतक का परिचय जानने के लिए वही अधिक उत्सुक दिखाई देता था।

महात्माजी उसे सम्वोघित करके वोले, "सेठ रामरतनजी ! आप तो मेरे पिछले जीवन से अच्छी तरह परिचित हैं।"

आदर के साथ हाथ जोड़ और नीची निगाह किए हुए वह कहने लगा, "स्वामीजी ! भगवान के लिए पिछली वातों को वार-वार न दोहराइए। संसार में कौन ऐसा है, जिसने पाप नहीं किए। यह कोई कम है कि आपने अपने अन्तिम दिनों में जीवन को इतना ऊंचा और पवित्र वना लिया है ? अपने साथ आपने दूसरे हज़ारों लोगों की आत्माओं को भी वदल दिया है। इतना ही नहीं माताजी ने तो कमाल ही कर दिया है, जिन्होंने अपना और आपका सारा घन खर्च करके इस महान आश्रम की स्थापना की है। आज इस आश्रम की इन देवियों को देखकर कौन कह सकता है कि कभी ये रामवाग जैसे गन्दे मुहल्ले में वेश्याओं के रूप में रहा करती थीं।"

महात्माजी का घ्यान इन वातों की ओर न था। वह सोच रहे थे, उस अभागे मृतक का यह भयानक अन्त। फिर एक गहरी सांस भरते हुए वह वोले, "सेठजी ! मेरे उन पापों के वदले यह सव कुछ, कुछ भी नहीं है। मैंने जो-जो पाप किए हैं, खासकर (लाश की ओर देखते हुए) इस अभागे को मित्र वनाकर जिस तरह वरवाद किया है, इसका प्रायश्चित्त मैं सात जन्मों में भी नहीं कर सकता। इस वेचारे का अन्त देखकर आज फिर से वह दृश्य मुझे याद आ गया है—एक देवी की मौत का। मेरे कानों में इस समय भी पिस्तौल की आवाज़ गूंज रही

है और खून से लथपथ उस देवी की सूरत मेरी आंखों के आगे घूम रही है। वह अभागा यही मृतक, पिस्तौल का फायर करके किस समय आंखों से ओझल हो गया। किसी ने भी इसपर ध्यान न दिया। आह! आज बारह वर्षों के पश्चात मैंने इसको पहचाना है। यह वही था, मेरे हाथों मिटने वाला अभागा। ओह भगवान! मैं इस भयानक दृश्य का और अधिक नहीं देख सकता!" कहते हुए महात्माजी ने दोनों हाथों से अपना चेहरा ढक लिया।

सुनने वालों की समझ में यह पहेली तनिक भी नहीं आई। वे सभी भयभीत और व्याकुल हो रहे थे।

"स्वामीजी! यह क्या मामला है? विस्तार से बताइए।" सेठ ने बड़ी तेजी और उतावलेपन के साथ पूछा। पास बैठे सभी लोग समझ गए कि इस मृतक के जीवन के साथ महात्माजी का कोई गहरा सम्बन्ध है। इस उलझन को सुलझाने के लिए सभी प्रश्न-चिह्न बने महात्माजी की ओर देखने लगे।

महात्माजी की उपरोक्त बात के समाप्त होते ही इनकी साथिन अपनी आखें पोंछती हुई और गहरी सांस लेते हुए बोली, "उस देवी और इस बेचारे की मौत के लिए जिम्मेदार मैं हूं। आपका तो इसमें रुपये में से चार आने भी दोष नहीं है।"

महात्माजी उदास भाव से बोले, 'पर आपको भी प्रेरणा तो मैंने ही दी थी, इस बेचारे को फांसने के लिए।"

सुनने वालों में से एक हाथ जोड़कर बोला, "स्वामीजी! पिछली बातों को छोड़िए। हमारे लिए आप दोनों इस युग के शिवजी और पार्वती हैं, पर यह कौन था? इस बारे में कुछ···।"

महात्माजी बीच में ही बोल उठे, "भाई साहब! इस बेचारे का परिचय इतना छोटा नहीं कि घण्टे-दो घण्टे में दिया जा सके। इसका पूरा परिचय मैंने एक पुस्तक के रूप में लिखकर रखा हुआ है। मैं चाहता हूं कि जो हमारे साथ घटित हुआ है और किसी के साथ न घटे। मैं उस पुस्तक को, समय मिला तो, छपवाकर दुनिया के लोगों को बताऊंगा कि पाप का अन्त क्या होता है, अगर तुममें से कोई उसे छापने का बीड़ा उठाना चाहता है तो यह बड़ा ही परोपकार का काम होगा।

कई भूले-भटकों और दुराचार में फंसे हुओं के लिए यह पुस्तक पथ-निपुण, पथ-प्रदर्शक का काम देगी।"

सुनते ही इस शुभ काम को सम्भालने के लिए कई लोग तैयार हो गए।

महात्माजी ने अन्दर जाकर एक बहुत ही पुराना लकड़ी का सन्दूक खोला और उसमें से एक पुरानी पाण्डुलिपि निकालकर ले आए।

बाहर आकर उन्होंने श्रोताओं के आगे उसे रख दिया और बोले, "आपस में निर्णय कर लीजिए कि इसे कौन प्रकाशित कराएगा।"

पुस्तक के पहले पृष्ठ पर लिखे हुए मास और सन् पढ़ने से ऐसा लगा कि पुस्तक आज से दस-ग्यारह वर्ष पूर्व की लिखी हुई है—जब इस 'शान्ति निवास आश्रम' की स्थापना हुई थी।

पुस्तक का नाम था—'कागज़ की नाव'।

पुस्तक उनको सौंपकर महात्माजी उस ओर चले गए, जहां मृतक के दाह-संस्कार की तैयारी की जा रही थी।

२

"प्रेम की मां! कितनी रात बाकी है?"

परलोक जाने की तैयारी कर रहे एक बूढ़े ने अपनी डूबती सांसों के साथ अपनी पत्नी से पूछा।

बूढ़ी ने दीवार-घड़ी को देखकर जवाब दिया, "सवा बारह हैं, क्यों?"

अपने सूखे हुए और डरावने हाथ को चारपाई की बाजू पर पटकते हुए रोगी ने एक बार दरवाज़े की ओर देखा और फिर बड़ी कठिनता से खांसते हुए बोला, "अभी नहीं आया, प्रेम?"

इस समय रोगी की आंखों में उसकी भी आखिरी इच्छा और निराशा झलक रही थी। उसके डूबते हुए हृदय में अभी भी ममता की धड़कन शेष थी और उसकी धमनियों में बह रहे रक्त में अभी भी क्रोध

की भाग बाकी थी।

बूढ़ी बोली, "अभी तो नहीं आया। पता नहीं इतनी देर क्यों कर दी है। पहले तो……।"

कठिनता से आ रही सांसों के दर्द से सिकुड़ते हुए बूढ़ा बीच में ही बोल उठा, "पहले वह कब समय पर आया है, नालायक। लोगों की रात होती है तो इसका दिन शुरू होता है (करवट बदलते हुए) पता नहीं कब इसे अक्ल आएगी। जवान बेटा है, पांव मारे तो धरती से पानी निकल पड़े। मैं सोचता था, प्रेम जवान हो गया है, मैं सुखी हो जाऊंगा। पर…पर इस नालायक पर कोई असर ही नहीं…कोई समझ नहीं इसे। बाप भूखों मरे और बेटा… हाय…प्रेम…प्रेम की मां! मेरा, मेरा दम निकला।" कहते-कहते उसने रुके हुए सांस को निकालने के लिए, और लम्बे सांस लेने लगा जिससे चमड़ी के बाहर चमकती हुई उसकी पसलियां दिखने लगी। मास रहित उसके सिर को दबाती हुई नारायणी बोली, "प्रेम के बापू, तुम क्यों व्यर्थ में व्याकुल होते हो। जब भी अधिक बोलते—तभी सास लेना कठिन हो जाता है। डाक्टर ने बोलने को मना किया हुआ है। यह रोग तो बोलने से भूत की तरह बढ़ जाता है। प्रेम अपने-आप समझ जाएगा। आखिर लड़का ही तो है, अभी कौन-सी जिम्मेदारी पड़ी है उसपर। वक्त आने पर कौन नहीं सीखता।"

सांस लेने में थोड़ा आराम मिलने पर रोगी फिर अपने बाजुओं को पटकते हुए बोला, "प्रेम की मां! मेरे भीतर तो आग जल रही है। इसे अकल नहीं आएगी। मुझे…मुझे तो इसकी आदतें अच्छी दिखाई नहीं देतीं। लोगों की बातें सुनो तो तुझे पता चले।"

लोगों का नाम सुनते ही नारायणी गुस्से से बोली, "प्रेम के बापू! लोगों की बातों को रहने दो। लोग तो स्वयं ही आग लगाकर तमाशा देखते हैं! चोरों से चोरी करने को कहते हैं और लोगों को सावधान रहने को भी। इनका तो वही हाल है—न हंसता देख सकते हैं न रोता। झूठ नहीं कहती, मेरा प्रेम तो सात बेटियों के बराबर एक बेटा है!"

रलाराम बोला, "तू तो हमेशा ऐसा ही कहती है। जब वह कुछ कर बैठा, तो फिर रोना आंख मस-मल कर। उठकर पंखा बन्द कर दे।

मेरी टांगें ठंड से जमती जा रही हैं।" कहते-कहते वह अपनी डरावनी टांगों पर ढुलक आई चमड़ी को दबाने लगा।

नारायणी ने उठकर पंखे का स्विच आफ कर दिया। पंखा बन्द होते ही उसको पसीना आने लगा। एक तो उमस भरी बरसाती रात और दूसरा अन्दर बैठक में चारपाइयां। पर किसी तरह समय तो काटना ही था।

"प्रेम के बापू! दवा का समय हो गया है, साढ़े बारह बज गए हैं।" कहकर नारायणी ने आलमारी में से दवा की शीशी निकाली और कटोरी में दवा डाली। फिर अपनी बाजू के सहारे पति का सिर टिका, कटोरी उसके मुंह से लगा दी। दवा पिलाते हुए वह उसीका साथ देती हुई कहने लगी, "मैं क्या करूं, मेरा तो कहना ही नहीं मानता। अगर उसके भले की बात कहूं तो काटने को पड़ता है। अच्छा है, नहीं समझेगा तो अपना ही कुछ खोएगा। हमारा क्या है, हम तो कुछ दिनों के मेहमान हैं! प्रेम के बापू! वह अपनी आप जाने तुम किस लिए परेशान होते हो। अपने भले के लिए प्रार्थना करो। अपने बराबर का बेटा हो गया है इसलिए कुछ कहते हुए भी अच्छा नहीं लगता। अपने आप समझ जाएगा।"

दवा पी लेने के पश्चात् सिर को तकिए के एक ओर लुढ़काते हुए रलाराम बोला, "इसको अकल आ चुकी। जो भरी हुई दुकान नौकरों को सौंप स्वयं सारा दिन सैर सपाटे करता रहता है। वह क्या कमाएगा मेरी तो साठ वर्ष की आयु हो गई, मैंने न तो कभी ऐसे दर्शन-शास्त्र देखे हैं और न ही सुने हैं। न मां का डर और न ही बाप का। उठे तो सिनेमा चले गए और फिर उठे तो मैखाने में जा घुसे। प्रेम की मां! पच्चीस वर्ष का होने पर अकल न आई तो फिर कब आएगी।"

नारायणी अपने इकलौते पुत्र की बुराई को सहन नहीं कर सकती थी। भले ही वह बीमार पति का विरोध करना नहीं चाहती थी, परन्तु पुत्र की बुराई सुनकर वह रह भी नहीं सकी, बोली, "पता नहीं दो आने की रोज़ पीता है कि चार आने की। बेचारे का शरीर जो ढीला रहता है, फिर क्या करे। घर में और कई इतने फिजूल खर्च होते हैं उनका तो कोई नाम नहीं लेता, और उस बेचारे, की चार आने की शराब हर समय खटकती रहती है।

बूढ़ा शान्त भाव से कहने लगा, "प्रेम की मा ! मैंने दवा के रूप में पीने से उसे कब रोका है। पर, जो दर्जनों बोतल लोगों के गले में उतार आता है, मैं तो···" कहते-कहते उसे खांसी ने दवा लिया और वह और कुछ न बोल सका। उसी समय बाहर जूतों की आवाज आई और नारायणी बोली, "लो आ गया है।"

जिस समय बूढ़ा और बूढ़ी अपने तीन मंजिले मकान की बैठक में उपरोक्त वार्तालाप कर रहे थे, उससे लगभग चार-पांच घण्टे पूर्व तिकड़ी (तीन युवकों) को अमृतसर के एक प्रसिद्ध होटल में बैठा देखते हैं। इनमें से एक तो उसी रलाराम का पुत्र प्रेमचन्द है, और दूसरे दोनों उसके मित्र हैं। वास्तव में उसका मित्र केवल गोपालसिंह ही है, दूसरा जिसका नाम मिर्जा करीमबख्श है, गोपालसिंह का मित्र है ! वह शराब का गिलास अपने होंठों के साथ लगाते हुए, बीच-बीच में प्रेम की निगाह बचाकर गोपालसिंह को कुछ इशारे करता जाता है। इस गुप्त इशारेबाजी का क्या मतलब है। प्रेमचन्द को यह जानने की न तो जरूरत थी न ही फुर्सत, वह ज्यों-ज्यों गिलास रूपी सागर में डूबता जाता त्यों-त्यों वह मस्ती में आकर गाता जा रहा है :—

"कतलगाह को जब चले वो, लेके खंजर हाथ में।
खुद बखुद आने लगे, आशिक लिए सिर हाथ में।।
दिल में था कि खून आशिक, न कोई पहचान ले।
इसलिए वो आए हैं, मेंहदी लगाकर हाथ में।।

मस्ती में डूबकर गाई गई प्रेम की यह तुकबन्दी सुनकर मालूम होता है कि स्वर-ताल की उसे अच्छी जानकारी है। ज्यों-ज्यों उसका मित्र गोपालसिंह उसके गाने की सिर हिला-हिलाकर प्रशंसा करता जाता था, त्यों-त्यों प्रेम का स्वर और भी सुरीला और तेज होता जा रहा था।

अन्त में जब उनका गाना और गोपालसिंह की बोतल दोनों एक साथ समाप्त हुए, करीम साहब बोले, "यार गोपालसिंह ! आज सुना है, एक बहुत अच्छी फिल्म लगी है 'वाहरने मंडुए'।

प्रेम की ओर देखकर गोपालसिंह करीमको कहने लगा, "भाई साहब, मेरे भाई से पूछ लो, हमारा क्या है अगर इसकी इच्छा है तो चले चलते हैं।"

प्रेमचन्द ने कभी धन कमाकर नहीं देखा, यही कारण था कि वह रुपयों को हमेशा कोड़ियों की तरह खर्च करता था। शायद सोचता है कि घर में रुपयों की वर्षा होती है।

गोपालसिंह उसके इस स्वभाव से भलीभांति परिचित था। इसलिए वार-वार नई प्रेमिकाएं ढूंढ़ने की वजाय वह एक ही वार ऐसी जादूगरनी ढूंढ़ना चाहता था जो प्रेमचन्द को अपने प्रेम-पाश में इस प्रकार वांध ले कि फिर निकलने ही न दे जिसके फलस्वरूप गोपालसिंह का कमीशन उसके पैन्शन के रूप में वंध जाए।

अन्त में ढूंढ़ते-ढूंढ़ते उसने एक ऐसी स्त्री ढूंढ़ ही ली। एक पहले दर्जे की चालाक औरत को जो थोड़े दिन पहले अमृतसर में आई थी और आते ही जिसकी चर्चा प्रायः सभी नवयुवकों के वीच होने लगी थी। पर वह एकदम ही प्रेम को उसे नहीं सौंपना चाहता था। तनिक ललचाकर और तड़पाकर उसे दर्शन करवाना चाहता था।

प्रेम को उसने अपनी इच्छा के अनुसार काफी तड़पा लिया था। पर अब जब उसकी लाचारी को सीमा से वढ़ते देखा तो उसने, उसके दुर्भाग्य का द्वार खोल देना चाहा।

इन सभी वातों को सोचकर गोपालसिंह कहने लगा, "पर प्रेम! एक वात का ध्यान रखना, कहीं यह न समझ वैठना कि जमना एक वाज़ारू औरत है। वह वड़े खानदान से है। पता नहीं कौन-सी कठिनाईयों का शिकार होकर वेचारी इस काम के लिए यहां आ फंसी है। ऐसी भोली-भाली युवतियां तेरे जैसे सुन्दर और सुडौल युवकों के चंगुल में वहुत जल्दी फंस जाती हैं। इसलिए ऐसा न हो कि उसका मन जीतकर वाद में उसे अंगूठा दिखा जाए। और हां, वह है भी वड़ी मालदार। लगभग पचास-साठ हज़ार के गहने उसके पास हैं और सुना है नकदी का तो कोई हिसाव-किताव ही नहीं। ऐसा न हो कि वेचारी को प्रेमजाल में फांसकर लूटना ही शुरू कर दे।"

"मैं क्या इतना सुन्दर हूं जिसपर लड़कियां झटपट मोहित हो जाती हैं।" गोपालसिंह की वातों को इस अर्थ में लेते हुए उसकी छाती डेढ़ हाथ फूल गई। वह अहंकार की भावना को अपनी गालों और होंठों पर से छिपाते हुए वोला, "गोपाल मियां! तू मुझे इतना पत्थर दिल

समझता है ?"

"अच्छा तो चल, आज तुझे ले ही चलता हूं, पर तुझे एक बात और समझाता हूं। ऐसी नई-नई बुलबुलों को फांसने के लिए चुग्गा तनिक सावधानी से डालना पड़ता है।"

"किस प्रकार, मुझे समझा दे न सभी बातें।"

"बस यही कि जब जानो कि तुम से उलझ गई है, तो तुरन्त ही उसे हाथों मे ले लेना।"

"हाथों में कैसे ?"

"प्रेम ! मेरी बात का बुरा न मानना, तू भी बिलकुल बुद्धू है। इतना भी नही जानता कि ऐसी मालदार और सुन्दर युवतियों पर शहर के सभी बदमाशों की निगाह रहती है। बस जब समझो कि वह तुम्हें प्यार करने लगी है तो झटपट उसे कुछ दिनों के लिए कही बाहर ले जाओ।"

"बाहर कहां ? घर तो मैं उसे ले जा नही सकता। पिताजी से डरता हूं, मां बेचारी तो मुझसे कुछ नही कहती, चाहे कुछ भी करता फिरूं।"

"पागल कहीं का ! घर ले जाने को कौन कहता है तुझसे।"

"फिर और कहां ?"

"और कोई जगह नही रही ?"

"तेरा कहना है कि किसी और जगह मकान ले दूं !"

"नही ! शहर में चाहे तू कहीं भी छुपाकर रख, लोग उसका यहा भी पीछा नही छोड़ेंगे।"

"फिर और किस जगह ?"

"कहीं सैर करने के लिए ले जाना।"

"कही बाहर ?"

"हां, भले ही किसी पहाड़ पर ही। काश्मीर, शिमला, धर्मशाला, थोड़े स्थान है ?"

मियां करीम के लिए एकदम जबान को मुंह मे बन्द रखे बैठना कठिन था। थोड़ी देर तो वह अपने-आप पर काबू पा सब कुछ सुनता रहा, पर जब इस सारी बातचीत मे उसे बोलने का अवसर न दिया गया तो उसके सब्र का बांध आखिर टूट ही गया। गोपालसिंह,

बात के जवाब में वह बोला, "मेरे विचार में धर्मशाला जैसा पहाड़ कोई भी नहीं। निकट भी है, सस्ता भी और वहां जितनी वर्षा तो कहीं भी नहीं होती। तीन-चार वर्ष हुए मैं भी एक बार वहां गया था। वह गोपालसिंह तू जानता ही होगा, सरदार जैमलसिंह थानेदार का बेटा निर्मल, वह मेरा बचपन का मित्र था। हम कई वर्षों तक इकट्ठे पढ़ते रहे हैं। मेरी आदत है जिससे एक बार प्रेम हो जाए, फिर थोड़ी-सी बात के लिए मैं पीछे नहीं हटता। वह मेरे साथ था, अल्ला की कसम सैर का इतना मजा आया कि पूछो ही नहीं। मुझसे तो वहां का बच्चा बच्चा परिचित है।"

गोपालसिंह जानता था कि लालची की इच्छाओं की तरह करीम की इस कथा का कभी भी अन्त नहीं होगा। उसने उसकी हां में हां मिलाते हुए कहा, "हां, धर्मशाला भी बड़ा अच्छा स्थान है।"

मियां करीम अधेड़ उमर का है। उसके शरीर को रंगने के लिए, शायद बाबा आदम को बहुत अधिक तारकोल की आवश्कता पड़ी होगी। अगर उसकी मौलवी-कट फैशन की दाढ़ी में कोई भी पका हुआ बाल न होता तो चेहरे और दाढ़ी का रंग आपस में इस प्रकार मिल जाता कि निर्णय करना कठिन हो जाता कि उसके चेहरे पर दाढ़ी है भी या नहीं। उसके स्याह चेहरे पर पान-रंगे लाल होठों को देखते ही अंधेरी रात में जलती हुई चिता की याद आ जाती है। उसके चमकीले बटन लगी नसवारी रंग की पतली अचकन, जब हवा के झोंके से या चलते समय, उठती है और उसके तंग पाजामे में छिपी हुई पतली टांगें जब दिखाई देने लगती हैं तब तालाब के किनारे खड़े बगले का धोखा होने लगता है।

करपूरी की फैशन की तिल्ले वाली 'जूती' में उसके पांव देखकर भूल होती थी कि मियां साहब को तिल्लेदार 'जूती' को छोड़ कार जुराब पहनने का भी शौक है।

करीम की आय के साधन, अगर कोई उसके मुंह से सुने तो अगिनत हैं, परन्तु वास्तव में दो हैं। एक 'कोठों' की दलाली और दूसरा सौ प्रतिशत मन-गढ़न्त गप्पें। चाहे कोई भी बात क्यों न हो, वह उसके अन्त में या बीच में अपने महान जीवन-इतिहास का एक-आध

वश्य उलट देता है।

उसकी बात का कोई भी जवाब न दे, गोपालसिंह ने भ्रास से ाारा किया, जिसको समझ वह तुरन्त उठ बैठा और 'अच्छा सलाम' हकर होटल में से बाहर चला गया।

उसके चले जाने के पश्चात् दोनों मित्र थोड़ी देर और बैठे बातें रते रहे। इन बातों का सारांश यही था कि प्रेम को अपनी नई सहेली पास पहुंचाकर उसे प्रेम-जाल में फांसने के लिए क्या-क्या ढंग अप-ने होंगे। गोपालसिंह इस विषय पर उसे कई पाठ पढ़ाता रहा।

अन्त में दोनों उठकर जमना के मकान की ओर चल दिए।

३

दूसरे बाज़ारों के दलाल तो अपने पेशे से झट पहचाने जाते हैं, न्तु रूप-मंडी के दलालों को कोई जानने वाला ही पहचान सकता है। बुरके में रहते हैं—मित्रता के बुरके में।

ऐसे दलालों को अपना कार्य शुरू करने के लिए किसी का शिष्य ाना नहीं पड़ता और न ही सरकार से या दरबार से सहायता लेनी ती है। बस इनके पास एक ही योग्यता होनी चाहिए, मित्रता ापित करने की।

इन्हीं लोगों का दूसरा नाम है नौसरबाज। अपने ग्राहकों को फासने लिए यह दूसरे हथकंडों का प्रयोग भी करते हैं, परन्तु इनके पास सब अच्छा और सफल मार्ग है, मित्र बनाने का। इस कार्य के लिए पहले- ले उन्हें छोटी-मोटी क़ुरबानियां भी देनी पड़ती है। अपनी जेब से ालाना-पिलाना और 'कोठों' की सैर कराना आदि, पर एक बार व पंछी इनके जाल में फंस जाता है तो सब अगला-पिछला हिसाब ा हो जाता है।

इस प्रकार के दलालों का जादू अधिकतर तीन प्रकार के लोगों पर लता है। पहले उनपर, जिनका ताज़ा-ताज़ा बाप मरा हो, दूसरे और इकलौते बेटों पर, और तीसरा उन लोगों पर जो शान

अमीर हों। हमारे उपन्यास के नायक प्रेमचन्द में लगभग यह तीनों गुण हैं। वह लाडला, इकलौता और अमीर भी एक है। बाप भी उसका मरा नहीं तो आखरी दमों पर अवश्य है।

ऐसा नवयुवक और फिर खाने-पीने वाला आदमी यदि किसी नौसरबाज के चंगुल में फंस जाए तो उसकी खुशकिस्मती ही समझनी चाहिए।

गोपालसिंह ऐसे ही दलालों में से एक है। वह सचमुच ही 'गोपाल' है। रामबाग के वन की कई गाएं उसके सहारे पलती हैं। घास खाने वाली गऊएं नहीं, कलेजी खाने वाली। कलेजी भी किनकी? चार पांव वालों को छोड़ कभी-कभी दो पांव वालों की, और जिनके पीने के लिए शराब है तथा इसकी गहरे और तेज रंगवाला दूसरा पदार्थ—खून।

गोपालसिंह रामबाग में शरबत और सोडा की दुकान करता है। शरबत-सोडा तो उसने नाममात्र को एक तरफ रखा हुआ है वास्तव में उसे आमदनी है शराब से या फिर दलाली से।

सायंकाल को उसकी दुकान पर खासी भीड़ रहती है। कुछ तो उन लोगों की जो शहर से बाहर दो मील पैदल चलकर ठेके तक नहीं जा सकते और शेष तमाशा देखने वाले तमाशबीनों की। ऐसे कार्यों में पकड़े जाने का अधिकतर डर रहता है परन्तु उन लोगों को जिनसे माया और पुलिस नाराज हो। जिन भाग्यशाली लोगों पर इन दोनों की कृपा दृष्टि होती है, उनका बाल-बांका करनेवाला पैदा ही नहीं हुआ।

उसके कार्य में सहायता देने के लिए उसके पास दो व्यक्ति हैं, एक उसका नौकर (लड़का) मनोहरी, और दूसरा करीम, जिसके बारे में हम पहले बता चुके हैं।

मनोहरी तेरह वर्ष का पहाड़ी लड़का है। उसकी शक्ल देखकर कोई भी यह नहीं कह सकता कि दुकान पर बैठकर सोडा-शरबत बेचने के अतिरिक्त वह अपने मालिक के अंधेरे में चलनेवाले धन्धों में उसका बांया हाथ है। वह अपने सारे कच्चे और पक्के ग्राहकों को जानता है। जिसको जिस वस्तु की जरूरत होती है वह तुरन्त पूरी कर देता है, और जिनको खास गोपालसिंह से काम हो, उनको मालिक के पास पहुंचा देता है अथवा मालिक के बताए अनुसार करता है।

दुकान का सारा भार मनोहरी पर है। गोपालसिंह स्वयं बहुत कम बैठता है और बाहर की दलाली का काम उसने करीम को सौंपा हुआ है।

गोपालसिंह का कद कुछ लम्बा है। उसका रंग गेहुंआ और चेहरा तनिक पुष्ट है। उसकी बाईं ओर भौहों के ऊपर माथे की ओर ज़ख्मों के दो बड़े-बड़े निशान हैं। इनसे छोटा एक निशान दाहिने गाल पर भी है। अगले दोनों दांतों पर उसने सोने के खोल चढ़वाए हुए हैं और दाढ़ी कैंची तथा 'फ़िक्सर' की सहायता से बनी हुई है। क्या मजाल जो एक बाल भी आगे-पीछे हो। और उसकी उमर सिखों की उमर का अनुमान उनकी दाढ़ी से लगता है, परन्तु हमें जब गोपालसिंह की दाढ़ी की आयु का ही पता नहीं चलता तो हम उसकी आयु के बारे में क्या बता सकते हैं।

यही है प्रेम का दिली दोस्त और उसका दाहिना बाज़ू।

करीम, इन दोनों से पूर्व ही गोपालसिंह का इशारा पाकर जमना बाई की बैठक पर पहुंच गया था और उसको सब कुछ समझा-सिखा-कर वहां से चला गया था।

गोपाल और प्रेम अभी जमना बाई के कोठे पर जाकर बैठे ही थे कि पीछे ही मनोहरी जा पहुंचा और अपने मालिक को एक काग़ज़ का टुकड़ा थमाते हुए जल्दी से बोला, "सरदारजी! चौधरी जगनादास का आदमी आया है। कहता है बड़ा ज़रूरी काम है।"

"बेड़ा ग़र्क़ हो इन चौधरियों का, किसी समय भी तो आराम नहीं लेने देते।" कहता हुआ गोपालसिंह उठकर प्रेम से बोला, "अच्छा, प्रेम तू बैठ, मैं चलता हूं।" और वह नीचे उतर गया।

प्रेम भी शायद यही चाहता था। नई बुलबुल को पकड़ने के लिए उसे एकान्त चाहिए था।

प्रेम सोचता था कि पता नहीं जमना बाई कैसा बर्ताव करे, परन्तु इसके विपरीत वह ऐसे मीठे ढंग से पेश आई कि प्रेम का मन खुशी से खिल उठा।

जमना का कोठा आम बाज़ार में न होकर एक ओर गली में था। घर का रंग-ढंग भी ऐसा नहीं था जैसा प्रेम आज तक कई कोठों पर

अमीर हों। हमारे उपन्यास के नायक प्रेमचन्द में लगभग यह तीनों गुण हैं। वह लाडला, इकलौता और अमीर भी खूब है। बाप भी यदि उसका मरा नहीं तो आखरी दमों पर अवश्य है।

ऐसा नवयुवक और फिर खाने-पीने वाला आदमी यदि किसी नौसरवाज के चंगुल में फंस जाए तो उसकी खुशकिस्मती ही समझनी चाहिए।

गोपालसिंह ऐसे ही दलालों में से एक है। वह सचमुच ही 'गोपाल' है। रामबाग के वन की कई गाएं उसके सहारे पलती हैं। घास खाने वाली गऊएं नहीं, कलेजी खाने वाली। कलेजी भी किनकी? चार पांव वालों को छोड़ कभी-कभी दो पांव वालों की, और जिनके पीने के लिए शराब है तथा इसकी गहरे और तेज रंगवाला दूसरा पदार्थ—खून।

गोपालसिंह रामबाग में शरबत और सोडा की दुकान करता है। शरबत-सोडा तो उसने नाममात्र को एक तरफ रखा हुआ है वास्तव में उसे आमदनी है शराब से या फिर दलाली से।

सायंकाल को उसकी दुकान पर खासी भीड़ रहती है। कुछ तो उन लोगों की जो शहर से बाहर दो मील पैदल चलकर ठेके तक नहीं जा सकते और शेष तमाशा देखने वाले तमाशबीनों की। ऐसे कार्यों में पकड़े जाने का अधिकतर डर रहता है परन्तु उन लोगों को जिनसे माया और पुलिस नाराज हो। जिन भाग्यशाली लोगों पर इन दोनों की कृपा-दृष्टि होती है, उनका बाल-बांका करनेवाला पैदा ही नहीं हुआ।

उसके कार्य में सहायता देने के लिए उसके पास दो व्यक्ति हैं। एक उसका नौकर (लड़का) मनोहरी, और दूसरा करीम, जिसके बारे में हम पहले बता चुके हैं।

मनोहरी तेरह वर्ष का पहाड़ी लड़का है। उसकी शक्ल देखकर कोई भी यह नहीं कह सकता कि दुकान पर बैठकर सोडा-शरबत बेचने के अतिरिक्त वह अपने मालिक के अंधेरे में चलनेवाले धन्धों में उसका बांया हाथ है। वह अपने सारे कच्चे और पक्के ग्राहकों को जानता है। जिसको जिस वस्तु की जरूरत होती है वह तुरन्त पूरी कर देता है, और जिनको खास गोपालसिंह से काम हो, उनको मालिक के पास पहुंचा देता है अथवा मालिक के बताए अनुसार करता है।

उसी तरह आंसू बहाते हुए जमना बोली, "सेठजी ! इन हाथों से (अपने गोरे हाथ दिखाकर) कभी तिनका भी नहीं तोड़ा था। ससुराल और मायका दोनो ओर से धनवान घर की थी। लोगों के घरों में नौकर होते है, परन्तु हमारे नौकरों के भी नौकर थे। सोना-चांदी तो घर में किसी को अच्छा लगता ही नही था। हीरे और मोतियों से भरी रहती थी। अभी भी भगवान की कृपा है, किसी चीज की कमी नहीं है। अन्दर-बाहर दौलत ही दौलत है, परन्तु यह सब कुछ मेरे किस काम का, मेरे से······" वह फिर रोने लगी।

प्रेम को उसका इस प्रकार का रोना और दु:ख बांटने की यह अदा बहुत ही ठीक लग रही थी। उसका मन यही चाहता था कि वह इसी प्रकार अपनी आप-बीती सुनाती जाए। वह पूछने लगा, "फिर ?"

वह बोली, "विवाह को दो वर्ष भी नही हुए थे, कि भगवान ने मेरा सुहाग लूट लिया। ससुराल वालो ने मारा मोंबना शुरू कर दिया, छः मास तक इसी प्रकार ताने सुनती रही। अन्त में उन्होंने मुझे घर से निकाल दिया। अच्छा भाग्य था जो पति ने तीस-पैंतीस हजार रुपया मेरे नाम बैंक में जमा किया हुआ था। और मैंने लाख डेढ़ लाख के गहने और जवाहरात भी अलग रखे हुए थे। आज अगर यह सहारा न होता तो पता नहीं कहां ठोकरें खाती फिरती।"

प्रेम मन ही मन गिनने लगा, 'डेढ़ लाख और आधा लाख, दो लाख। तो क्या यह इस समय दो लाख की मालिक है ?' उसने फिर पूछा, "पर जमना बाई ! जब तेरे पास इतना कुछ था तो फिर तुम्हें इस काम में पड़ने की क्या जरूरत थी, इतना धन तो तुम्हारी सारी जिन्दगी में भी समाप्त न होता।"

"परन्तु, सेठ जी ! जो आग मेरे हृदय में जल रही थी, मैंने तो उसे बुझाना था। जिन अहंकार के मारे इज्जतदारों ने मुझे घर से निकाल दिया था और मेरी कम से कम पंद्रह लाख की सम्पत्ति को हड़प लिया था। उनसे बदला कैसे लेती ? उस समय वह कहते थे कि रंडी बहू का घर में रखने से उनके खानदान को धब्बा लगेगा, परन्तु, अब जब अपनी बहू को बाजार में बैठा देखेंगे तो उनकी इज्जत को चार चांद लग जाएंगे।"

प्रेम के मन पर बड़ा गहरा असर हो रहा था। किसी भावी खुशी की कल्पना से उसके हृदय में गुदगुदी होने लगी। जमना के गले में लटक रहे नकली हीरों के हार और कानों में नकली मोतियों के बुन्दों की ओर उसने ललचाई दृष्टि से देखा। फिर पूछने लगा, "और जमना बाई! इतने गहने और नकदी लेकर तुम किस तरह अकेली ······।"

उसकी बात को काटकर जमना बोली, "सेठ जी! अकेली रहने के डर से ही तो मैं यहां से जाना चाहती हूं। प्रत्येक की निगाह मेरे गहनों पर है या बैंक में जमा किए हुए रुपयों पर।"

"तो इस बारे में तुमने क्या सोचा है?"

"बहुत कुछ सोचा है, परन्तु अभी तक कुछ निर्णय नहीं कर पाई हूं। मैं तो चाहती थी, कोई···कोई दिल का साझीदार मिल जाता तो उसकी छाया में बैठ जीवन काट लेती, परन्तु यहां आकर देखा है कि सभी रूप और दौलत के ग्राहक हैं।"

प्रेम सोचने लगा, "काश! मैं इसे किसी प्रकार फुसला सकूं।" परन्तु आज पहले दिन ही उसने सारी बात कहनी ठीक नहीं समझी। फिर भी उसका हृदय टटोलने के लिए वह नाटकीय ढंग से बोला, "दौलत तो हाथों की मैल है जमना बाई। जहां दो हृदय मिल जाएं वहां सब कुछ बलिदान भी कर दे तो वह भी थोड़ा है।"

जमना बाई समझ गई कि प्रेम अपनी स्वार्थी भावना को प्रकट करने में संकोच का अनुभव कर रहा है। वह जानती थी कि इस समय दो विषधरों में द्वन्द्व हो रहा है, देखिए विष किसको चढ़ता है। इसी विचार से वह बोली, "सेठजी! इतने दिनों में एक आप ही ऐसे दिखाई दिए हैं जिनका हृदय मेरे दुःख से भर आया है, नहीं तो आज तक जितने भी यहां आए हैं, सब अपने स्वार्थ के लिए, और मैंने भी ऐसे बहुरूपियों को दूर से नमस्कार कर किसी को अपने निकट तक नहीं फटकने दिया।"

प्रेम सोचने लगा, "जमना तो सचमुच सीता या सावित्री का दूसरा रूप है। ऐसी औरत यदि धन सहित प्राप्त हो जाए तो फिर और क्या चाहिए।"

वह कहने लगा, "मैं तो जमना बाई! तुम्हारी बातें सुनकर

तड़प उठा हूं। जहा तक मेरा वश चलेगा मैं तुम्हारी मदद करूंगा, तुम चिन्ता न करो और न ही कही जाने की बात सोचो। यदि मेरा भाग्य अच्छा हुआ तो शायद तुम्हें भी मेरी वफा पर विश्वास हो जाएगा। मुंह से कहने से क्या होता है।"

"सेठजी! मैं इससे बेखबर नहीं हूं। मैं पहली निगाह में ही पुरुष को पहचान जाती हूं।" कहती-कहती वह चुप हो गई। प्रेम इस चुप्पी का कारण ताड़ गया। उसने जमना का हाथ अपने हाथ में ले लिया।

जमना ने आंखें झुकाली और अपनी बाह प्रेम के गले में डाल दी।

तिरछी निगाह से उसके चेहरे को निहारते हुए वह अपने दोनों हाथों से उसके गाल थपथपा कर बोली, "परन्तु, अगर आप अब सच-मुच ही मुझपर इतनी दया करना चाहते हैं तो पहले मुझे इस बाजार से बाहर निकाल ले जाइए। मेरे शरीर का रोम-रोम यहां के लोगों और यहां सदा आने वालों से घृणा करता है। भले ही मेरा मकान बाजार से इस ओर है, फिर भी·········।"

यह सुनकर प्रेम को अपने मित्र द्वारा दी गई सलाह का ध्यान हो आया। वह बोला, "जमना! जहां तुम कहो, मैं तुम्हें वहीं ले चलूंगा। यदि तुम गर्मी के दिन पहाड़ पर बिताना चाहो तो मैं इसकी तैयारी करूं?"

"मैं आपके साथ हूं! जहां आप ले चलेंगे, चलूंगी।"

"अच्छा, फिर मेरा विचार है धर्मशाला की सैर की जाए।"

भोली बनते हुए जमना बोली, "धर्मशाला, गुरुद्वारे की?"

"नहीं मेरी भोली जमना! धर्मशाला एक पहाड़ी शहर का नाम है, वह जिला कांगड़ा में है।"

"अच्छा, तो कब चलेंगे?"

"बस, आज ही घर जाकर निश्चय करूंगा। शायद कल या ज्यादा-से-ज्यादा परसों।"

प्रेम आज मन ही मन अति आनन्द तथा देवता-समान अपने मित्र गोपालसिंह की सराहना कर रहा था, जिसकी कृपा से लाखों में होने वाली 'सुन्दरता और प्यार' की देवी ने क्षणों में ही अपने आपको [illegible] कर दिया था।

जब प्रेम जमना के मकान से चलने लगा तो रात

बज चुके थे। चलते समय वह खुश भी था और उदास थी। खुश इस-लिए कि जमना उसकी खुबसूरती के आगे अधिक देर न टिक सकी और उसने तुरन्त ही अपने आपको उसे सौंप दिया था, और उदास इसलिए कि बिछुड़ते समय वह जमना की दशा को सहन नहीं कर पाया। वह तड़प रही थी और चीख रही थी, मानों वियोग की रात का बाकी समय उसकी जान ही ले लेगा।

४

एक साधारण बिसाती से बढ़ते-बढ़ते प्रेम का बाप लखपती बन गया था। उसकी थोक बिसाती की दुकान का मुकाबला सारे बाज़ार में कोई भी दुकान नहीं कर सकती है। उसकी बहुत बड़ी हवेली अपने-आप में एक मिसाल थी, जिसके ऊपरी भाग में वह सपरिवार रहता है और निचले भाग में किराएदार। उसके परिवार में एक वह, उसकी पत्नी नारायणी और इकलौता बेटा प्रेम थे।

प्रेम को पढ़ाने के लिए रलाराम ने बहुत प्रयत्न किया, परन्तु जितना पढ़ना जरूरी था, उससे अधिक प्रेम पढ़ना नहीं चाहता था, अर्थात् प्रेम-पत्र लिखने और कुछ रोमांटिक उपन्यास पढ़ने का काम वह अच्छी तरह कर सकता था। इसके अलावा उसे थोड़ी-बहुत 'मुण्डी' भाषा भी आती थी। क्या एक पैदायशी धनवान के लिए इतनी शिक्षा काफी नहीं है?

प्रेम अब जवान हो गया था, इसलिए रलाराम को हमेशा उसके विवाह की चिन्ता रहती थी। मरने से पूर्व वह घर को बहूरानी से सुशोभित देखना चाहता था, परन्तु प्रेम इस ओर ध्यान ही न देता था। अच्छे-अच्छे घरों के रिश्ते उसने 'अभी नहीं' कहकर लौटा दिए थे। उसको विवाह से अधिक शौक था तमाशा देखने का तथा यारों-दोस्तों की महफिलों को सुशोभित करने का। उसकी आवाज़ काफी सुरीली थी और हारमोनियम भी वह भलीभांति बजा लेता था।

आज प्रातःकाल से रलाराम की तबियत कुछ अधिक खराब थी।

दो बार डाक्टर बुलाया जा चुका था, परन्तु रोग बढ़ता ही जाता था। सायंकाल को स्वास्थ्य और भी बिगड़ गया। नारायणी ने नौकर को दुकान पर भेजा कि प्रेम को जल्दी बुला लाए, परन्तु वहां मुनीम से पता चला कि वह किसी जरूरी काम से गया हुआ है। नौकर लौट आया।

रलाराम का दम टूट रहा था, उसकी छाती—जो अस्थ हड्डियों का ढांचा आज रह गई थी—सांस की रुकावट से इतनी तेजी के साथ ऊपर-नीचे हो रही थी कि बेचारे की पसलियां दुखने लगी थीं। आधी रात बीत गई, जूतों की आवाज हुई और सुनते ही नारायणी ने पति को कहा, "लो, आ गया है।"

प्रेम अपने कमरे में अकेला बैठकर आजकी सफलता के बारे में कुछ सोचना चाहता था परन्तु विवशता के कारण उसे कुछ समय के लिए पिता के कमरे में जाना ही पड़ा।

"पिताजी, क्या हाल है?" चारपाई पर पाव की ओर बैठते हुए उसने पूछा।

रलाराम ने आखें अच्छी प्रकार खोलकर पुत्र की ओर देखा। वह बहुत-कुछ कहना चाहता था, परन्तु कठिनता से केवल इतना ही कह सका, "कहां घूमता रहता है, इतनी देर तक?"

"कहीं नहीं।" प्रेम ने जवाब दिया। इतने में नारायणी बोली, 'बेटा! देखता नहीं तेरे पिताजी बीमार हैं और तुझे कोई चिन्ता ही नहीं। प्रातःकाल का तू घर से गया हुआ था। इतना भी नहीं कि आदमी समय पर घर आ जाए। कोई दुःख-सुख पूछे।"

किसीके नशीले प्यार के सुनहरी झूले में झूल रहे प्रेम को मां के यह शब्द बड़े कड़वे लगे, परन्तु उसने क्रोध को दबाते हुए कहा, "दुकान का काम तो सम्भालना है न।" नारायणी बोली, "दुकान पर से नौकर दो बार लौट आया है। वहां से तू चार बजे का निकला हुआ है।"

इस बार प्रेम क्रोध पर काबू न पा सका। रूखी आवाज से बोला, "रुपये उगाने के लिए जाएं तो वह दुकान का काम नहीं होता? मैं कहीं भाड़ में नहीं गया था।"

बेटे का क्रोध बढ़ते देख मां डर गई। प्यार भरे स्वर में बोली. "नहीं बेटा! यह तो मुझे पता ही है कि तू काम से ही ग

परन्तु मैंने तो वैसे ही कहा है क्योंकि पिताजी का ध्यान भी तो तुझे ही रखना है। इन बेचारों का तेरे बिना और कौन है? प्रातःकाल से हज़ारों बार तुझे याद कर चुके हैं।"

रलाराम चाहते हुए भी इस समय बोल नहीं सकता था। उसने कोई बात न की। सांस की तेज़ी के कारण उसके मुंह से आवाज़ निकलनी कठिन हो गई थी।

नारायणी ने खाना खाने के लिए कहा जिसके जवाब में 'भूख नहीं' कहकर प्रेम उठकर अपने कमरे में चला गया।

५

'लोग पागल हैं जो यह कहते हैं कि वेश्या बेवफा होती है। होती होगी, परन्तु सभी नहीं। पांचों अंगुली कभी बराबर होती हैं? किसी चीज़ की संसार में कमी नहीं। जमना जैसी पवित्रता की देवी और सच्चे प्रेम की मूर्ति तो संसार में दिया लेकर ढूंढ़ने पर भी नहीं मिलेगी और गोपालसिंह जैसा मित्र! आह! मैं कितना भाग्यवान हूं।'

प्रातःकाल जागने पर सबसे पहले जो विचार प्रेम के मस्तिष्क में घूम रहे थे, वह यह थे।

सारी रात पिताजी की दशा कैसी रही है, इसका प्रेम को तनिक भी ध्यान नहीं आया, न ही इसकी ज़रूरत थी। वह जानता था कि मां सारी रात उनकी चारपाई के किनारे बैठी रही होगी, फिर एक के होते दूसरे की क्या आवश्यकता। अब भी उसकी इच्छा बाप के कमरे में जाने की नहीं थी, क्योंकि वह डरता था कि कहीं मां कोई काम न बता दें, जिससे घंटा दो घंटा समय नष्ट न हो जाए। परन्तु एक ज़रूरी काम के लिए उसने बाप की राय लेनी थी। इसलिए उसे जाना ही पड़ा—वह गया।

उसने चारपाई पर बैठकर, बाप के शरीर को छुए बिना पूछा, "पिताजी! कुछ आराम है अब?"

बेटे को देखकर बाप का आधा दुख जाता रहा। उसके शरीर में

कुछ स्फूर्ति आ गई। उसने प्यार-भरी दृष्टि से प्रेम को देखा फिर अपने कमज़ोर हाथ को उसकी जाघ पर रख खांसते हुए बोला, "आराम है बेटा! तू चिन्ता न कर, मैं ठीक हो जाऊंगा। दुकान पर···स्वयं बैठा कर···अपने मरे बिना स्वर्ग नहीं मिलता बेटा। नौकरों पर अधिक निर्भर नहीं रहा करते।"

पुत्र का स्पर्श कर, रलाराम हृदय में सुख का अनुभव करने लगा। पर इस सूखे, पीले और झुर्रियों से भरपूर हाथ ने प्रेम की टांग को छूकर उसके शरीर में घृणा-सी भर दी। प्यार भरा यह हाथ उसको कांटे की तरह चुभने लगा। परन्तु वह इसे हटाने की हिम्मत न कर सका।

सामने की दीवार पर लगी तस्वीर पर टकटकी लगाए जैसे उसने बाप की बात को सुना ही नहीं था, वह बोला, "पिताजी! दुकान में कई वस्तुएं खत्म हो गई हैं, व्यापारी वापिस लौट जाते हैं। मेरा विचार है बम्बई जाकर कुछ सामान खरीद लाऊं।"

रलाराम जवाब दे, इससे पहले ही नारायणी बोल पड़ी, "बेटा! पिताजी तेरे चारपाई पर पड़े हुए हैं। इनको छोड़कर कहीं जाया जा सकता है? इनको स्वस्थ हो जाने दे फिर बेशक चले जाना।"

परन्तु रलाराम को पत्नी की यह बात अच्छी न लगी। वह मन ही मन बेटे की प्रशंसा कर रहा था जिसको घर से दुकान की अधिक फिक्र थी। यह तो वह चाहता था। वह अपनी पूरी ताकत लगाकर सांस पर काबू पाकर बोला, "चला जाए···क्यों···क्यों रोकती है, माल खत्म है, ले आए।"

नारायणी पति का विरोध न कर सकी। बेटे को रोकने के लिए उसका मुंह फिर न खुला, पर हृदय उसका कह रहा था कि इसका परिणाम अच्छा नहीं होगा।

प्रेम ने आज बहुत से आवश्यक कार्य करने थे। इसलिए बाप को चारपाई के पास बैठकर उसने समय नष्ट करना ठीक नहीं समझा। वह उठकर बाहर जाने के लिए तैयार हो गया। रलाराम ने एक बार फिर तरसती हुई निगाह से बेटे की ओर देखा। इस निगाह में क्या कुछ था? प्रेम का हृदय इसकी सतह तक पहुंचने में असमर्थ था।

परन्तु मैंने तो वैसे ही कहा है क्योंकि पिताजी का ध्यान भी तो तुझे ही रखना है। इन बेचारों का तेरे बिना और कौन है ? प्रातःकाल से हज़ारों बार तुझे याद कर चुके हैं।"

रलाराम चाहते हुए भी इस समय बोल नहीं सकता था। उसने कोई बात न की। सांस की तेज़ी के कारण उसके मुंह से आवाज़ निकलनी कठिन हो गई थी।

नारायणी ने खाना खाने के लिए कहा जिसके जवाब में 'भूख नहीं' कहकर प्रेम उठकर अपने कमरे में चला गया।

५

'लोग पागल हैं जो यह कहते हैं कि वेश्या बेवफा होती है। होती होगी, परन्तु सभी नहीं। पांचों अंगुली कभी बराबर होती हैं ? किसी चीज़ की संसार में कमी नहीं। जमना जैसी पवित्रता की देवी और सच्चे प्रेम की मूर्ति तो संसार में दिया लेकर ढूंढ़ने पर भी नहीं मिलेगी और गोपालसिंह जैसा मित्र ! आह ! मैं कितना भाग्यवान हूं।'

प्रातःकाल जागने पर सबसे पहले जो विचार प्रेम के मस्तिष्क में घूम रहे थे, वह यह थे।

सारी रात पिताजी की दशा कैसी रही है, इसका प्रेम को तनिक भी ध्यान नहीं आया, न ही इसकी ज़रूरत थी। वह जानता था कि मां सारी रात उनकी चारपाई के किनारे बैठी रही होगी, फिर एक के होते दूसरे की क्या आवश्यकता। अब भी उसकी इच्छा बाप के कमरे में जाने की नहीं थी, क्योंकि वह डरता था कि कहीं मां कोई काम न बता दें, जिससे घंटा दो घंटा समय नष्ट न हो जाए। परन्तु एक ज़रूरी काम के लिए उसने बाप की राय लेनी थी। इसलिए उसे जाना ही पड़ा—वह गया।

उसने चारपाई पर बैठकर, बाप के शरीर को छुए बिना पूछा, "पिताजी ! कुछ आराम है अब ?"

बेटे को देखकर बाप का आधा दुख जाता रहा। उसके शरीर में

कुछ स्फूर्ति आ गई। उसने प्यार-भरी दृष्टि से प्रेम को देखा फिर अपने कमजोर हाथ को उसकी जांघ पर रख खांसते हुए बोला, "आराम है बेटा! तू चिन्ता न कर, मैं ठीक हो जाऊंगा। दुकान पर···स्वयं बैठा कर···अपने मरे बिना स्वर्ग नहीं मिलता बेटा। नौकरों पर अधिक निर्भर नहीं रहा करते।"

पुत्र का स्पर्श कर, रलाराम हृदय में सुख का अनुभव करने लगा। पर इस सूखे, पीले और झुर्रियों से भरपूर हाथ ने प्रेम की टांग को छूकर उसके शरीर में घृणा-सी भर दी। प्यार भरा यह हाथ उसको कांटे की तरह चुभने लगा। परन्तु वह इसे हटाने की हिम्मत न कर सका।

सामने की दीवार पर लगी तस्वीर पर टकटकी लगाए जैसे उसने बाप की बात को सुना ही नहीं था, वह बोला, "पिताजी! दुकान में कई वस्तुएं खत्म हो गई हैं, व्यापारी वापिस लौट जाते हैं। मेरा विचार है बम्बई जाकर कुछ सामान खरीद लाऊं।"

रलाराम जवाब दे, इससे पहले ही नारायणी बोल पड़ी, "बेटा! पिताजी तेरे चारपाई पर पड़े हुए हैं। इनको छोड़कर कहीं जाया जा सकता है? इनको स्वस्थ हो जाने दे फिर बेशक चले जाना।"

परन्तु रलाराम को पत्नी की यह बात अच्छी न लगी। वह मन ही मन बेटे की प्रशंसा कर रहा था जिसको घर से दुकान की अधिक फिक्र थी। यह तो वह चाहता था। वह अपनी पूरी ताकत लगाकर खांस पर काबू पाकर बोला, "चला जाए···क्यों···क्यों रोकती है, माल खत्म है, ले आए।"

. नारायणी पति का विरोध न कर सकी। बेटे को रोकने के लिए उसका मुंह फिर न खुला, पर हृदय उसका कह रहा था कि इसका परिणाम अच्छा नहीं होगा।

प्रेम ने आज बहुत से आवश्यक कार्य करने थे। इसलिए बाप की चारपाई के पास बैठकर उसने समय नष्ट करना ठीक नहीं समझा। वह उठकर बाहर जाने के लिए तैयार हो गया। रलाराम ने एक बार फिर तरसती हुई निगाह से बेटे की ओर देखा। इस निगाह में क्या कुछ था? प्रेम का हृदय इसकी सतह तक पहुंचने में असमर्थ था।

परन्तु मैंने तो वैसे ही कहा है क्योंकि पिताजी का ध्यान भी तो तुझे ही रखना है। इन बेचारों का तेरे बिना और कौन है? प्रातःकाल से हज़ारों बार तुझे याद कर चुके हैं।"

रलाराम चाहते हुए भी इस समय बोल नहीं सकता था। उसने कोई बात न की। सांस की तेजी के कारण उसके मुंह से आवाज़ निकलनी कठिन हो गई थी।

नारायणी ने खाना खाने के लिए कहा जिसके जवाब में 'भूख नहीं' कहकर प्रेम उठकर अपने कमरे में चला गया।

५

'लोग पागल हैं जो यह कहते हैं कि वेश्या बेवफा होती है। होती होगी, परन्तु सभी नहीं। पांचों अंगुली कभी बराबर होती हैं? किसी चीज़ की संसार में कमी नहीं। जमना जैसी पवित्रता की देवी और सच्चे प्रेम की मूर्ति तो संसार में दिया लेकर ढूंढ़ने पर भी नहीं मिलेगी और गोपालसिंह जैसा मित्र! आह! मैं कितना भाग्यवान हूं।'

प्रातःकाल जागने पर सबसे पहले जो विचार प्रेम के मस्तिष्क में घूम रहे थे, वह यह थे।

सारी रात पिताजी की दशा कैसी रही है, इसका प्रेम को तनिक भी ध्यान नहीं आया, न ही इसकी जरूरत थी। वह जानता था कि मां सारी रात उनकी चारपाई के किनारे बैठी रही होगी, फिर एक के होते दूसरे की क्या आवश्यकता। अब भी उसकी इच्छा बाप के कमरे में जाने की नहीं थी, क्योंकि वह डरता था कि कहीं मां कोई काम न बता दें, जिससे घंटा दो घंटा समय नष्ट न हो जाए। परन्तु एक ज़रूरी काम के लिए उसने बाप की राय लेनी थी। इसलिए उसे जाना ही पड़ा—वह गया।

उसने चारपाई पर बैठकर, बाप के शरीर को छुए बिना पूछा, "पिताजी! कुछ आराम है अब?"

बेटे को देखकर बाप का आधा दुख जाता रहा। उसके शरीर में

कुछ स्फूर्ति आ गई। उसने प्यार-भरी दृष्टि ने प्रेम को देखा फिर अपने कमजोर हाथ को उसकी जांघ पर रख खासते हुए बोला, "आराम है बेटा ! तू चिन्ता न कर, मैं ठीक हो जाऊंगा। दुकान पर···स्वयं बैठा कर···अपने मरे बिना स्वर्ग नहीं मिलता बेटा। नौकरों पर अधिक *निर्भर नही रहा करते।"*

पुत्र का स्पर्श कर, रलाराम हृदय में सुख का अनुभव करने लगा। पर इस सूखे, पीले और झुरियों से भरपूर हाथ ने प्रेम की टाग को छूकर उसके शरीर में घृणा-सी भर दी। प्यार भरा यह हाथ उसको कांटे की तरह चुभने लगा। परन्तु वह इसे हटाने की हिम्मत न कर सका।

सामने की दीवार पर लगी तस्वीर पर टकटकी लगाए जैसे उसने बाप की बात को सुना ही नही था, वह बोला, "पिताजी ! दुकान में कई वस्तुएं खत्म हो गई हैं, व्यापारी वापिस लौट जाते हैं। मेरा विचार है बम्बई जाकर कुछ सामान खरीद लाऊं।"

रलाराम जवाब दे, इससे पहले ही नारायणी बोल पड़ी, "बेटा ! पिताजी तेरे चारपाई पर पड़े हुए हैं। इनको छोड़कर कहीं जाया जा सकता है ? इनको स्वस्थ हो जाने दे फिर बेशक चले जाना।"

परन्तु रलाराम को पत्नी की यह बात अच्छी न लगी। वह मन ही मन बेटे की प्रशंसा कर रहा था जिसको घर से दुकान की अधिक फिक्र थी। यह तो वह चाहता था। वह अपनी पूरी ताकत लगाकर सांस पर काबू पाकर बोला, "चला जाए···क्यों···क्यों रोकती है, माल खत्म है, ले आए।"

नारायणी पति का विरोध न कर सकी। बेटे को रोकने के लिए उसका मुंह फिर न खुला, पर हृदय उसका कह रहा था कि इसका परिणाम अच्छा नहीं होगा।

प्रेम ने आज बहुत से आवश्यक कार्य करने थे। इसलिए बाप की चारपाई के पास बैठकर उसने समय नष्ट करना ठीक नहीं समझा। वह उठकर बाहर जाने के लिए तैयार हो गया। रलाराम ने एक बार फिर तरसती हुई निगाह से बेटे की ओर देखा। इस निगाह में क्या कुछ था ? प्रेम का हृदय इसकी सतह तक पहुचने में असमर्थ था।

बेटे की पीठ पर हाथ फेरने के लिए अपनी बाज़ू उठाता हुआ रलाराम बोला, "जल्द···जल्द लौटना···मेरा···ध्यान···।"

दुर्बलता ने उसकी आवाज़ को वहीं रोक दिया। पुत्र को पुचकारने के लिए उठा हाथ उसकी पीठ पर न फिर सका।

इस ओर ध्यान दिए बिना ही प्रेम दरवाज़े से बाहर हो गया।

६

बाबू शम्भूनाथ लाहौर के एक सरकारी दफ्तर में कलर्क है। उसका घर अमृतसर में होने के कारण वह बारह महीने यात्री ही रहता है। प्रतिदिन प्रातः साढ़े-सात बजे की गाड़ी से लाहौर जाना और रात आठ बजे की गाड़ी से घर लौटना। कुछ दिन से वह रलाराम के मकान के निचले भाग में किराए पर रह रहा है। आरम्भ से ही शम्भूनाथ के मस्तिष्क में यह बात घर कर गई थी कि पैसा ही भगवान है, पैसा ही गुरू है और पैसा ही सब कुछ है। परन्तु भाग्य की बात है जितना भी अधिक वह लक्ष्मी की श्रद्धा-भाव से पूजा करता है, उतनी ही अधिक वह उससे रुष्ट होती जाती है। वह हमेशा ही ऋणी रहता है और आयु के साथ-साथ यह ऋण भी बढ़ता जाता है।

उसका कद मंझोला और शरीर दुबला है। आयु भले ही उसकी पैंतीस से कम है पर देखने पर वह चालीस-पैंतालीस का लगता है। उसके सिर के बाल आधे से अधिक सफेद हो चुके हैं, परन्तु मूंछों में कोई इक्का-दुक्का ही सफेद बाल दिखाई देता है। रंग उसका तनिक पक्का और सिर के बीच थोड़ा गंजापन भी है। इसको अमीरी का लक्षण बता कई मित्र शम्भूनाथ का उत्साह बढ़ाते हैं, परन्तु मित्रों की यह राय उसे झूठ जान पड़ती है। क्योंकि भाग्य की देवी हमेशा उससे नाराज़ रहती है।

उसका विशाल मस्तिष्क उसकी दूरदर्शिता दर्शाता है परन्तु माथे पर बल और आंखों की सिकुड़न बताती है कि वह पूरा दगाबाज़ और स्वार्थी है।

शम्भूनाथ का परिवार बहुत बड़ा नहीं है। उसकी पत्नी देवकी ग्रौर एक छोटी साली सुशीला, बस।

देवकी बेचारी मास में अट्ठाईस दिन बीमार रहती है। उसके तीखे नक्श इस बात के गवाह हैं। कुछ वर्ष पहले वह अति सुन्दर थी, र बीमारी ने उसके शरीर को निचोड़कर रख दिया है। देवकी के पास अपने माता-पिता की एक ही याद है, उसकी छोटी बहन, जिसको उसने बहन नहीं परन्तु बेटी के रूप में पाला है। माता-पिता की याद उसके हृदय में स्वप्न की तरह शेष है, परन्तु सुशीला को तो यह स्वप्न देखने का अवसर भी नहीं मिला था। दोनों बहनें बचपन में ही अनाथ हो गई थीं।

देवकी का जब विवाह शम्भूनाथ के साथ हुआ उस समय सुशीला ाच वर्ष की थी। विवाह के पश्चात देवकी ने सुशीला को अपने से अलग हीं किया। एक तो वह अपनी बहन को भाभी और ताई के सुपुर्द कर सिन्न नहीं थी, दूसरे भगवान ने आज तक उसकी गोद खाली रखी थी, जेसके कारण सुशीला उसके लिए और भी आवश्यक हो गई।

इस समय सुशीला सोहलवां वर्ष पार कर रही है। उसके शरीर ो गढ़ने के लिए प्रकृति ने, लगता है, खास परिश्रम किया था। उसके ़र एक अंग से अनोखी लचक है। शरीर उसका कुछ भारी पर काफी ंठित है। उसकी आखों से मादकता और निगाह में आकर्षण है।

सुशीला का स्वभाव चिढ़चिढ़ा तो नहीं परन्तु कुछ गुसैल और जिद्दी ावश्य है। उसको जितना खेलने का शौक है उससे कहीं अधिक है ारारत करने का। और इससे भी अधिक शौक है उसे फैशन का। ाम्भूनाथ की गरीबी के कई कारणों में से सुशीला की यह आदत भी ़क है। वह अपने मुंह से जो कुछ भी निकालती है देवकी को हर हालत उसे पूरा करना पड़ता है। शम्भूनाथ कभी-कभी इस फिजूलखर्ची चिढ़कर सुशीला को डांटता तो देवकी की आखों में आंसू भर आते या माता-पिता की याद उसके हृदय में ताजी हो जाती। वह कुछ मय के लिए गुमसुम हो जाती।

शम्भूनाथ सब कुछ सहन कर सकता था परन्तु अपनी बीमार पत्नी ा इस प्रकार भीतर ही भीतर जलना सहन नहीं कर सकता था। यही

"अच्छा, परन्तु वहां आपको किस वात की आमदनी होगी।"

"देखना। यदि कोई दांव लग गया तो दो-चार मास में ही माला-माल हो जाऊंगा। मेरी जगह पर जो पहले कर्क था, सुना है इस समय उसकी तीन हवेली हैं।"

"परन्तु वह फिर कहां गया है? तबदीली हो गई है क्या?"

"नहीं, काफी समय से बीमार था, इसलिए त्यागपत्र दे दिया है उसने। सुना है तपेदिक हो गया था, उसे।"

"अच्छा, बताओ तो सही कि इतनी आमदनी कैसे हो जाती है।"

"भोली, सारी बातें बताने वाली नहीं होतीं। तुम औरतों के पेट में कोई बात छिपती ही नहीं। जब समय आएगा, देखा जाएगा।"

देवकी ने तवे पर रोटी डाली। बातें सुनकर उसकी दशा कुछ अजीब-सी हो गई थी। हर्ष, शंका, भय और उत्साह सबने मिलकर उसके मस्तिष्क में अन्धेरा-सा कर दिया।

खाना खाते हुए शम्भूनाथ बोला, "भगवान ने यदि काम बना दिया तो फिर शायद हम सुशीला के लिए बाबू सुन्दरदास पर भी दबाव डाल सकते हैं।"

देवकी बोली, "आप तो कहते थे कि उसे पत्र लिखकर पूछूंगा।"

"सोचा तो था, परन्तु तुझे तो पता है वह बड़ा आदमी है, दो-अढ़ाई सौ रुपया तनख्वाह पाता है और हमारे पास तो रात के खाने योग्य भी नहीं है। बुद्धिमान लोग ठीक ही कहते हैं कि रिश्ता, शत्रुता और प्रेम बराबरी देखकर करने चाहिएं। उसको लड़कियों की कमी है क्या जो हमसे इस बन्दरी को लेगा?"

"आप स्वयं ही तो कहते थे कि वह मेरी बात को ठुकराएगा नहीं, जहां मित्रता हो, वहां अमीरी-गरीबी काहे की? तब जब वह लाहौर होता था, घर आता था, भाभी कहते उसकी ज़बान नहीं थकती थी। और अब जब उसके पास पैसा आ गया है तो हमें इतना भी नहीं जानेगा?"

"जानेगा क्यों नहीं, विश्वास तो मुझे पूरा है कि वह मेरा कहा लोटाएगा नहीं, परन्तु स्वयं ही संकोच होता है, कुछ तो आदमी के पल्ले होना चाहिए। लड़की को केवल दुपट्टे में लपेटकर ही तो नहीं

देना। खैर, अब तो पक्की आशा बंध गई है। शायद लड़की के भाग्य के कारण ही यह तबदीली हुई हो।"

"परन्तु आप बताते क्यों नहीं सारी बात ? मैं कहीं किसी को बताने जा रही हूं ?"

"न ! यह बात अभी मत पूछ, और न ही मैं बताऊंगा ! हां, एक बात बता···।" इसके बाद कितनी ही देर वह सोचता रहा, "तू भी कितनी मूर्ख है, तुझे कितनी बार कहा इस लड़की को चन्द शब्द पढ़ लेने दे, परन्तु तू एक न मानो। अच्छा, यदि उसने यह रिश्ता मान ही लिया, तो यह बुरा न होगा कि एक शिक्षित के साथ अनपढ़ लड़की का विवाह किया जाए। तूने तो बस लाड़-प्यार में ही उसे बिगाड़ दिया है। पढ़ाने तू नहीं देती, घर के काम को तू नहीं छूने देती। दूसरे घर जाकर तेरी और मेरी नाक ही कटवाएगी और क्या करना है इसने।"

"और मैंने उसे पढ़ने से कब रोका है। कितनी बार तो उसे स्कूल में बैठाया है, न पढ़े तो बताओ मेरा क्या दोष है ?"

"तेरा नहीं तो और किसका दोष है ? पुचकार-पुचकार कर तूने उसे सिर पर चढ़ा लिया है। यदि तनिक उसे कुछ कह भी दें तो आंसू बहाने लगती है।"

"अच्छा पढ़ी नहीं तो न सही। थोड़ा-बहुत गाना-बजाना तो जानती है न। अपने आप मन बहल जाएगा उसका। यदि पढ़ने वाली हुई तो वह पढ़ा नहीं सकेगा ? मैं तो कहती हूं कि यदि यह काम हो जाए तो शान्ति मिले। लड़के का न बाप है न मां। आप ही बनाएगी आप ही खाएगी। न किसी के लेने में और न किसी को देने में। आज-कल की सास तो बहुओं को भर पेट खाना भी नहीं खाने देतीं। चूड़ा भी मैला नहीं होता कि तेरी-मेरी···तेरी-मेरी करने लगती हैं।"

"अच्छा मेरा विचार है कल उसे एक पत्र लिखकर देखें, भला क्या जवाब देता है।"

"कल क्यों, अभी ही लिख दो, सुबह दफ्तर जाते हुए डालते जाना।"

"ठीक है, कहकर शम्भूनाथ रसोई घर से बाहर निकला। बाहर निकलकर जब वह कुल्ला करने लगा तो दरवाजे के पीछे से उसे गुलाबी

दुपट्टे की झलक पड़ी। वह समझ गया कि सुशीला दरवाज़े के छिप उनकी बातें सुन रही थी।

देवकी के पास आ, वह क्रोधित हो कहने लगा, "देखा तूने, यह की कितनी बिगड़ गई है, दरवाज़े के पीछे छिपकर सभी बातें सुन है।"

देवकी बोली, "छोड़ो भी, फिर क्या हुआ। लड़कियों को शौक ता ही है अपने विवाह की बातें सुनने का।"

शम्भूनाथ का क्रोध जाता रहा और वह भीतर जाकर पत्र लिखने गा।

७

कांगड़ा-पहाड़ियों को प्रकृति ने जो सुन्दरता प्रदान की है, वह काश्मीर और कुल्लू को छोड़ और कहीं भी दिखाई नहीं देती। बर्फ से ढकी यहां की चोटियों और चांदी उगलते चश्मों को जो आंखें एक बार देख लेती हैं, तो फिर जीवन-भर इनको नहीं भूल सकतीं।

ग्रीष्म ऋतु है। परन्तु प्रकृति-देवी के इस राज-सिंहासन पर गरमी नाम मात्र को भी नहीं। शायद किसी दैवी शक्ति ने इस धरती की सारी गरमी को एकत्रित कर 'ज्वाला माई' को सौंप दिया है, जिसने उसे धरती के भीतर दबा दिया है। कांगड़ा का एक सुन्दर शहर है—धर्मशाला। आज हम इस, हरियाली से ढके, पहाड़ के एक रमणीक भाग की सैर करने चलते हैं।

प्रभात की वेला है। कुछ झुके हुए काले बादलों, और कुछ घने हरे वृक्षों की छांव के कारण हरी-भरी घाटियां स्वर्ग का नमूना बन गई हैं। ठंडी, नमी और फूलों की सुगन्ध लिए हवा का प्रत्येक झोंका, दिल और दिमाग को शान्ति पहुंचाता है और मनुष्य के हृदय में मस्ती का संचार करता है।

भागसूनाथ के समीप, उसके सामने वाली हरी घास और फूल पौधों से लदी पहाड़ी पर खड़े हो, यदि नीचे की ओर देखा जाए, तो

घने जंगल के बीच काले नाग की तरह चमकते हुए एक नाले को छोड़ और कुछ नहीं दीखता। शा···शा करती इसकी मधुर आवाज, पक्षियों की सुरीली आवाजों में मिल और ही दृश्य प्रस्तुत करती है। बीच-बीच में जंगली तीतर 'सुबहान तेरी कुदरत' (बलिहारी तेरी माया के) कहकर, सचमुच ही भगवान को उसकी माया की याद दिला रहे हैं। कभी-कभी बिजली की चमक से यह दृश्य और भी स्पष्ट हो जाता है। इसी चमक में हम, नाले के किनारे बैठे एक सुन्दर हृष्ट-पुष्ट नवयुवक को देखते हैं।

तनिक और आगे बढ़ने से, साफ दिखाई देने लगता है कि नवयुवक इस सुन्दरता भरे एकांत में, अकेला बैठा प्रकृति के इस अलौकिक दृश्य का आनन्द ले रहा है। उसकी वेश-भूषा से वह सरकारी आफिसर लगता है।

उसका कद लम्बा, शरीर की बनावट सुडौल, चेहरा मोहक परन्तु गम्भीर लगता है। उसके हाथ में एक छड़ी है, जो कन्धे से ऊंची है। छड़ी के निचले भाग में लोहे का तीखा सुंमा लगा हुआ है। ऐसी छड़ी अधिकतर सैलानियों के पास होती थी। इससे ऊंची चट्टानों पर चढ़ने और उतरते समय पांव फिसलने का डर नहीं रहता।

छड़ी को पानी की निचली सतह पर गाड़, और उसपर अपनी दाईं कोहनी को टिका, पैरों को पानी में डाल, वह टकटकी लगाए पानी की चंचल धारा को देखे जा रहा है। उसका नाम है बाबू सुन्दरदास।

उसकी आयु इस समय ३० वर्ष से अधिक नहीं है। वह ज़िला गुजरांवाला के एक खाते-पीते परिवार का कुलदीपक है। बचपन में ही सिर से मां-बाप का साया उठ जाने के कारण, उसे बड़ी बहन ने पाला था और बी० एस-सी० तक शिक्षा भी दिलवाई थी।

बाबू सुन्दरदास को बचपन से ही रोगियों की सेवा आदि करने का चाव रहा है। उसने आरम्भ से ही एक अच्छा डाक्टर बनने का प्रयास किया हुआ था। धन कमाने के लिए नहीं, सेवा करने के लिए। सुन्दरदास की बहन उसकी पढ़ाई को पूरा करवाने के पश्चात्, उसका विवाह भी कर देना चाहती थी। भले ही द्रौपदी का स्वर्गवासी पति गुज़ारा चलाने के लिए काफी कुछ छोड़ गया था, परन्तु लगातार पानी

निकलता जाए तो कुआं भी खाली हो जाता है ! उसके अलावा विधवा पर दो लड़कों का भी बोझा था। परन्तु सुन्दरदास के सपने बड़े ऊंचे थे। वहन पर वह और बोझ लादना नहीं चाहता था, इसलिए उसने आगे की पढ़ाई का खर्च स्वयं अपने ऊपर ले लिया। उसने एक-दो ट्यूशन कर लीं। अवसर मिलने पर वह और भी मेहनत-मज़दूरी कर लेता। अन्त में उसने लखनऊ के मेडिकल कालेज से एम० बी० बा० एस० की डिग्री प्राप्त कर ही ली। इसके पश्चात वह कलकत्ता गया और दो वर्ष पश्चात डी० पी० एच० का डिपलोमा प्राप्त किया। अब वह एक ऊंची श्रेणी का डाक्टर था। उसकी इच्छा पूरी हुई, परन्तु अभी पूर्ण रूप से नहीं। अपने जीवन को वह जिस ओर लगाना चाहता था, उस ओर अभी तक नहीं लगा सका था। उसपर अभी पारिवारिक ज़िम्मेदारियों का काफी बड़ा बोझ था। बहन की अभी भविष्य की आशाएं उसपर लगी थीं। इसलिए बाध्य हो, उसको वह कार्य करना ही पड़ा जो वह करना नहीं चाहता था, अर्थात नौकरी।

लगभग दो वर्ष उसने लाहौर के सरकारी मेडिकल विभाग में एक साधारण डाक्टर के रूप में नौकरी की। इतने थोड़े समय में ही उसकी ईमानदारी, कर्मनिष्ठा और योग्यता की धाक जम गई। इसीके फल-स्वरूप सुन्दरदास को ज़िला कांगड़ा का हैल्थ-आफिसर बनाकर धर्मशाला हैड क्वार्टर में भेज दिया गया।

आजकल के सरकारी डाक्टर अधिकतर रिश्वत, जिसका दूसरा नाम चढ़ावा है, के सहारे जीते हैं। उनको नौकरी बाद में मिलती है, परन्तु मालरोड और माडल टाऊन में कोठी बनाने के स्वप्न पहले से दिखाई देने लगते हैं। लड़ाई-झगड़ा और खून-खराबे के वक्त तो उनके वारे-न्यारे होते हैं। ज़ख्मों की चीर-फाड़ करते हुए इनका स्वभाव इतना कठोर हो जाता है कि वह दिल के टुकड़े काटने से भी नहीं झिझकते। परन्तु सुन्दरदास सदा ही इस रोग से बचा रहा है। उसने न तो कभी स्वयं काला-धन लिया है और न ही अपने अधीन किसी कर्मचारी को ऐसा करने दिया है।

आजकल उसके भाग्य का सितारा चमक रहा है, परन्तु इतना कुछ होते हुए भी वह अकेला है। मित्रों की उसे कमी नहीं परन्तु हृदय के

भावों को समझने वाला उसे कोई नहीं मिला। उसका घर धन-दौलत से भरपूर है, परन्तु एक वस्तु अभी भी खाली है—उसका हृदय।

रिश्ता करनेवाले हर समय उसके आगे-पीछे फिरते हैं, परन्तु सुन्दरदास का मन इन अनदेखे और अनसमझे लोगों से घबराता है। वह एक ऐसी सुन्दरी को प्रेम-पात्र बनाना चाहता है जो उसीके समान सरल स्वभाव और प्यार की मूर्ति हो। यही कारण है उसका आज तक कुंवारा रहने का, और यही कारण है उसकी उदासी का।

अपनी कल्पना के द्वारा वह जिस गृहस्थ-जीवन की झांकी देखता है, वैसे साथी की प्राप्ति, उसके अनुसार लगभग असम्भव है, इसीलिए आज-तक वह विवाह से कन्नी काटता आया है। परन्तु जीवन तो ऐसी वस्तु नहीं जो प्रयोग न करने पर ज्यों के त्यों रह सके। इसको किसी न किसी ओर न लगाने में ही भलाई होती है। शायद इसीलिए सुन्दरदास ने अपने जीवन को एक अनोखी ओर लगा दिया है। छोटे-छोटे बच्चों से प्यार करना, उनके साथ खेलना, नाचना और उनकी हर प्रकार की सेवा करना बस यही है आजकल उसकी दिनचर्या। उसका प्यार भरा हृदय, जहां गिरना चाहता है वह स्थान अभी उसे नहीं मिला। यही कारण है कि अभी वह अपने प्यार का सागर बाल-सेना पर लुटा रहा है। यही कारण है कि आजकल उसके एकाकी जीवन में उतना खालीपन नहीं है। वह एक सरकारी कोठी में रहता है, घर में उसकी बहन, उसके दो लड़के और दो नौकर हैं। हर रविवार को वह अकेला सारे दिन की सैर के लिए घर से निकलता है और आस-पास के गांवों में चला जाता है। उसे देखते ही पहाड़ी लड़के-लड़कियां उसके चारों ओर झुंड बना लेते हैं। वह सबके साथ मिलकर खेलता है, उनको कहानियां सुनाता है, चीजें बांटता है और कई प्रकार के उपदेश देता है।

जब कभी उसे किसी रोगी की सूचना मिलती है, वह सरकारी काम को छोड़ और किसी भी तरह की चिन्ता किए बिना वहां पहुंच जाता है। यही कारण है कि इधर कुछ वर्षों में ही उसने सभी पहाड़ी लोगों के हृदयों में घर कर लिया है। वही पहाड़ी, जिनके बारे में कहावत है—'पहाड़ी यार किसके, भात खाया और खिसके,' बाबू सुन्दरदास के एक इशारे पर जान देने लगते हैं।

आज भी रविवार होने के कारण, वह घर से सैर के लिए निकला
सायंकाल अपने मित्र के घर एक दावत पर गया था, और इस समय
की आंखों के सम्मुख वही दृश्य घूम रहा है। उसने कल एक अभूत-
जोड़ा देखा था, घर का मालीक और मालकिन। पति की प्रत्येक
च्छा को पत्नी किस तरह हार्दिक खुशी और उत्साह के साथ पूरा करती
थी। पति के मुंह से निकलने वाले शब्दों के लिए जैसे उसका हृदय उमड़-
उमड़ पड़ता था। कितनी मीठी, कितनी मिलनसार, सुशील और पति-
प्यार में डूबी हुई थी वह सुन्दरी। खद्दर की साड़ी उसकी सुन्दरता को
कितना निखार रही थी। उसकी हर बात में सादगी, हर लहजे में सर-
लता और हर काम में स्वच्छता थी। उसको देखते ही सुन्दरदास का
हृदय सपनों से भर गया, 'क्या मेरे लिए विधाता ने संसार में कोई ऐसी
सुन्दरी नहीं रची है?' नाले के किनारे वह इन विचारों में डूबा हुआ
बैठा था, कि उसे अपनी पीठ पर किसी के स्पर्श का अनुभव हुआ। उसे
लगा जैसे नीचे से कोई चीज़ उसकी गर्दन की ओर सरकती जा रही है।

डरकर उसने पीछे देखा और देखकर हैरान रह गया। उसके होंठों
पर प्यार भरी मुस्कराहट खेलने लगी। उसने सहज भाव से फिर अपना
ध्यान दूसरी ओर लगा दिया।

यह ग्यारह-बारह वर्ष की पहाड़ी लड़की थी, जो सुन्दरदास की
पीठ के साथ अपना कन्धा जोड़, उसकी पीठ के उपरी भाग को अप
हाथ से थपथपा रही थी। वह इस तरह अपनी बाल-लीला में मस्त थ
मानों कोई बड़ा ही जरूरी और गम्भीर प्रश्न हल कर रही हो।

उसे अपने रोल में लगा रहने देने के विचार से सुन्दरदास ने तु
ही अपना ध्यान उस ओर से मोड़ लिया था। वह लड़की उसके
प्रेम-पात्रों में से भी जिन्हें वह हर रविवार को कुछ दे जाता था
कुछ सुना जाता था। लड़की के सिर पर खद्दर की एक मैली चुनरी
तन पर जामुनी रंग का फटा हुआ एक लम्बा कुर्ता था। इस मैली
में से उसका गोरा और सुकोमल चेहरा इस तरह चमक रहा
बादलों में से चांद। साथ ही सुन्दरदास के कान में आवाज़
'एक...दो...तीन...।'

अन्त में सुन्दरदास से न रहा गया और वह खिलखिला

पड़ा। लड़की अनादर का भाव आते ही एकदम पीछे हट गई। सुन्दरदास ने हंसते-हंसते पूछा, "आओ मनो ! यह क्या कर रही थी, तू ?" लड़की का नाम मनोरमा था, जिसको आधा नाम 'मनो' के नाम से पुकारा जाता था।

कुछ सरलता के साथ, मानों अपने प्रश्न का जवाब ढूंढकर बोली, "आप तो बाबू जी, बहुत बड़े हो।"

सुन्दरदास की समझ में न आया कि वह किसलिए उसको अपने हाथ से माप रही थी, और फिर कहती है, "आप कितने बड़े हो।" उसने फिर पूछा, "तूने किसलिए मुझे मापा है ?"

वह उसी सरल भाव से बोली, "मेरा मां कहती थी, मनों ! तेरा बाबू के साथ विवाह कर दें ? मैंने उसको कहा, बाबू तो मेरे से बहुत बड़ा है। इसीलिए मैंने आपकी जाच की थी। आप तो बाबूजी ! मेरे से तीन हाथ बड़े हैं।"

बाबू सुन्दरदास के पेट मे उसकी बातें सुनकर हंसी से बल पड़ने लगे। कितनी सरलता थी उस भोली लड़की मे और उसकी मां के निष्कपट हृदय में। वह सोचने लगा, लड़की बार-बार अपनी मां से मेरा जिक्र करती होगी, क्योंकि इसको आशा थी कल रविवार है, बाबू आएगा, और इसकी मा ने इसे हसी मे कह दिया होगा कि बाबू के साथ तेरा विवाह कर दें ? और भोली लड़की ने इस मजाक को सच मान लिया होगा। फिर भी इतना तो वह जानती ही थी कि विवाह अक्सर बराबर वाले के साथ होता है। इस तरह इसी चिन्ता मे, दूसरे बच्चों से पहले ही वह घर से चली आई है, और आते ही मेरी पीठ से अपनी पीठ जोड़कर मापना शुरू कर दिया है।

लड़की की यह अजीब बातें सुनकर और हाथ द्वारा मापे जाने की क्रिया को देखकर, सुन्दरदास को स्वर्गीय आनन्द मिला। वह लड़की को प्यार करते हुए सोचने लगा, 'प्रकृति ने मेरे प्रश्न का कितना सुन्दर उत्तर दिया है। मैं कितना मूर्ख हूं जो विवाह जैसे बन्धन और गृहस्थी जैसे जंजाल में सुख की कल्पना करता हूं। होता होगा इसमे सुख, परन्तु जो मुझे इन (लड़की के चेहरे को देखते हुए) स्वर्गिक फूलों को प्यार करने से मिलता है, इसके बराबर तो गृहस्थी छोड़ स्वर्ग

तुच्छ है।'

अभी वह यह सब सोच ही रहा था कि दूर से उसे शोर सुनाई दिया और देखते ही देखते उस नाले के किनारे पहाड़ी बच्चों की भीड़ लग गई। आते ही सारे बच्चे उसके साथ इस तरह लिपट गए जैसे शहद के छत्ते के साथ मधुमक्खियां। सुन्दरदास उन सबको लेकर एक मैदान में आ गया। यह वह स्थान था, जहां हर रविवार को वह बाल-सेना के साथ खेलता था।

सदा की भांति,उसने उन सबको एक दायरे की शकल में बैठा दिया और स्वयं उनके बीच खड़ा हो गया। इसके पश्चात्, उसके आदेश अनुसार बच्चों ने दो-तीन गीत गाए, जो उसने उन्हें कंठस्थ करवाए हुए थे। फिर एक-एक को अपने पास बुला उनसे कई प्रकार के प्रश्न करने लगा, 'तू सारे सप्ताह में कितनों से लड़ा है, कितनों को गाली दी है, और कितनी बार झूठ बोला है, और माता-पिता की कौनसी बात तूने नहीं मानी ?' आदि।

इस सबमें मजेदार बात यह थी कि कोई भी बच्चा झूठ नहीं बोलता था। सभी अपने दोषों को अपने मुंह से स्वीकार कर लेते थे। और न ही सुन्दरदास किसी को उसके दोष के बदले डांटता था। केवल इतना ही, जिन्होंने सप्ताह भर में कोई गलती न की थी, उसने उनका माथा चूम लिया, और पीठ पर थपकी दी। परन्तु जो दोषी थे वे इस इनाम से वंचित रहे। परन्तु फिर भी वे निराश नहीं थे। शायद उन्हें विश्वास था कि अगले रविवार को वे इस इनाम को प्राप्त कर लेंगे। इस प्रकार कितनी ही देर तक सुन्दरदास और उसकी बाल-सेना के खेल और पढ़ाई आदि होती रही। जब बारह बजे तो सुन्दरदास ने सोचा कि उसे घर जाकर खाना खाना हैऔर अपना-काम आदि भी करना है, तब उसने छुट्टी की सीटी बजा दी।

सभी बच्चे एक पंक्ति में खड़े हो गए। सुन्दरदास ने अपना मिठाई वाला झोला, जो एक पेड़ के साथ टंगा हुआ था, उतारकर नीचे घास पर उड़ेल दिया। इशारा पाकर सभी बच्चे अपने-आप एक-एक लड्डू उठाकर और सुन्दरदास को नमस्कार कर अपनी-अपनी राह पर जाने लगे।

थोड़ा समय पश्चात् वहां फिर पहले की तरह शान्ति छा गई। नाले की शां-शा और पक्षियों की चीं-चीं को छोड़ और कुछ भी सुनाई नहीं देता था। सुन्दरदास बची हुई मिठाई को झोले में डाल एक हरी-भरी चट्टान पर चढ़ने लगा। इसी प्रकार घूमता हुआ, अन्त में, वह सायंकाल को अपने घर लौटा।

लैटर-बक्स खोलकर उसने आज की डाक देखी। इसमें दो समाचार पत्रों के अतिरिक्त एक पत्र भी था। बैठक में जाकर उसने समाचार-पत्र मेज पर रख दिए और पत्र को खोला। फिर कुर्सी पर बैठकर पढ़ने लगा। पत्र इस प्रकार था :—

"प्रिय सुन्दरदासजी,

आज लम्बे समय के पश्चात् आपको पत्र लिखने बैठा हूं, शायद इस पुराने और गरीब मित्र की तुम्हें याद भी नहीं रही होगी। भगवान की कृपा से आज आप एक ऊंचे पद पर हैं। और आपकी तो सचमुच भगवान ने सुन ली है। जिस प्रकार का एकान्तवासी आप बनना चाहते थे भगवान ने आपको वैसे ही स्थान पर पहुंचा दिया है। आशा है आप कांगड़ा की हरी-भरी पहाड़ियों पर बैठकर समाधि लगाते होंगे। परन्तु मैं आपको एक बात की याद दिलाना चाहता हूं कि जबतक आप गृहस्थ आश्रम की मंजिल को नहीं पा लेते तब तक आपकी योग-साधना भगवान भी स्वीकार नहीं करेगा।

वास्तव में बात यह है कि आपकी भाभी जी, आपसे गुरु-दीक्षा लेना चाहती हैं और गुरु-दक्षिणा के रूप में एक तुच्छ वस्तु भेंट करना चाहती हैं। क्या आप अपनी शिष्या की भेंट स्वीकार करने के लिए तैयार हैं? यह भेंट क्या होगी? आप जानते ही हैं कि सुशीला को छोड़, आपको देने के लिए हमारे पास और कुछ भी नहीं है। आशा है स्वीकृति के साथ जवाब देकर, आभारी बनाओगे। सुशीला की ओर से नमस्ते स्वीकार करना।

उत्तराभिलाषी, आपका
शम्भूनाथ, अमृतसर।"

पत्र पढ़कर सुन्दरदास के हृदय में अपने मित्र और अपने सहपाठी की याद ताज़ा हो गई। फिर उसको शम्भूनाथ की पत्नी का ध्यान आया, जो उसे सगे देवर की भांति स्वागत करती थी। वह सोचने लगा,

की पत्नी सचमुच एक सच्ची पतिव्रता और सुन्दरी है। उसकी
ान में जितनी मिठास है उससे कहीं अधिक सरलता उसके चेहरे पर
। सुशीला चाहे उस समय बच्ची थी, परन्तु है तो देवकी की बहन ही।
ो गुण देवकी में हैं, वही यदि सुशीला में हों, तो मेरे लिए उससे अच्छी
साथिन ढूंढ़ना शायद असम्भव होगा। अपनी बहन जैसे गुण, उसमें
होंगे क्यों नहीं—ज़रूर होंगे। भले ही तब, जब मैंने उनको देखा था,
कुछ चंचल थी। परन्तु बचपन में तो, लगभग सभी चंचल होते हैं।
फिर भी जीवन में जिसको साझीदार बनाना है, उसे एक बार देख त
लेना चाहिए। विचारों का आदान-प्रदान करके इतना तो मालूम कर
लेना चाहिए कि सुशीला मेरे साथ निबाहने के योग्य है भी या नहीं।
बिना देखे-समझे सामाजिक कानून की रस्सी से बन्धे हुए, हज़ारों लोग
आज अपने जीवन को नरक बना, दुःखों की घड़ियां गिन रहे हैं। कहीं
मेरे साथ भी वैसा न हो जाए। नहीं, मैं भली प्रकार सोचे-समझे बिना
इस रिश्ते को स्वीकार नहीं करूंगा। पत्र द्वारा शम्भूनाथ की स्वीकृति
पाकर एक-दो दिन के लिए अमृतसर चला जाऊंगा। अभी एक पत्र
शम्भूनाथ को लिख देता हूं।'

परन्तु तभी उसे अपनी बहन का ध्यान आया। द्रौपदी, पुर
विचारों वाली थी। नये रंग-ढंग के सामाजिक रीति-रिवाज के अनुस
चलना तो दूर, इनको सुनना भी पाप समझती थी। परन्तु यह
होते हुए भी सुन्दरदास के हृदय में द्रौपदी के प्रति काफी प्रेम
श्रद्धा थी। वह उसकी इच्छा के विरुद्ध एक कदम भी नहीं चल सकत
जिससे द्रौपदी के हृदय को आघात पहुंचे, वह भूल से भी ऐस
नहीं करना चाहता था। वह यह सोच ही रहा था कि द्रौपदी
भेजा गया नौकर खाने के लिए बुलाने आ गया। सुन्दरदास
रसोई घर की ओर चल पड़ा। पत्र उसने बहन को सुनाया और
खाने लगा।

द्रौपदी ने पत्र सुना और अर्थमयी दृष्टि से भाई की अ
आम दिनों की अपेक्षा आज सुन्दरदास के चेहरे पर सहमति
देखकर द्रौपदी को बड़ी प्रसन्नता हुई। वह तो कब की उस श
प्रतीक्षा में थी, जब उस घर की किस्मत जागेगी। उसने

शम्भूनाथ वही है न अमृतसर वाला।"

"हां बहन।"

शम्भूनाथ की गरीबी से तो द्रौपदी भी परिचित थी। परन्तु वह सुन्दरदास के मुह से 'हा' सुनना चाहती थी। उसने जल्दी से कहा, "लड़की तो मैंने देखी है। तब छोटी थी, बिलकुल नन्ही-सी। अब तो काफी बड़ी हो गई होगी। सुन्दर! लड़की तो सचमुच चाद का टुकड़ा है।"

और सुन्दरदास का हृदय टटोलने के विचार से वह फिर बोली, "फिर है भी अपनी जात-बिरादरी में से। और वह है भी तेरा बचपन का मित्र।"

सुन्दरदास बोला नही। इस चुप्पी को द्रौपदी आधी सहमति समझकर फिर बोली, "पत्र लिख दे उसे। हमें धन-दौलत की आवश्यकता नहीं, हमें तो लड़की वह चाहिए जो अन्धेरे में बैठे तो उजाला कर दे।"

शर्माते हुए सुन्दरदास बोला, "पर बहन, मेरी कठिनाई तो वही रही न। क्या पता कैसे स्वभाव की हो। चाहे कोई भी काम हो सोच-समझकर किया जाए तो अच्छा होता है, ऐसे······।"

यह झगड़ा पहले भी कई बार हो चुका था, जिसके परिणाम स्वरूप सुन्दरदास आज तक कुंवारा था। परन्तु अब द्रौपदी के लिए यह दुःख असह्य हो गया था। वह भाई को अधिक देर कुंआरा नही देखना चाहती थी। सुन्दरदास की बात सुनकर वह बोली, "भैया, बच्चों वाली बातें नहीं किया करते। अपना खानदान भी देखा करते हैं। फिर शम्भूनाथ का घर कोई हमारे लिए नया थोड़े ही है? लड़की मेरी भी देखी हुई है, तूने भी देखी है। फिर और क्या देखना है?"

सुन्दरदास आज भी वैसा ही था, जैसा आज से कुछ समय पहिले। परन्तु अपनी बहन के भावों को वह बार-बार कुचलना नहीं चाहता था। पहले वह अड जाता था, परन्तु अब उसका हृदय विरोध न कर सका। फिर पीछे जितने रिश्ते आए थे, उन सबसे सुशीला का रिश्ता कुछ उचित लगा। शम्भूनाथ और उसके परिवार से वह परिचित था। इसलिए उसने मन की इच्छा को मन में ही रहने दिया। अपनी होने

के नीचे इस प्रकार चमक रही थीं जैसे तारे। कोतवाली बाज़ार से चर्च रोड नाम की एक सड़क सीधी ऊपर की ओर जाती है। और चोटी पर पहुंचकर मैकलोड गंज के साथ मिलती है। इसकी लगभग एक मील चढ़ाई के पश्चात एक ढालू चट्टान शुरू होती है, जिसके नीचे दूर तक हरियाली ही हरियाली दिखाई देती है। यहां दो पंक्तियों में बनी कोठियों को देख, ऐसे लगता है मानो वन-देवी ने सफेद फूलों की माला पहन रखी हो। इन्हीं में एक दो मंज़िली कोठी है, जिसके आंगन में फूलों के बहुत से पौधे लगे हुए हैं।

दोपहर का समय है। परन्तु वर्षा ने दिन को रात में बदल दिया है। इस कोठी की ऊपरी छत पर एक युवा जोड़ी बरामदे में बैठी वर्षा का आनन्द ले रही है। ऐसा मनोहर समय जब बिना शराब के ही आदमी को मस्त बना देता है तो व्हिस्की की पूरी बोतल तो अपने आप दुगना नशा देगी ही। यह जोड़ी अपरिचित नहीं, यह हमारी जानी-पहचानी शक्लें हैं—प्रेम और जमना बाई।

'जमना' उमड़ रही है और 'प्रेम' डुबकियां लगा रहा है। इस समय वर्षा इतनी तेज़ है अगर इनके बरामदे की दीवार में शीशे न होते तो वर्षा की बौछार में उनका यहां बैठना दूभर हो जाता।

जमना बरामदे की ओर पीठ किए। कुर्सी पर बैठी खाने में मस्त है। परन्तु प्रेम जिसका मुंह बरामदे की ओर है, बीच-बीच में एक नज़र सामने वाली कोठी की गैलरी में बैठी दो युवतियों की ओर भी देख लेता है, जो आराम कुर्सियों पर बैठी कपड़ों पर बेल-बूटे काढ़ रही है। यूं तो प्रेम को जमना का भी डर है और अपनी पड़ोसिनों की रुसवाई की चिन्ता भी, परन्तु हज़ार बार चाहने पर अपनी नज़र को उधर जाने से रोक नहीं पाता। एक बार देखने के पश्चात सोचता है कि अब नहीं देखूंगा, परन्तु थोड़े समय पश्चात फिर विचार आता है, एक बार केवल एक बार नज़र-भर देख लूं फिर बिलकुल उधर ध्यान नहीं करूंगा। परन्तु नज़र को रोकने के लिए उसका यह इलाज उसी तरह सिद्ध होता है जैसे किसी के मुंह में बाल चला गया हो और उसे निकालने के लिए वह कम्बल के किनारे से जीभ को साफ कर रहा हो।

प्रेम और जमना को साकी का काम दे रहा है, वही नौकर मनोहरी

ोपालसिंह ने शायद अपना मतलब सिद्ध करने के लिए गुप्तचर कर, एक रसोइए के रूप में इनके साथ भेज दिया था। इस समय नों नशे में चूर हैं। जहां दोनों ओर वासना और स्वार्थ का ज़ोर हो र उसपर भी शराब की अधिकता, वहां क्या कुछ चालें नहीं चलो तीं।

प्रेम ज्यों-ज्यों बोतल की गहराई से उतरता जाता है त्यों-त्यों उसकी नज़र बरामदे के शीशों को पार करके सामने वाली कोठी के जंगले की ओर बढ़ती जाती है, और वहां बैठी उन युवतियों को ऊंची आवाज़ में सुना-सुनाकर कह रहा है:—

"अलफ आ मेरे नयनों वालीएनी, तेरे नयनों ने मारा तीर मुझको, पीछा तेरा न कभी भी छोड़ूंगा मैं, चाहे मार डाले तेरे वीर मुझको।"

सामने वाली कोठी की युवतियां थोड़ी-थोड़ी देर बाद उसकी ओर घृणा भरी नज़रों से देख लेती हैं, परन्तु मतवाला प्रेम इसका कुछ और ही अर्थ निकालता है। उसका विचार है कि दोनों युवतियां उसके नयनों रूपी तीरों से घायल होकर उसकी ओर देख रही है। अब वह और भी ऊंचे और उत्तेजित स्वर में गाने लगा, "तेरी कंटीली निगाहों ने मारा।" पहले जितनी देर उसको नशा नहीं चढ़ा था तो वह जमना से चोरी-चोरी उनकी ओर देखता था, परन्तु अब उसे इसका ध्यान ही न रहा।

जमना भी उसकी इन हरकतों से बेखबर नहीं थी। वह मन ह मन जल रही थी और प्रेम से घृणा कर रही थी। भले ही वह पवि नहीं थी और न ही प्रेम की विवाहिता पत्नी थी। फिर भी प्रेम की हरकतों को सहन करना उसके लिए बड़ा कठिन था। सचमुच यह इतना बड़ा अपराध था जिसे एक पत्थर की स्त्री भी सहन नहीं सकती थी जमना तो फिर हाड़-मांस की बनी हुई थी।

उधर सामने वाली कोठी में बैठी युवतियां भी काफी देर सब कुछ देख रही थीं। आंखें फाड़-फाड़ कर अपनी ओर दे आलावा, वे उस बेलगाम ऊंट और उसकी साथिन की दूसरी भी देख चुकी थीं, बेशक जमना उनकी ओर पीठ किए हुए थी। प्रेम ने उनका बैठना ही दूभर कर दिया तो दोनों उठकर भी गई। जाते-जाते एक बड़बड़ाई, "बेशरम हरामी।" दूसरी बो

वह भी वेश्या ही दीखती है।"

वे अन्दर चली गई। इधर प्रेम की आंखों के सामने से जैसे स्वर्ग लुप्त हो गया था। फिर भी कई बार उसने उस ओर देखा, परन्तु दोनों कुर्सियां खाली थीं। केवल एक छाता लिए हुए युवक बाहर से अन्दर जाता हुआ उसे दिखाई दिया। फिर भी वह निराश नहीं हुआ वल्कि नई आशाओं का महल उसके हृदय और मस्तिष्क में बनने लगा। वह सोचने लगा—आशाओं के इस महल की सीढ़ियां किस ओर रखी जाएं। ऐसा सोचते हुए उसने जमना की ओर देखा। जमना उस समय घृणा की आग में ऐड़ी से चोटी तक जल रही थी और उस आग को वह स्वार्थ के पानी से बुझाना चाह रही थी। प्रेम ने उसकी ओर देखा तो सही, पर कुछ लापरवाही की नजर से। जमना को इसका कारण मालूम था।

प्रेम को जमना बाई के साथ इस पहाड़ पर आए एक सप्ताह हो गया था। पीछे घर में क्या हो रहा है और दुकान की क्या दशा हो रही है? इसका प्रेम को बहुत कम ध्यान आता था। कभी यदि उसे अपने बाप की बीमारी का ध्यान हो आता, तो वह सोचता कि एक बूढ़ा जो अपने खाने-पीने के दिन बिता चुका है, उसे खोकर अगर बदले में एक नवयुवा सुन्दरी, दिलो-जान पर से बलिहारी जानेवाली सुन्दरी मिल जाए तो यह सौदा बहुत ही सस्ता है। शेष रही दुकान की बात। इसके बारे में वह जानता था कि इस बीच यदि दुकान को चार-पांच सौ का घाटा या लाभ हो भी गया तो कोई विशेष अन्तर नहीं पड़ेगा, जबकि दूसरी ओर एक हीरे और जवाहारात की खान उसके हाथ में आनेवाली है।

परन्तु इस सबके बावजूद उसका मन एक सप्ताह में ही जमना बाई से भर गया था। अपने पहले स्वभाव के अनुसार वह जमना बाई को मोह-जाल में फंसे रहने से घबरा सा गया था—कुछ छटपटाने सा लगा था। परन्तु वहां से छुटकारा मिलना भी तो कठिन था। वह स्वयं भी छुटकारा नहीं पाना चाहता था, क्योंकि ऐसा करने से जो वह माया से कमरे भरना चाहता है खाली रह जाने का डर था। किसी न किसी तरह वह जमना को खुश रखना चाहता था। दोनों ओर स्वार्थ

ालसिंह ने शायद अपना मतलब सिद्ध करने के लि
एक रसोइए के रूप में इनके साथ भेज दिया था। इस समय
नशे में चूर हैं। जहां दोनों ओर वासना और स्वार्थ का ज़ोर हो
सपर भी शराब की अधिकता, वहां क्या कुछ चालें नहीं चली
।

प्रेम ज्यों-ज्यों बोतल की गहराई से उतरता जाता है त्यों-त्यों
की नज़र बरामदे के शीशों को पार करके सामने वाली कोठी के
ाले की ओर बढ़ती जाती है, और वहां बैठी उन युवतियों को ऊंची
ावाज़ में सुना-सुनाकर कह रहा है:—

"अलफ आ मेरे नयनों वालीएनी, तेरे नयनों ने मारा तीर मुझको
पीछा तेरा न कभी भी छोड़ूंगा मैं, चाहे मार डाले तेरे वीर मुझको"

सामने वाली कोठी की युवतियां थोड़ी-थोड़ी देर बाद उसकी ओर घृणा भरी नज़रों से देख लेती हैं, परन्तु मतवाला प्रेम इसका कुछ और ही अर्थ निकालता है। उसका विचार है कि दोनों युवतियां उसके नयनों रूपी तीरों से घायल होकर उसकी ओर देख रही हैं। अब वह और भी ऊंचे और उत्तेजित स्वर में गाने लगा, "तेरी कंटीली निगाहों ने मारा।" पहले जितनी देर उसको नशा नहीं चढ़ा था तो वह जमना से चोरी-चोरी उनकी ओर देखता था, परन्तु अब उसे इसका ध्यान ही न रहा।

जमना भी उसकी इन हरकतों से बेखबर नहीं थी। वह मन ही मन जल रही थी और प्रेम से घृणा कर रही थी। भले ही वह पवित्र नहीं थी और न ही प्रेम की विवाहिता पत्नी थी। फिर भी प्रेम की इन हरकतों को सहन करना उसके लिए बड़ा कठिन था। सचमुच यह ए इतना बड़ा अपराध था जिसे एक पत्थर की स्त्री भी सहन नहीं क सकती थी जमना तो फिर हाड़-मांस की बनी हुई थी।

उधर सामने वाली कोठी में बैठी युवतियां भी काफी देर से सब कुछ देख रही थीं। आंखें फाड़-फाड़ कर अपनी ओर देख अलावा, वे उस बेलगाम ऊंट और उसकी साथिन की दूसरी भी देख चुकी थीं, बेशक जमना उनकी ओर पीठ किए हुए थी। प्रेम ने उनका बैठना ही दूभर कर दिया तो दोनों उठकर भी गई। जाते-जाते एक बड़बड़ाई, "बेशरम हरामी।" दूसरी बोल

वह भी वेश्या ही दीखती है।"

वे अन्दर चली गई। इधर प्रेम की आंखों के सामने से जैसे स्वर्ग लुप्त हो गया था। फिर भी कई बार उसने उस ओर देखा, परन्तु दोनों कुर्सियां खाली थीं। केवल एक छाता लिए हुए युवक बाहर से अन्दर जाता हुआ उसे दिखाई दिया। फिर भी वह निराश नहीं हुआ बल्कि नई आशाओं का महल उसके हृदय और मस्तिष्क में बनने लगा। वह सोचने लगा—आशाओं के इस महल की सीढ़ियां किस ओर रखी जाएं। ऐसा सोचते हुए उसने जमना की ओर देखा। जमना उस समय घृणा की आग में ऐड़ी से चोटी तक जल रही थी और उस आग को वह स्वार्थ के पानी से बुझाना चाह रही थी। प्रेम ने उसकी ओर देखा तो सही, पर कुछ लापरवाही की नजर से। जमना को इसका कारण मालूम था।

प्रेम को जमना बाई के साथ इस पहाड़ पर आए एक सप्ताह हो गया था। पीछे घर में क्या हो रहा है और दुकान की क्या दशा हो रही है? इसका प्रेम को बहुत कम ध्यान आता था। कभी यदि उसे अपने बाप की बीमारी का ध्यान हो आता, तो वह सोचता कि एक बूढ़ा जो अपने खाने-पीने के दिन बिता चुका है, उसे खोकर अगर बदले में एक नवयुवा सुन्दरी, दिलो-जान पर से बलिहारी जानेवाली सुन्दरी मिल जाए तो यह सौदा बहुत ही सस्ता है। शेष रही दुकान की बात। इसके बारे में वह जानता था कि इस बीच यदि दुकान को चार-पांच सौ का घाटा या लाभ हो भी गया तो कोई विशेष अन्तर नहीं पड़ेगा, जबकि दूसरी ओर एक हीरे और जवाहारात की खान उसके हाथ में आनेवाली है।

परन्तु इस सबके बावजूद उसका मन एक सप्ताह में ही जमना बाई से भर गया था। अपने पहले स्वभाव के अनुसार वह जमना बाई को मोह-जाल में फंसे रहने से घबरा सा गया था—कुछ छटपटाने सा लगा था। परन्तु वहां से छुटकारा मिलना भी तो कठिन था। वह स्वयं भी छुटकारा नहीं पाना चाहता था, क्योंकि ऐसा करने से जो वह माया से कमरे भरना चाहता है खाली रह जाने का डर था। किसी न किसी तरह वह जमना को खुश रखना चाहता था। दोनों ओर स्वार्थ

त गोपालसिंह ने शायद अपना मतलब सिद्ध करने के लिए गुप्तचर
ाकर, एक रसोइए के रूप में इनके साथ भेज दिया था। इस समय
दोनों नशे में चूर हैं। जहां दोनों ओर वासना और स्वार्थ का ज़ोर हो
ौर उसपर भी शराब की अधिकता, वहां क्या कुछ चालें नहीं चली
ातीं।

प्रेम ज्यों-ज्यों बोतल की गहराई से उतरता जाता है त्यों-त्यों उसकी नज़र बरामदे के शीशों को पार करके सामने वाली कोठी के जंगले की ओर बढ़ती जाती है, और वहां बैठी उन युवतियों को ऊंची आवाज़ में सुना-सुनाकर कह रहा है:—

"अलफ आ मेरे नयनों वालीएनी, तेरे नयनों ने मारा तीर मुझको,
पीछा तेरा न कभी भी छोड़ूंगा मैं, चाहे मार डाले तेरे वीर मुझको।"

सामने वाली कोठी की युवतियां थोड़ी-थोड़ी देर बाद उसकी ओर घृणा भरी नज़रों से देख लेती हैं, परन्तु मतवाला प्रेम इसका कुछ और ही अर्थ निकालता है। उसका विचार है कि दोनों युवतियां उसके नयनों रूपी तीरों से घायल होकर उसकी ओर देख रही है। अब वह और भी ऊंचे और उत्तेजित स्वर में गाने लगा, "तेरी कंटीली निगाहों ने मारा।" पहले जितनी देर उसको नशा नहीं चढ़ा था तो वह जमना से चोरी-चोरी उनकी ओर देखता था, परन्तु अब उसे इसका ध्यान ही न रहा।

जमना भी उसकी इन हरकतों से बेखबर नहीं थी। वह मन ही मन जल रही थी और प्रेम से घृणा कर रही थी। भले ही वह पवि
नहीं थी और न ही प्रेम की विवाहिता पत्नी थी। फिर भी प्रेम की इ
हरकतों को सहन करना उसके लिए बड़ा कठिन था। सचमुच यह ए
इतना बड़ा अपराध था जिसे एक पत्थर की स्त्री भी सहन नहीं
सकती थी जमना तो फिर हाड़-मांस की बनी हुई थी।

उधर सामने वाली कोठी में बैठी युवतियां भी काफी देर से
सब कुछ देख रही थीं। आंखें फाड़-फाड़ कर अपनी ओर देख
अलावा, वे उस बेलगाम ऊंट और उसकी साथिन की दूसरी ह
भी देख चुकी थीं, बेशक जमना उनकी ओर पीठ किए हुए थी। अ
प्रेम ने उनका बैठना ही दूभर कर दिया तो दोनों उठकर भीत
गईं। जाते-जाते एक बड़बड़ाई, "बेशरम हरामी।" दूसरी बोली

वह भी वेश्या ही दीखती है।"

वे अन्दर चली गई। इधर प्रेम की आंखों के सामने से जैसे स्वर्ग लुप्त हो गया था। फिर भी कई बार उसने उस ओर देखा, परन्तु दोनों कुर्सियां खाली थीं। केवल एक छाता लिए हुए युवक बाहर से अन्दर जाता हुआ उसे दिखाई दिया। फिर भी वह निराश नहीं हुआ बल्कि नई आशाओं का महल उसके हृदय और मस्तिष्क में बनने लगा। वह सोचने लगा—आशाओं के इस महल की सीढ़ियां किस ओर रखी जाएं। ऐसा सोचते हुए उसने जमना की ओर देखा। जमना उस समय घृणा की आग में ऐड़ी से चोटी तक जल रही थी और उस आग को वह स्वार्थ के पानी से बुझाना चाह रही थी। प्रेम ने उसकी ओर देखा तो सही, पर कुछ लापरवाही की नजर से। जमना को इसका कारण मालूम था।

प्रेम को जमना बाई के साथ इस पहाड़ पर आए एक सप्ताह हो गया था। पीछे घर में क्या हो रहा है और दुकान की क्या दशा हो रही है? इसका प्रेम को बहुत कम ध्यान आता था। कभी यदि उसे अपने बाप की बीमारी का ध्यान हो आता, तो वह सोचता कि एक बूढ़ा जो अपने खाने पीने के दिन बिता चुका है, उसे खोकर अगर बदले में एक नवयुवा सुन्दरी, दिलो-जान पर से बलिहारी जानेवाली सुन्दरी मिल जाए तो यह सौदा बहुत ही सस्ता है। शेष रही दुकान की बात। इसके बारे में वह जानता था कि इस बीच यदि दुकान को चार-पांच सौ का घाटा या लाभ हो भी गया तो कोई विशेष अन्तर नहीं पड़ेगा, जबकि दूसरी ओर एक हीरे और जवाहरात की खान उसके हाथ में आनेवाली है।

परन्तु इस सबके बावजूद उसका मन एक सप्ताह में ही जमना बाई से भर गया था। अपने पहले स्वभाव के अनुसार वह जमना बाई को मोह-जाल में फंसे रहने से घबरा सा गया था—कुछ [illegible] लगा था। परन्तु वहां से छुटकारा मिलना [illegible] स्वयं भी छुटकारा नहीं पाना चाहता था, क्योंकि [illegible] माया से कमरे भरना चाहता है [illegible] किसी तरह वह जमना को [illegible]

के जाल बिछे हुए थे। एक ओर का जाल कच्चे सूत का था, परन्तु बुलबुल चतुर थी। दूसरी ओर का जाल फौलादी तारों का था लेकिन कबूतर बेसमझ और लालची था।

प्रेम ने जमना की ओर देखा, उसे किसी गहरी चिन्ता में डूबा देख, उसकी बांह को प्यार से सहलाते हुए वह बोला, "मे···री···प्या···री जमना, तू···क्या···सो···च रही है?"

जमना अपने होठों पर मुस्कराहट ले आई और अपनी कला का स्वांग रचने लगी, "आपके प्रेम में पागल हो रही हूं। आप कितने सुन्दर हैं। भगवान ने आपको ऐसी जवानी और इस तरह प्यार की बातें करने की कला कहां से दी है?"

"तेरे···पास···से···च···चुरा···कर···जमना।" कहते-कहते उसकी आंखें बन्द हो गईं और वह वहीं लेट गया।

"चलो प्रिय, आपको अन्दर सुला दूं।" कहकर जमना ने मनोहरी को बुलाया। दोनों ने उस शराबी जिन्दा लाश को अपने हाथों में थामा और फिर अन्दर ले जाकर उसे चारपाई पर पटक दिया। वह मुर्दे की तरह चारपाई पर पड़ा रहा। जमना धीरे-से बड़बड़ाई, "मर यहां कन्जर के।"

९

दूसरे दिन प्रेम उठा तो उसकी आंखों के आगे वही कल वाली युवतियां घूम रही थीं। किसी न किसी तरह बहाने बनाते हुए उसने कई बार सामने वाली कोठी की ओर देखा, परन्तु वहां कोई न था—आज कुर्सी भी नहीं थीं। उसने सोचा, 'हो सकता है सैर करने गई हों। अगर मैं भी अभी चला जाऊं तो शायद रास्ते में कहीं मिलाप हो जाए।'

मनोहरी ने चाय, मक्खन, टोस्ट आदि मेज़ पर लाकर रख दिए और दोनों ने मिलकर उन्हें समाप्त किया। इस समय घमासान वर्षा हो रही थी, बाहर जाना बड़ा कठिन था, परन्तु प्रेम का हृदय तो सुलग

रहा था। उसने जमना को भी चलने के लिए कहा। जमना जानती थी कि इतनी तेज वर्षा में बाहर जाने के क्या अर्थ हैं। उसने [illegible] करके सैर जाने वाली बात को टाल दिया। प्रेम तो पहले ही अकेला जाना चाहता था। और वह अकेला ही चल पड़ा।

सारा रास्ता उनकी आँखें उन्हें खोजती रहीं, परन्तु सब [illegible] सैर से लौटने पर भी उसने सामने वाली कोठी का दरवाज़ा [illegible] समय का लाभ उठाते हुए, उसने मनोहरी को नीचे बुलाया और [illegible] कहने लगा, "जा, जाकर पता लगा कि सामने कोठी वाले [illegible] लौटा करते हैं। यह भी पूछना कि वे कौन हैं, कहां से आए हैं। [illegible] भाग में कोई दूसरा रहता है, उससे सब कुछ पूछ लेना।"

मनोहरी चला गया और थोड़ी देर बाद उसने आकर [illegible] "नीचे वाला किराएदार कहता था : आज प्रातःकाल ही वे [illegible] हैं।" निराश होकर प्रेम ने पूछा, "चले गए हैं?"

वह बोला, "नहीं, धर्मशाला से नहीं चले गए, वैसे [illegible] में जा रहे हैं।"

"और हैं कहां के?"

"लाहौर के।"

"लाहौर के?" कहकर वह सोचने लगा, "तब [illegible] ही हैं।" उसने मनोहरी से पूछा, "और तूने यह नहीं [illegible] नाम-पता क्या है? लाहौर में क्या काम करते हैं? [illegible] रहते हैं?"

"जी नहीं, यह तो मैंने नहीं पूछा।"

"बेवकूफ के बच्चे, तुझे भेजा किसलिए था! [illegible] पैदा हुए हो बस आते हैं नौकरी करने और अक्ल [illegible] जा फिर जाकर—।"

बात अभी शुरू ही हुई थी कि ऊपर से [illegible] हुगम का, आनन्द हुई का। पता होता [illegible] लाता ही लिन [illegible] था। और नौकरों को [illegible] सिंह ने हमारे [illegible] यह मुसीबत भेज दी है [illegible] बड़ती हुई अमना नीचे उतर आई।

मना को देखकर प्रेम कुछ झेंप-सा गया, परन्तु झटपट बोला, मी नहीं ? मैंने इसको कहा था—जाकर सामने वाली कोठी ली से पूछ आ, हमने कुछ फूलों के गमले लेने हैं, कहां से मिलेंगे। यह सूअर उससे जाकर पूछता है, हमने वंगले लेने हैं, कहां से गे। है न वुद्धू का वुद्धू ? कहां 'गमले' और कहां 'वंगले'।"

जमना ने सारी वात तो नहीं, परन्तु आधी वात सुन ली थी, औ सी आंवी से उसने सारी वात का अर्थ समझ लिया था। वह जानती ी कि सेठ साहव को कौन से गमलों की आवश्यकता है। परन्तु अन-जान वनते हुए वोली, "क्यों वे, तुझे इस तरह कहा था, इन्होंने ?''

मनोहरी भी ऊपर से वड़ा भोला दिखाई देता था, परन्तु वास्तव में गोपालसिंह जैसे उस्ताद का सिखाया हुआ था। डरते हुए वोला, "नहीं वीवीजी, इन्होंने तो कहा था—जाकर पूछ आ कोठी में रहने वाले...।"

"चुप रह उल्लू के पट्ठे, वकवास कर रहा है।" प्रेम ने झूठ की पोल खुलते देख, उसे फटकारा। मनोहरी चुप हो गया। वात वहीं दव गई। — प्रेम का हृदय सामनेवाली कोठी से भी अधिक खाली हो गया।

दूसरे दिन उसको गोपालसिंह का पत्र मिला, जिसमें लिखा था :

"प्यारे भाई प्रेमचन्दजी ! आशा है आप कुशलतापूर्वक होंगे। मुझे दुःख है कि एक दुखद सूचना देकर आपके रंग में भंग डाल रहा हूं, परन्तु करूं भी क्या, वताना जो ज़रूरी है। आपके पिताजी का परस रात स्वर्गवास हो गया है। भगवान को यही मंजूर था। दूसरी वात य है कि आपका मुनीम, पता नहीं कल शाम से कहां लापता है। वड़ी छ वीन की, परन्तु पता नहीं लग पाया। सुना है काफी रुपया ले गया परन्तु आप चिन्ता न करना, मैंने थाने में रिपोर्ट दर्ज करवा दी है। भी होगा, वहीं पर पकड़ लिया जाएगा। दुकान वन्द न रहे, इ पत्र देखते ही आप यहां चले आओ। मैंने और मुनीम का प्रव छोड़ा है, जो वड़ा लायक, परिश्रमी और ईमानदार है।

आपका शु

गोपाल

पढ़कर प्रेम को वाप के मर जाने का दुःख हुआ, प

के भाग जाने का दु:ख उससे भी अधिक। लगभग एक सप्ताह की बिक्री के पैसे मुनीम के पास थे। इसके अलावा उगाही भी काफी थी, पता नहीं कितना रुपया ले गया होगा। और यदि उसकी नियत खराब थी तो पता नहीं माल को सस्ता-महंगा बेच कितना माल लेकर रफूचक्कर हो गया होगा।

पत्र पढ़ते-पढ़ते उसके चेहरे के रंग को बदलता देख जमना ने पूछा, "क्या बात है, मेरे चाँद! सुख-शान्ति तो है! आप उदास क्यों हो गए हैं?"

प्रेम ने धीरज रखते हुए कहा, "कुछ नहीं रानी, पिताजी का देहान्त हो गया है।" जमना के हृदय से आवाज आई—चलो छुटकारा मिला। वह दु:खी हृदय से बोली, "हैं, मेरे ससुरजी चल बसे?" इसके पश्चात जमना ने वही 'रुलाने वाली मशीन' (रूमाल) निकालकर अपने आंसू बहाने शुरू कर दिए।

प्रेम उसको प्यार से पुचकारते हुए बोला, "रोओ नहीं रानी! तुम्हारे रोने से तो मेरा हृदय फटा जा रहा है। जो होना था वह तो हो गया, अब रोने से क्या होगा। भगवान की यही इच्छा थी।"

चौथे दिन यह जोड़ी अमृतसर वापिस जाने की तैयारी करने लगी। पत्र आने के पश्चात्, प्रेम ने कई बहाने बनाकर दो-तीन दिन और वहीं काट दिए। परन्तु जिस कार्य के लिए रुका था, वह पूरा न हो पाया। दोनों युवतियों के फिर दोबारा उसे दर्शन न हुए, और अन्त में निराश हो—हृदय पर पत्थर धर, उसको लौटना ही पड़ा।

-१०

धर्मशाला के कोतवाली बाजार से डेढ़ मील पश्चिम की ओर 'चील-धाड़ी' नाम से शीशम के पेड़ों का एक जंगल है, जो लगभग डेढ़ मील तक फैला हुआ है।

डिपो बाजार और चीलधाड़ी के बीचों-बीच एक मैदान है, जहां बड़े-बड़े सरकारी अफसरों की कोठियां हैं। मनमोहक हरियाली से

पहाड़ की एक-एक इन्च धरती संवारी गई है, परन्तु इस छोटे से की सुन्दरता को शब्दों की भाषा में नहीं बांधा जा सकता। शायद लिए सरकार ने ज़िला अधिकारीयों के लिए इस स्थान को चुना है। इन्हीं कोठियों में से एक, जो दूसरी कोठियों से तनिक ऊंचाई पर ी हुई है, एक आफीसर की कोठी है। कोठी के सामने पेड़-पौधों सजा हुआ एक बड़ा आंगन है। इसके बीचों-बीच एक ऊंचा चबूतरा है और चबूतरे की छत छतरीनुमा है। 'इश्क-पेचा' और 'गिलोह' आदि बेलों ने इसे इस प्रकार ढका हुआ है कि यह दूर से एक बड़ी हरे रंग की छतरी दिखाई देती है। इसके चारों ओर चार रास्ते हैं, जिन्हें छत से लटक रही बेलों ने आधे से अधिक ढक छोड़ा है। इसके बीचों-बीच दो गद्दीदार कुर्सियां पड़ी हैं, जिनपर एक युवक तथा एक अधेड़ महिला आमने-सामने बैठे, वर्षा का आनन्द लेते हुए, धीरे-धीरे बातें कर रहे हैं।

युवक का रंग-रूप अति सुन्दर है। परन्तु वह स्वभाव का ज़रा संकोची है। उसके चेहरे की लुभावनी चमक, उसके हृदय की पवित्रता भी गवाह है। प्यार-उड़ेलते हुए उसके हृदय को देखने के लिए, उसके सीने के साथ कान लगाकर, धड़कन सुनने की आवश्यकता नहीं पड़ती। उसके माथे के नीचे चमकती आंखों की पुतलियों के आईनों पर उसके हृदय-सागर में उठती लहरें दिखाई दे रही हैं, परन्तु उनमें ज्वार-भा नहीं उठता, क्योंकि उसके नभ-मंडल में अभी कोई सोलह-कला सम चन्द्रमा नहीं उभरा। शायद उभरने वाला ही है, इसीलिए यह मतव लहरें अन्दर ही अन्दर उठकर अन्तर के किनारों से टकरा कर हो जाती हैं। यह वही है हमारा जाना-पहचाना बाबू सुन्दरदास उसके सामने कुर्सी पर है उसकी बहन द्रोपदी।

वर्षा इतनी तेज़ हो गई है कि लकड़ी की छत पर ज़ोरों कड़ाहट होने लगी है। और दूर तक फैली हुई हरी-भरी घाटि बादलों में छिप गई हैं। सहमी हुई नज़र से द्रोपदी वर्षा की कर बोली, "आज तो लड़के स्कूल पहुंचते-पहुंचते छातों में ह जाएंगे।"

सुन्दरदास बोला, "पता होता कि इतने ज़ोर की वर्षा

तो तनिक रुक कर भेज देते, परन्तु डरने की कोई बात नहीं, सोहनू साथ गया है, रास्ते में कहीं किसी बरामदे के नीचे रुकवा देगा।" द्रोपदी बोली, "यशपाल की तो कोई चिन्ता नहीं, कोट पहना हुआ है उसने, परन्तु रामपाल केवल कमीज़ में ही चला गया है। बेचारे को ठण्ड लगती होगी।"

"तो जब सोहनू लौटे, उसके द्वारा कोट भिजवा देना।"

यशपाल और रामपाल, दोनों द्रोपदी की आंखों के तारे थे—उसके स्वर्गवासी पति की याद थे। जहां तक द्रोपदी की निगाह पहुंच सकती थी, वहां तक टकटकी लगाए वह नौकर की प्रतीक्षा करने लगी, परन्तु बादलों और वर्षा की अधिकता के कारण इतना अंधेरा छाया हुआ था कि पास से जाता हुआ आदमी भी दिखाई नहीं देता था। इसी अंधेरे में उसे दूर से किसी आदमी की छाया आती दिखाई दी। वह उठती हुई बोली, "शायद सोहनू आ रहा है। मैं जाकर कोट ले···।"

उठते-उठते वह फिर बैठ गई, और अन्तिम शब्द मुंह में ही रह गया। साफ दीखने पर पता चला कि वह उनका नौकर नहीं कोई और ही था। दोनों का ध्यान उसी ओर था, और अधिक समीप आने पर पता चला कि आने वाला अकेला नहीं, दो भी नहीं बल्कि तीन हैं, एक पुरुष और उसके पीछे दो महिलाएं जिसमें से एक के पास दो वर्ष का बच्चा भी था। उसके पीछे-पीछे दो मजदूर उनका सामान उठाए चले आ रहे थे। तीनों आने वालों के छातों से खूब पानी टपक रहा था, कपड़े तीनों के भीग चुके थे। इतनी तेज़ वर्षा भला छातों को क्या जाने! दोनों महिलाएं ठंड से सिकुड़ी जा रही थीं। बच्चे वाली की दशा तो बड़ी ही शोचनीय थी। एक हाथ में छाता, दूसरी बांह में बच्चा—जो ठंड से ठिठुरकर रो रहा था।

साथ वाले युवक ने हाथ पसारकर उसे उठाना चाहा, परन्तु बच्चा मां को नहीं छोड़ना चाहता था।

सुन्दरदास का दयालु हृदय, *यात्रियों की कठिनाई न देख सका।* 'बेचारे कितना भीग गए हैं।' कहते हुए, छाता ले, वह कोठी के बड़े दरवाज़े तक जा पहुंचा। वह जानता था कि यात्री, इस कोठी के आगे

से होकर निकलेंगे। जिस पगडंडी पर वह चले जा रहे थे, वह कोठी के दरवाज़े के आगे से होकर जाती थी। उसके बाहर पहुंचने तक यात्री भी समीप आ गए।

सुन्दरदास ने आगे आ रहे युवक को सिर झुकाकर 'नमस्ते' की, फिर कहा, "आइए, थोड़ी देर ठहर जाइए। वर्षा बड़े जोरों की है। बच्चा बेचारा बड़ी कठिनाई में है।"

'धन्यवाद' कहकर उस युवक ने पीछे घूमकर अपने सहयात्रियों की ओर देखा। दोनों ही कुछ तो चढ़ाई चढ़ते-चढ़ते थक चुकी थीं और रही-सही कमी वर्षा ने पूरी कर दी थी। बच्चा अभी तक रो रहा था। अपनी साथ की महिलाओं को "आओ फिर थोड़ी देर रुक ही जाएं।" कहकर युवक यात्री ने कृतज्ञता-भरी दृष्टि से मेजवान की ओर देखा। सुन्दरदास ने दोनों महिलाओं से, शर्माते हुए कहा, "आइए बहनजी, थोड़ा विश्राम कर लीजिए। बेगाना न समझिएगा।"

वे बोली नहीं, परन्तु आंखों द्वारा दोनों ने सुन्दरदास को धन्यवाद दिया, विशेषकर आगे वाली ने—जिसकी बगल में बच्चा नहीं था—इस दयालु व्यक्ति की ओर श्रद्धा-भरी दृष्टि से देखा।

"मैं आपका बड़ा आभारी हूं, भाई साहब। वर्षा ने तो आज कमाल ही कर दिया है।" कहता हुआ युवक दरवाज़े से अन्दर आया। उसके पीछे दोनों महिलाएं और उनके पीछे दोनों मज़दूर भी।

मज़दूरों ने सामान को बरामदे में रख दिया। द्रौपदी उठकर उसकी ओर आ रही थी, परन्तु उसकी टांगों में कुछ तकलीफ थी, जिसके कारण वह जल्दी-जल्दी चलने में असमर्थ थी। आगे बढ़कर सुन्दरदास उस तक जा पहुंचा और बोला, "बहन! दोनों महिलाओं को भीतर ले जाओ और सामान भी अभी अन्दर ही रखवा लो, यहां भी बौछार आ रही है।"

आए हुए युवक ने कहा कष्ट न करिए हमारी कोठी समीप ही है। परन्तु सुन्दरदास की आतिथ्यपूर्ण भावना के सम्मुख मेहमानों को झुक जाना पड़ा।

स्टोर में सामान पहुंचाया गया। दोनों महिलाओं ने ट्रंक खोलकर कपड़े बदले और अपने साथी के कपड़े भी बाहर भेज दिए। इसके पश्चात, द्रौपदी को छोड़ सभी एक सजे हुए कमरे में जा बैठे।

थोड़ी देर में चाय तैयार हो गई और सभी पीने लगे। चाय की मेज पर चारों ओर आमने-सामने बैठे थे। एक ओर सुन्दरदास और वह युवक और दूसरी ओर दोनों महिलाएं। द्रोपदी रसोई में थी।

आजकल का रिवाज नहीं कि घर आए किसी शरीफ आदमी को, दरवाजा पार करते ही घरवाला पूछने लगे, "कौन हो, कहां से आए हो?" किसीके घर में आनेवाले का, पता-ठिकाना पूछने के लिए चाय या खाने का समय अच्छा समझा जाता है। इसीलिए नियमानुसार सुन्दरदास ने चाय पीते समय पुरुष मेहमान से पूछा, "शायद आप अभी आ रहे हैं यहां, पर (घड़ी निकालकर) बस शायद आज जल्दी आ गई लगती है। पहले तो रोज पौने नौ बजे आती थी, अभी तो साढ़े-आठ बजे हैं।"

मेहमान बोला, "हमें आए हुए तो आज दस-बारह दिन हो गए हैं। परन्तु कोठी आज बदलनी पड़ गई है।"

"शायद पहली कोठी मन को जंची नहीं होगी, अब कौन-सी ली है?"

"यहां से पास में ही है, कोठी का नम्बर पचपन। कोठी तो पहली भी बड़ी अच्छी थी, परन्तु यूंही (सामने वाली साहिबा की ओर देखकर) मेरी बहन वहां रहना नहीं चाहती थी।"

"पचपन नम्बर? वह तो यह बिलकुल हमारी कोठी के पीछे है। तब बीबीजी को वह पहली कोठी पसन्द नहीं आई होगी।"

"पसन्द और नापसन्द का तो प्रश्न ही नहीं था···।" बीच में ही उसकी बहन बोल पड़ी, "कोठी बहुत अच्छी थी, वहां से आने को मन ही नहीं करता था। परन्तु पड़ोस में एक बहुत बुरा आदमी आ बसा था।"

उसकी कोमल और मीठी आवाज ने सुन्दरदास के कानों में अमृत घोल दिया। यह आवाज उसके हृदय में घर कर गई।

"अच्छा!" कहकर उसने इस बात को और अधिक बढ़ाना अच्छा न समझा।

"कहां के रहनेवाले हैं आप?" सुन्दरदास ने युवक से पूछा।

"जी रहनेवाला तो मैं बटाला का हूं, परन्तु काफी समय से अब

होर में रह रहा हूं।"

"क्या काम करते हैं, आप?"

"जी, मैं एक फिल्मी कलाकार हूं।"

आजकल ऐसा कौन व्यक्ति है जिसकी फिल्मों में रुचि न हो। फिर बाबू सुन्दर जैसे एकाकी पुरुष के लिए 'फिल्मी कलाकार' शब्द तो और भी अधिक आकर्षित था। उसने श्रद्धा से उसकी ओर देखते हुए कहा, "फिल्मी कलाकार? आपका शुभ नाम?"

"जी मेरा नाम मोहन है और (बच्चे वाली स्त्री की ओर इशारा करके) यह मेरी पत्नी श्रीमती सरलादेवी हैं, यह (दूसरी लड़की की ओर देखकर) मेरी बहन है शान्तिदेवी।"

सुन्दर की आंखों में एक विशेष चमक उभर आई, उसने मोहन की आंखों में देखा, फिर दोनों महिलाओं को सिर झुकाकर, अपने मेहमान के कन्धे पर हाथ रखकर बोला, "ओह तो आप हैं श्रीमान मोहन? 'फौलादी फूल' फिल्म के नायक? और यही बीबीजी हैं—पंजाब की बेजोड़ फिल्म अभिनेत्री—सरलादेवी जी।"

सरला ने हाथ जोड़कर और आंखें झुकाकर कहा, "धन्यवाद!" मोहन ने भी ऐसा ही किया।

बातचीत चालू रखते हुए, सुन्दरदास बोला, "तब तो मैं बड़ा ही भाग्यशाली हूं, जिसके घर को आज इतने महान व्यक्तियों ने अपनी चरण-धूल से पवित्र किया है।"

उसके मुंह से निकले हुए इन शब्दों को शान्ति बड़े मज़े के साथ सुन रही थी, एक देवता के आशीर्वाद की तरह। सुन्दरदास मन ही मन यह सोचकर कि दो मेहमानों की इतनी बड़ाई करके, तीसरे के बारे में कुछ न कहना सभ्यता के विरुद्ध होगा, शान्ति को सम्बोधित करके बोला, "सबसे भाग्यशाली तो आप हैं जिन्हें इतने महान व्यक्तियों का सम्बन्धी बनने का मान प्राप्त हुआ है। मैं सोच रहा हूं कि आप हर समय अपने भाग्य की सराहना करती रहती होंगी।"

शान्तिदेवी को सुन्दरदास का प्रत्येक शब्द बड़ा प्रिय लग रहा था ऐसे जैसे उसके हृदय में, उसके प्रत्येक शब्द को सुनने और संजोए रखने के लिए, पहले से ही एक ऊंचा स्थान बना हुआ हो।

वह नम्र स्वर में बोली, "मेरे से अधिक भाग्यशाली तो (सरला की ओर संकेत करके) यह हैं, जिन्होंने मेरे प्यारे भाई पर अधिकार जमा लिया है।"

हंसते हुए मोहन बोला, "श्रीमानजी ! यह लड़की तो बड़ी नटखट है। अपनी भाभी से हर समय मजाक करती रहती है। बस 'प्रभात' वाली 'शान्ता आप्टे' की शिष्या समझ लो।"

सरला भी कब चुप रह सकती, वह बोली, "यह सारा दोष (पति की ओर देखकर) इन्हीं का है, जिन्होंने उसे इतना सिर चढ़ा रखा है।"

सुन्दरदास हंसते हुए बोला, "आप सबसे अधिक भाग्यशाली तो मैं हूं, जिसके सूने घर का आज भाग्य जगा है।"

शान्ति फिर बोली, "और सबसे अधिक भाग्यशाली (सरला के बच्चे की गाल को थपथपाते हुए) यह बिल्ली का बच्चा है, जो अभी से 'जैकी कूगन' (अमरीकी बाल कलाकार) को चित करने के लिए, अपनी टांगें उछाल रहा है।"

सुन्दरदास बोला, "इसमें क्या शक है। बाप ने भारतीय कलाकारों को चित किया है, बेटा अमरीकी कलाकारों को हराएगा।"

इसके पश्चात मोहन ने सुन्दरदास से पूछा, "आप तो, लगता है, यहीं बसे हुए हैं।"

"जी हां, मैं आजकल यहां का हैल्थ आफिसर हूं। इसके अतिरिक्त कुछ दिनों के लिए, यहां का जंगलात-विभाग भी मेरे सिर मढ़ दिया गया है। लाला जगन्नाथ कुछ दिनों से छुट्टी पर गए हैं, जिसके कारण आजकल मेरे सिरपर दुगना भार सदा रहता है।"

"बल्कि अच्छा ही है। इसका हमें भी कुछ न कुछ लाभ तो हो ही। जंगलात विभाग के अधिकारी के पड़ोस में रहने से हमें ईंधन न खरीदना पड़ेगा, जब जरूरत पड़ी, काटकर ले आए।"

हंसते हुए सुन्दरदास बोला, "नहीं, श्रीमानजी आप भूल रहे हैं हमारा काम लकड़ी को मुफ्त बांटना नहीं, परन्तु लकड़ी चोरी करने वालों को पकड़ना है। इसीलिए तो आज आप गिरफ्तार कर लिए गए हैं।"

"परन्तु किस जुर्म के वदले ? हमने तो अभी तक आपके जंगल में से एक तिनका भी नहीं चुराया।"

"चुराया नहीं, परन्तु चुराने का इरादा तो रखते हैं न। जैसा कि आपकी जवान से सिद्ध हो चुका है। चोरी का इरादा करना भी तो जुर्म है।"

"तब, हमें इस जुर्म के अधीन कौन-सा दंड देना पड़ेगा।"

"केवल चौबीस घंटों की जेल, इन दीवारों के अन्दर।"

"ईमानदार के लिए जैसी एक दिन की सजा, वैसी ही जीवन-भर का कारावास। पर अब पिंजरे में फंसकर पंख फड़फड़ाने से क्या लाभ।"

शान्ति इस बातचीत से बड़ा आनन्द अनुभव कर रही थी। सुन्दरदास की हर बात का जवाब देने के लिए उसका मन बेचैन हो रहा था। वह बड़ी कठिनता से इस इच्छा को रोक पा रही थी। चाय पीते-पीते ही वे आपस में इस प्रकार घुल-मिल गए जैसे बहुत पहले से एक-दूसरे से परिचित थे। जितना बुरा पड़ोस वह छोड़कर आए थे उससे कई हज़ार गुना अच्छा उनको मिला था। उधर सुन्दरदास की खुशी का कोई ठिकाना न था, क्योंकि इतने रसिक, मेल-मिलाप और खुले दिल वाले परिवार से उसका वास्ता पड़ा था। उसका हमेशा से यह अनुभव था कि किसी भी सुन्दरी के होठों की मुस्कान, आंखों की पुतलियों की थिरकन और गले की लचक एक नवयुवक के भीतर चिनगारी सुलगा देती हैं—भावों को भड़का देती है। परन्तु आज जिस शान्ति को उसने देखा, उसके विचारों से बिलकुल उलट थी। शान्ति सुन्दरता की देवी थी, परन्तु किसी ठंडी, मीठी और स्वर्णिक सुन्दरता थी। उसकी मुस्कान, उसकी आंखों और उसके चेहरे में जादू की शक्ति थी। परन्तु हृदय में आग लगाने वाली नहीं, प्रेम पैदा करनेवाली तथा अमृत वर्षा कर ठंडक पहुंचाने वाली। इस छोटी-सी मुलाकात का असर यह हुआ कि सुन्दरदास की आंखों के लैंस द्वारा शान्ति का पूरा फोटो उसके मन के कैमरे में उतर गया।

आखिर बाबू सुन्दरदास द्वारा दी गई सजा, उन परदेशी मुजरिमों को भुगतनी ही पड़ी—रात उन्होंने उसकी कोठी में काटी, और दूसरे

दिन सुन्दरदास ने स्वयं साथ चलकर उन्हें पचपन नम्बर कोठी में पहुंचा दिया।

११

मोहन और उसकी साथ की दोनों महिलाओं को नई कोठी में आए हुए बारह-तेरह दिन हो गए हैं। बाबू सुन्दरदास तथा उनकी बहन इन से ऐसे घुल मिल गए हैं कि वे सब एक ही परिवार के सदस्य लगते हैं। सरला और मोहन ने सुन्दरदास के घर में द्रौपदी को छोड़, और किसी औरत को न देख कई प्रकार के अनुमान लगाए, आखिर सरला ने इसका कारण पूछ ही लिया। द्रौपदी से उसे इतना ही पता चला कि सुन्दरदास ने अभी विवाह नहीं किया। कुंवारा है या कहीं सगाई हो गई है? इन बातों को जानना उसने उचित न समझा, जबकि एक कुंवारी लड़की उनके साथ थी। इसे उसने अपने लिए घटियापन की बात समझा।

शान्ति और सुन्दरदास के हृदय दिन-प्रतिदिन जिस प्रकार एक-दूसरे के निकट आ रहे थे, इससे मोहन और सरला अनभिज्ञ नहीं थे। यदि कोई बेखबर था, तो वह थी द्रौपदी—जो टांगों में दर्द रहने के कारण उनके साथ सैर को नहीं जाती थी। रोगी न भी होती, तो भी शायद घर के काम-काज से छुटकारा पाना कठिन होता, खास तौर पर उसे प्रातःकाल दोनों बेटों के लिए खाना बनाना पड़ता। उनको नहला-धुलाकर और कपड़े बदलवा कर स्कूल भेजना पड़ता था, और यही समय होता जब वे सभी सैर को जाते थे।

मोहन और सरला के हृदयों में एक नई आशा तथा इच्छा पनप रही थी। वे काफी दिनों से शान्ति के लिए एक अच्छे पति की खोज में थे, परन्तु आज तक उन्हें इस कार्य में सफलता नहीं मिली थी। वह उसके लिए, उसी तरह का सुन्दर और कवि-हृदय चाहते थे। शान्ति की इस समय आयु सत्रह वर्ष थी। उसके अंग-अंग से सुन्दरता फूट रही थी। उसके पहलू में एक कवि का हृदय था। उसकी उमंगों में मधु प्रेम का निवास था। उसके स्वप्नों में कोमलता तथा उसकी इच्छाएं

कोई ऊंचा आदर्श छिपा हुआ था। शान्ति एक सांसारिक जीव होते भी वास्तव में कोई देव-कन्या थी।

अपने विवाह की अंतिम मंज़िल तक पहुंचने के लिए मोहन और सरला को जिन कठिन मार्गों की खाक छाननी पड़ी थी अभी वे उसको भूले नहीं थे, और न ही भूल सकते थे। दोनों ने एक-दूसरे को पाने के लिए जो कष्ट सहे थे और अन्त में किस तरह मौत के मुंह से निकल उन्होंने नया जीवन पाया था, यह सब-कुछ हमेशा उनके मस्तिष्क में रहता। यही कारण था कि वे हर समय इसी चिन्ता में रहते कि बेचारी शान्ति को उनकी तरह, किसी बलिवेदी पर जीवन की आहुति न देनी पड़े।

मोहन यह भी जानता था कि शान्ति उसी कोख से उत्पन्न हुई है, जिससे वह। शान्ति का हृदय उसी रक्त-मांस का बना हुआ है, जिससे उसका अपना। तो क्या फिर जो भावनाएं मोहन जन्म से साथ लाया था, वही शान्ति के हिस्से न आई होंगी? यह सब समझते हुए वह शान्ति को, उन सामाजिक और सांसारिक कठिनाइयों में फंसने नहीं देना चाहता था, जिनमें कभी वह स्वयं फंसा था, अर्थात् सरला जिनका शिकार बनी थी। साथी चुनने के सम्बन्ध में वह शान्ति के मार्ग में किसी प्रकार की बाधा बनना नहीं चाहता था, बल्कि जहां त उसका बस चलता, वह इस कार्य में शान्ति की सहायता ही करन चाहता था। उसने सुन्दरदास को पूर्णरूप से शान्ति के योग्य पा परन्तु शान्ति की इच्छा के बिना वह उससे कहना उचित नहीं समझ था और न ही इस विषय में वह पूछ-ताछ करना चाहता था। इसलिए सारा काम उसने शान्ति पर ही छोड़ दिया। अपनी बहन की नाओं पर उसे पूरा विश्वास था, और शांति ऐसे विश्वास की भी थी।

रोज प्रातः पांच बजे वे चारों सैर को जाते और नौ बजे लौ थे। जब कभी सुन्दरदास को किसी सरकारी काम के लिए कांग कर जाना पड़ता, तो उन दिनों शान्ति को सैर का आनन्द न

रविवार का दिन बड़ा ही सुहावना था। चारों ओर का ई थीं। बूंदा-बान्दी हो रही थी। उनकी रविवार की

लम्बी होती थी। सुन्दरदास की तो यह शुरू से आदत थी।

सुबह का खाना खाकर और दोपहर का खाना साथ लेकर, छः बजे सैर की तैयारी हुई। मिठाई का एक झोला सुन्दरदास ने अलग से भी साथ ले लिया था। आज चार की बजाय केवल तीन ने जाना था, क्योंकि बच्चे को पिछली रात से खांसी हो आई थी जिससे सरला ने आज जाने का विचार छोड़ दिया। इस प्रकार सुन्दरदास, मोहन और शान्ति ही चले। परन्तु थोड़ी दूर जाने पर मोहन भी सिर दर्द का बहाना करके लौट आया। साथ मधुरा रह जाने पर सुन्दरदास और शांति ने भी लौटना चाहा, परन्तु मोहन ने उन्हें लौटने न दिया।

आज की सैर का कार्यक्रम थोड़ा लम्बा था। चीलपाड़ी के जंगल में से होकर कैंची मोड़ तक और उससे भी आगे पगडंडियों से होकर पास के खेतों तक। फिर यहां से आगे सात-आठ मील पैदल चलकर पक्की सड़क पर पहुंचना, वहां से बस द्वारा लौटना।

मदन देवता—जो कई दिनों से दोनों के दिलों को अपने पुष्प-बाणों से धीरे-धीरे बींधता आ रहा था, आज एकान्त पाकर पूर्णरूप से प्रकट हो गया। दोनों के हृदय के तार एक स्वर हो कोई अनूठा राग अलापने लगे, जिसकी मधुरता आज शान्ति और सुन्दरदास को एक-दूसरे के समीप ले आई।

दोनों ही खामोशी और मदहोशी की हालत में चले जा रहे थे। दोनों के हृदयों में प्यार का एक तूफान उठ रहा था—बड़ा ही तेज और पर्वतों को उखाड़ फेंकने वाला तूफान, जिसकी गगनचुम्बी लहरें दोनों के वशों से बाहर निकलने के लिए मचल रही थीं, परन्तु होठों की कोमल चट्टानों के साथ टकराकर तरंगों का रूप धारण कर लेतीं और पीछे लौट जाती थीं। तभी वर्षा होने लगी।

सुन्दरदास छाते को बगल में से निकालकर खोलने लगा तो शान्ति ने उसके छाते वाले हाथ को पकड़ते हुए कहा, "इसे न खोलो, पानी की बूंदें अच्छी लगती हैं—ठंडक पहुंचती है।"

शान्ति की कोमल उंगलियों के इस पहले स्पर्श ने और मनोरम सम्बोधन ने, सुन्दरदास के शरीर में सिहरन पैदा कर दी, एक ठंडक भरी सिहरन। उसने छाते को फिर बगल में दबा लिया और शान्ति के

उजले चेहरे पर, जिसपर सामने की ओर हवा और वर्षा की बून्दें गिरकर मोतियों की तरह लुढ़क रही थीं, एक नज़र डाली, जिन्हें शांति की आंखें एक ही बार में पी गई। दोनों के हृदयों को किसी स्वर्गिक प्रेम की शीतलता से ठंडक पहुंचने लगी। पवित्र प्रेम की यह किरण आंखों द्वारा उनके दिलों पर पड़ी और वे जगमगा उठे—उदास और अन्धेरे से घिरे दिल।

सुन्दरदास के हृदय में एक छोटी-सी लहर उठी—यह आवाज़ बनकर, "शान्ति जी ! आप भीग रही हैं—ठंड लग जाएगी।"

और फिर प्रेम सागर के एक छोर से उठी लहर, दूसरे किनारे के साथ, यह आवाज़ बनकर टकराई, "मैं भीगना चाहती हूं।"

सुन्दरदास की निगाह फिर उठी और शान्ति की अध-खुली आंखों से निकलती प्रेम रूपी किरणें चारों ओर फैल गईं।

शान्ति चली जा रही थी। पहाड़ी रास्ते का, जो आंखों को खोल-कर चलने पर भी ठोकर लगाने से बाज नहीं आता था, शान्ति को तनिक भी ध्यान नहीं था। सुन्दरदास ने उसकी यह दशा देखी तो विवश हो, उसका कन्धा थामते हुए बोला, "शान्तिजी ! आप गिर जाएंगी—देखिए रास्ता कितना खराब है।"

उसी प्रकार आंखें बन्द किए, शान्ति के होंठ खुले, और उनमें से बहुत ही धीमी, पर मधुर आवाज़ निकली, "इसी प्रकार आप मुझे पकड़े रहिए, मैं नहीं गिरूंगी।"

इसी समय रास्ते में एक बेंच आ गई। ऐसे कच्चे रास्ते पर प्रत्येक मील या डेढ़-मील के अन्तर पर एक बेंच पड़ी होती है, जो थके हुए सैलानियों की थकावट को दूर करने के लिए सरकार द्वारा लगाई गई हैं।

"आप थक गई होंगी।" कहते-कहते सुन्दरदास ने उसे बेंच पर बैठा दिया और स्वयं भी बैठ गया।

शान्ति ने अपनी आंखें पूर्णरूप से खोलीं। उसका दांया हाथ सुन्दर-दास के दोनों हाथ के बीच था। कुछ क्षणों तक दोनों ही मूक-भाषा में एक-दूसरे से बातें करते रहे—केवल हृदय की भाषा में, अथवा आंखों की बोली में।

इस खामोशी को तोड़ते हुए, सुन्दरदास ने उसके माथे पर की बून्दों को रूमाल से पोंछते हुए कहा, "शान्तिजी !"

वह सुन्दरदास के कन्धे पर पर अपना सिर रखते हुए बोली, "मैं शान्ति नहीं—मेरे हृदय की शान्ति तो आप हैं।"

उसके माथे पर पानी से भीगकर झुकी हुई बालों की लटों को संवारते हुए सुन्दरदास बोला, "तो फिर सुन्दर कौन हुआ ? आप क्या कोई और हो ? और 'सुन्दर' के पश्चात् मैं शेष रह गया केवल 'दास'। मुझे आज से, शान्तिजी ! केवल 'दास' कहकर पुकारा करो। मुझे यही नाम शोभा देता है।"

"तो फिर मैं क्या रह गई ?"

"आप ?" जब शान्ति नहीं रही, तो शेष केवल 'देवी' रह जाता है। अच्छा, आज से मैं आपको 'देवी' पुकारा करूंगा और आप मुझे 'दास'।"

प्रेम-विभोर हो शान्ति ने अपना सिर उसके वक्ष से टिका दिया। अपने दोनों हाथों से उसके कोट का बटन ठीक करती हुई बोली, "नहीं-नहीं, मैं आधे नाम से आपको कभी नहीं पुकार सकती।"

"तो फिर पूरा बुलाया करो—'देवी-दास'—अपनी देवी का दास।"

इसका जवाब न दे, शान्ति बोली, "सुन्दरजी, आपका हृदय कितना सुन्दर है।"

सुन्दरदास ने शान्ति की आत्मा को अपने हृदय में छुपाने का यत्न करते हुए, उसकी प्रेम से भारी हो गई आंखों में झांकते हुए कहा, "जिस हृदय में 'शान्ति' का निवास हो वह फिर सुन्दर क्यों न हो।"

फिर धड़कन की भाषा द्वारा दोनों के हृदय एक-दूसरे की बातें सुनने के लिए पास-पास पहुंचने वाले ही थे कि इसी समय सुन्दरदास को अपने भीतर कुछ खोखलापन और बेसुरापन का अनुभव हुआ। अचानक किसी विचार ने आकर उसे बेचैन बना दिया। उसके प्रेम-रंग में किसी ने भंग डाल दिया। प्रेम की बाढ़ में बहने वाले को जैसे कर्तव्य रूपी किनारे की किसी कांटेदार झाड़ी ने अपने साथ उलझा लिया। उसका चेहरा मलीन हो गया। शान्ति ने उसके चेहरे और आंखों को बड़े ध्यान से देखा। वह पीछे हट गई और अपने-आपको सम्भालती

किया। परन्तु वैसे ही जैसे कोई दुर्बल व्यक्ति अपने ताकतवर सांझीदार द्वारा किए गए गबन को सहन करता है। उसके मुंह से एक शब्द भी न निकला। वह बैन्च से उठी और बोली, "चलिए अब लौट चलें।"

उसके हाथ को पकड़, उसे बैठाते हुए सुन्दरदास बोला, "परन्तु इसमें घबराने की तो कोई बात नहीं। मैं इस कच्चे बन्धन को रात होने से पूर्व ही तोड़ सकता हूं।"

निराशा से उसकी ओर देखते हुए—मानो उसको कोई बहुत बड़ा खजाना मिला हो और फिर खो गया हो—वह बोली, "नहीं, सुन्दरजी! ऐसा नहीं हो सकेगा। मेरा हृदय पत्थर का नहीं जो मैं किसी सौभाग्यशाली के कोमल हृदय पर अपनी इच्छाओं का महल बनाऊं। सुन्दरजी! मेरे पहलू मे भी एक स्त्री का दिल है।"

सुन्दरदास ने जिस गर्व से यह बात कही थी, शान्ति का उत्तर था, वह इतना लज्जित हुआ कि उसकी आंखें झुक गईं। वह सोचने लगा, —शान्ति अपने मन में मुझे कितना कठोर, निर्दयी और लम्पट समझती होगी। समझती क्या होगी, मैंने जो कुछ किया है, वह वास्तव में है भी एक निर्दयी और लालची पुरुष का काम। इतना स्वार्थीपन कि किसी निर्दोष के सीने पर घाव रखकर निकल जाऊं, जिसके भीतर पता नहीं कितनी उमगें, इच्छाओं तथा चाव-भरे सपनों से भरा हृदय धड़क रहा होगा।

सुन्दरदास कोई कठोर-हृदय व्यक्ति नहीं था। शायद आज जीवन में उसे यह पहली बार भान हुआ कि उसने एक सुन्दरी के प्रेम-पाश में बन्धते-बन्धते अपने कर्तव्य की डोरियां ढीली छोड़ दी थीं। यह सोच, उसे कोई कम पश्चात्ताप नहीं हो रहा था, परन्तु उसकी छाती फटी जा रही थी, यह सोचकर कि उसके सम्मुख बैठी वह देवी उसे कितना कायर और कितना नीच समझ रही होगी। वह तड़प उठा, कुलबुला उठा—सोचने लगा कि किसी तरह शान्ति के मन से यह विचार निकल जाए, चाहे उसके बदले मे उसे अपना हृदय निकालकर उसके पांव पर भी क्यों न चढ़ाना पड़े।

शान्ति बैठ गई, परन्तु सुन्दरदास खड़ा हो गया। वह जमीन पर

बैठ गया और शान्ति के पांव पकड़कर बोला, "देवी, मैं सचमुच नहीं जानता था कि आप इस मृत्यु-लोक पर देव-लोक से आई हैं। मैं संसारी जीव हूं इसीलिए आपको भी सांसारिक समझ बैठा था, मुझे क्षमा...।" अपने दोनों हाथों से सुन्दरदास का हाथ पकड़कर शान्ति ने उसे उठाया और अपने पास बैठा दिया।

'कितना पवित्र हृदय है इस व्यक्ति का, कितने कोमल और शुद्ध विचार हैं इसके ! क्या संसार में ऐसा कोई और भी होगी काश ! ऐसा ही प्रकृति ने एक और बनाया होता ! सोचते हुए शान्ति बोली "सुन्दर जी ! बस आपका प्रायश्चित्त हो गया, परन्तु, फिर दोबारा ऐसा सोचा तो......।" वह चुप हो गई, परन्तु सुन्दरदास अर्थ समझ गया कि... 'कभी क्षमा नहीं करूंगी।'

उसका मन बहलाने के लिए शन्ति उसकी आंखों पर, जिनमें आंसू झलक रहे थे, अपनी उंगलियां फेरने लगी, और फिर बोली, "आपके विचार में, सुन्दर जी ! क्या विवाह के बिना स्त्री-पुरुष का प्रेम नहीं निभ सकता ?"

'आह ! कितना विशाल हृदय है इस लड़की का, क्या यह वही शान्ति है, जो अभी थोड़ी देर पहले प्रेम-समुद्र में बही चली जा रही थी और मैं घबरा गया था, इसका इतना तीव्र बहाव देखकर। कितन अधिक संयम है, इसमें ! इसका मन, इसके कितने काबू में है। शान्ति देवी ! तुम सचमुच ही एक देवी हो, मैं हमेशा तुम्हारी पूजा करूंग प्रेम-भावना के साथ तथा शिष्य-भावना के साथ भी। मेरा जन्म सफ हो जाएगा। ऐसा सोचता हुआ सुन्दरदास बोला, "शायद निभ सकत है, परन्तु उसके द्वारा निभाया जा सकता है जिसे किसी देवी का व दान प्राप्त हो।"

"सुन्दर जी ! आपका प्रतिबिम्ब मेरे हृदय पर पड़ चुका है, कभी भी नहीं मिटेगा। और मैं यह भी जानती हूं कि आपका हृदय मेरे प्रेम में रंग चुका है, परन्तु यह सब होते हुए भी क्या आप कुर्बानी नहीं दे सकते ?"

"कुर्बानी ?"

"हां, समाज ने जिस लड़की का हाथ आपके हाथ में दिया है उस

खुश रखने की कुर्बानी।"

"देवी ! मुझे और लज्जित मत करो। मैं बहुत बड़ा पापी हूं।"

"नहीं सुन्दर जी ! आप आदर्श पुरुष हैं और एक आदर्श-पति बनोगे। परन्तु एक बात कहती हूं। यह काम है बड़ा कठिन। यदि आपने अपनी होनेवाली पत्नी का तनिक सा अधिकार छीन कर भी मुझे *या किसी और को देने का प्रयत्न किया तो आपके जीवन भर की* कमाई मिट्टी में मिल जाएगी।"

"मुझे देवी ! केवल आपके आशीर्वाद की आवश्यकता है। मैं उसको खुश रख पाऊंगा या नहीं, यह तो भगवान के या समय के हाथ में है। परन्तु जहां तक मेरी कोशिशों का प्रश्न है मैं तुम्हारे आदेश का हमेशा पालन करूंगा। केवल यही चाहता हूं कि हमेशा तुम्हारी याद में रहूं।"

"काश, मैं आपको भुला सकती, परन्तु इस जन्म में मुझे, ऐसा होने की, आशा नहीं। एक बात और कहूं। यदि आप अपने-आप को इस कठिन तपस्या के योग्य नहीं समझते तो मैं आपको इस कठिन और ऊबड़-खाबड़ रास्ते का राहगीर नहीं बनाती। मैं आपको छूट देती हूं कि उस नाते को तोड़कर मेरे साथ विवाह कर लो।"

सुन्दरदास समझ गया कि शान्ति ने यह बात उसकी परीक्षा लेने के लिए कही है। वह यह भी जानता था कि यदि मैंने कह दिया हां मैं पिछला नाता तोड़ने के लिए तैयार हूं तो शान्ति—चाहे उसका मन कुछ भी कहे—अवश्य मेरी पत्नी बनने के लिए तैयार हो जाएगी। बन भी जाएगी, परन्तु इसका परिणाम क्या होगा ? जीवन भर शान्ति मुझे लम्पट, वासना का भूखा और पत्थर-दिल समझती रहेगी। फिर क्या होगा ? शान्ति का मेरे प्रति मोह श्रद्धा तथा मेरा हित चाहने की भावना सब एकदम समाप्त हो जाएगी ?

केवल गृहस्थ-जीवन की गाड़ी का भार ढोने के लिए और जीवन के सुख-दुःख के दिन काटने के लिए मेरे साथ बंधी रहेगी।

'तो फिर क्या मैं स्वर्ग को छोड़कर भयानक नरक में जा गिरूं ? अकेला ही नहीं बल्कि इस देवी को भी, जिसे प्रकृति ने किसी और काम के लिए रचा है, घसीट ले जाऊं ? नहीं, ऐसा कभी नहीं हो सकता।'

क्यों नहीं ? अच्छा, गोपालसिंह बता तो सही, आगे का क्या कार्यक्रम है ?"

गोपालसिंह बोला, "आगे का सब हो, जाएगा, परन्तु मुझे तो यह डर है कि कहीं जमना की तबीयत उससे मिल न जाए। कहीं ऐसा न हो जाए कि 'मियां-बीबी राजी तो क्या करेगा काजी' हम सूखे ही रह जाएं और लाट् साहब की साली अपनी जेबें भरती रहे।"

करीम तनिक रोब के साथ बोला, "वाह, मेरे होते हुए उसमें इतनी हिम्मत जो एक छोड़ दूसरे की हो जाए ? मैं तो गोपालसिंह, उसे टखनों से जा पकड़ूंगा। कौड़ी-कौड़ी का हिसाब न लिया तो करीम मत कहना। मैं तो जैसे को तैसा में विश्वास रखता हूं। सीधे के साथ सीधा और टेढ़े के साथ टेढ़ा। तू उस हलवाई के बेटे सोंधी को जानता ही होगा। एक बार हम दोनों ने मिलकर कमेटी का ठेका लिया। शुरू में तो वह ईमानदारी से काम करता रहा, परन्तु बाद में लगा हेरा-फेरी करने। मैं भी झट उसके सिर पर सवार हो गया। मेरी आदत है मैं थोड़े के लिए किसी को कुछ नहीं कहता, परन्तु कोई यदि बिलकुल ही बेईमानी पर उतर आए तो फिर बेटा बनाकर ही छोड़ता हूं उसे। बस जी, भगवान तेरा भला करे, मुझे उसकी दो-तीन बातों का पता चल गया—जहां-जहां से उसने माल उड़ाया था। ऐसा पेच घुमाया कि तीर जैसा सीधा हो गया। ठेका मेरे नाम पर था। बिल का सारा रुपया उगाह लिया मैंने और बैठा रहा अपने भाग्य को कोसता हुआ।"

गोपालसिंह का उसकी अलिफलैला की कहानी की ओर ध्यान न था। वह मन ही मन आशाओं के महल खड़े कर रहा था। करीम की बात के समाप्त होते ही वह बोला, "अच्छा करीम, हीरासिंह यहीं पर है न ? कहीं बाहर तो नहीं गया हुआ ?"

"बाहर उसने मां के सिर में जाना है। यहीं भूखों मरता फिरता है।"

"मेरा विचार है उस बेचारे को भी किसी काम में लगाएं। कभी-कभी काम आता है। है तो पढ़ा लिखा।"

"हां ! ज्ञान तो उसे सब चीज़ का है, वैसे ही कर्मों का मारा हुआ है। जुए की आदत ने उसका घर-बार फूंक डाला है। अच्छा, किस काम

पर लगाना है उसे !"

"मेरा विचार है प्रेम की दुकान पर उसे मुनीम बैठाया जाए।"

"विचार तो बड़ा नेक है। जौं की रखवाली के लिए गधे को ही बैठाना चाहिए। परन्तु उसका जो पहला मुनीम है ?"

"वह तो भाग चुका है।"

"भाग गया है, कहां ?"

"पैदा करने वालों के सिर में, सब कुछ लेकर उड़ गया है।"

"अच्छा ! तुझे कैसे पता चला ?"

"मैंने ही तो उसे भगाया है, और किसने भगाया है।"

"पर क्यों ?"

"तुझे मालूम नहीं ? वह तो प्रेम को खाए जा रहा था। मुझे जब पता चला तो मैंने सोचा, अगर सब कुछ यही निगल गया तो हमारे हाथ क्या आएगा। उसी दिन उसे जा पकड़ा। मैंने कहा, "बदमाश की औलाद—मैं तेरे सब काले कारनामों से परिचित हूं। प्रेम ने दुकान तेरे पर इसलिए छोड़ रखी है कि तू दिन-रात उसे लूटता जाए ? मैं आज ही उसे तार देने वाला हूं, और अभी पुलिस में तेरी रिपोर्ट करता हूं—हेराफेरी के जुर्म में ऐसा फटकारा कि दूसरे दिन वह भाग खड़ा हुआ।"

"तब तो सामा माल ले गया होगा।"

"तो क्या खाली चला जाता ? पर हमें क्या ? हमें तो अपना उल्लू सीधा करना है। इसलिए अब मेरा विचार है कि हीरासिंह को उसकी दुकान पर बैठाएं ! प्रेम भी मान जाएगा, क्योंकि मुनीम के बिना उसका काम चलने का नहीं। न ही वह स्वयं दुकान पर बैठेगा और न ही दुकान चलेगी।"

"तो इसका अर्थ यह कि पहले वह लूटता था अब हीरासिंह मजे उड़ाए। हीरासिंह जैसा विश्वासघाती तो सारे अमृतसर में नहीं होगा।"

"तू भी करीम, बिलकुल बुद्धू है। हमने कोई उसे दया का पात्र समझकर बैठाना है ? पत्ती ठहराएंगे। आप भी खाएगा और हमें भी खिलाएगा।"

"ठीक है। ठीक है। मैंने सोचा था कि शायद हम खाली हाथ रहेंगे।"

"सूना है बूढ़े का बैंक में भी कुछ रुपया है।"

"था तो बहुत, पर इस बांके-छबीले ने समाप्त कर दिया होगा।"

"कोई बात नहीं। सम्पति तो बहुत है।"

"बहुत छोड़ बेहिसाब।"

"फिर?"

"फिर बस देखे जा भगवान की लीला के रंग। करीम! हमारे हाथों में फंसा हुआ यदि सूखा ही निकल जाए तो फिर हमारा जीना किस काम का।"

"परन्तु गोपालसिंह! उस दिन जब बूढ़े की खबर लेने गए थे, बूढ़ी ने प्रेम के विवाह के बारे में क्या कहा था? मुझे तो उसकी बात कुछ समझ में नहीं आई थी। क्या कह रही थी?"

"कहती थी प्रेम को कहो विवाह कर ले। अच्छे-अच्छे घरों से रिश्ता आता है वह मानता ही नहीं।"

"अच्छा तेरा क्या विचार है, उसे शादी कर लेनी चाहिए?"

"मेरा तो इच्छा है वह इसी तरह आवारा ही रहे। शादी हुई कि हमारे हाथ से गया।"

"मेरी भी यही इच्छा है।"

अभी वे यह बातें कर ही रह थे कि गाड़ी आ गई। प्रेम और जमना, नौकर के साथ उतरे, दोनों ने बढ़-चढ़कर उनका स्वागत किया। साथ ही प्रेम से अपना दुःख प्रकट किया।

बाहर पहुंचने पर सभी तांगे में बैठ गए। कुली ने सामान रख दिया और गोपालसिंह ने तांगेवाले को आदेश दिया "चल रामबाग की ओर।"

तांगा उधर जाने लगा।

१३

प्रेम ने जमना बाई को उसके मकान पर छोड़ा और स्वयं अपने घर पहुंचा। नारायणी रोकर बेटे के गले लगी। पड़ोस की स्त्रियां भी आ इकट्ठी हुईं। मृत्यु से पूर्व किस प्रकार बाप की आत्मा बेटे को देखने के

लिए भटकती रहीं और आखिरी सांसों तक भी किस तरह उसकी आखें दरवाज़े पर लगी रहीं—यह सब बातें नारायणी और अन्य स्त्रियां प्रेम को बताने लगीं। उन्होंने उसे बताया कि किस तरह उसका बाप थोड़ी-थोड़ी देर बाद बड़बड़ाने लगता था, "मेरा प्रेम, मेरा प्रेम अभी नहीं आया ? जाओ प्रेम का बुला लाओ, मेरी जलती हुई छाती को आकर ठंडक पहुंचाए, मैंने अभी प्रेम का विवाह संस्कार भी नहीं देखा। भगवान मुझे एक मास और जीने दो, मैं अपने प्रेम को एक बार घोड़ी पर चढ़ता देख लूं।"

फिर नारायणी ने बताया, "मरने से पूर्व तो ऐसा लगता था जैसे 'प्रेम' के अतिरिक्त दूसरा शब्द ही उसकी ज़बान पर न आता हो। यह कहते—भगवान मेरे भाग्य में अपने बेटे की खुशियां देखना तो न था, परन्तु मरने से पूर्व मुझे मेरा बेटा तो दिखा देता। लोगों ! प्रेम न आया तो मेरे प्राण बड़ी कठिनता से निकलेंगे। अन्त में जब ज़बान भी साथ छोड़ गई तो थोड़ी-थोड़ी देर बाद आखें फाड़े दरवाज़े की ओर देखते, फिर कान लगाकर बाहर से आनेवालों के पांवों की आवाज़ सुनने और उनकी आखें आंसुओं से भर आतीं। लोग उन्हें ढाढ़स बंधवाते कि प्रेम आ रहा है, अभी आया थोड़ी देर में। ज़बान साथ न देती, परन्तु उठ-उठकर गिर पड़ते। जो भी उन्हें देखता, दहल उठता था। और बेटा तू, ऐसा गया कि लौटने का नाम तक न लिया। बाप को जिस हालत में छोड़कर गया था, तुझे पता ही था। परन्तु तूने तो दो पैसे का पत्र भी न लिखा। कोई दूसरा भी होता तो इतना अवश्य कर देता। दो-तीन आढ़तियों को बम्बई से तार दिया, दिल्ली में भी तार दिए, परन्तु तेरा कोई ठौर-ठिकाना ही न मिला।"

प्रेम का मन यह सब व्यर्थ की बातें सुनते-सुनते उकता गया। वह चाहता था कि जल्दी ही इस बेमतलब राम-कहानी की इतिश्री हो और वह अपने काम में जुटे। जब नारायणी बात कर चुकी तो वह बोला, "मां, मैं क्या करता। काम से तो एक मिनट का भी चैन न था। एक दुकान से दूसरी दुकान पर घूमकर माल खरीदना, दलालों से माथा-पच्ची करना और इसपर भी बम्बई जैसा नगर जहां एक बाज़ार से दूसरे बाज़ार तक जाते-जाते शाम हो जाती है।"

मां को भले ही बेटे की लापरवाही पर बड़ा रोष था, परन्तु इसके साथ उसे खुशी भी थी कि होनहार बेटे को काम-काज से पत्र तक लिखने की फुर्सत नहीं मिली। क्या इतना काम है कि मेरा बेटा बुरी संगत छोड़ व्यापार में जुट गया है। भोली-भाली मां को भला क्या मालूम था कि उसका कमाऊ बेटा आजकल कौन-सी कमाई कर रहा है।

प्रेम ने पूछा, "मां ! सुना है मुनीम कहीं चला गया है।"

"हां, बेटा ! मुझे तो इधर रोना-धोना पड़ा हुआ था, और बेटा बुरा मत मानना, तूने भी बच्चों वाली बात की। भला इस प्रकार कोई भरी-पूरी दुकान को नौकरों के आसरे छोड़ता है ? मैंने तो सोचा था शायद तू दुकान बन्द करके जाएगा। भगवान जाने कितनों का माल गोल कर गया है।"

प्रेम बोला, "मैंने तो मां अपनी ओर से लाभ की बात सोची थी कि वह पीछे से चार पैसे कमाएगा, कई काम निपटेंगे। लड़का भी बड़ा ईमानदार। मेरा विचार है भागकर जाना कहां है उसे, कहीं काम से गया होगा, आज या कल अपने-आप लौट आएगा।"

"और है कहां का, कोई ठौर-ठिकाना मालूम है उसका ?"

"पूरा तो नहीं मालूम, पिताजी ने रखा था, शायद अम्बाला ज़िले का रहनेवाला था।"

"पर बेटा, तेरे पिता जी तो किसी पर एक कौड़ी का विश्वास भी नहीं करते थे। और तूने तो सब ताले-कुंजियां उसके सुपुर्द कर दी थीं।"

प्रेम ने कोई जवाब न दिया। वह मां के समीप से उठा और दुकान की ओर यह देखने के लिए चल पड़ा कि मुनीम कितने का नुकसान कर गया है। फिर आज ही गोपालसिंह द्वारा बताए गए हीरासिंह को नि[illegible] करने का उसका विचार था।

ताला तोड़कर उसने दुकान को जा खोला। भीतर का दृश्य [illegible] कर उसका हृदय डूबने लगा। हर ओर सफाया ही सफाया था। [illegible] बन्द माल जितना वह दुकान में छोड़ गया था उसका निशा[illegible] भी कहीं नहीं था, परन्तु पुराना और टूटा-फूटा माल अवश्य प[illegible] नकदी वाली पेटी खुली पड़ी थी और उसमें आते-जाते चूहे कूद[illegible]

प्रेम को दुकान पर आया देख कई दुकानदार दुःख प्रकट करने आ पहुंचे और सहानुभूति प्रकट करने लगे। एक बाप के मरने के लिए और दूसरा लूटे जाने के लिए।

थोड़ी देर बैठने के पश्चात प्रेम दुकान बन्द कर उगाही वाले ग्राहकों की ओर गया तो लगभग सभी ने पूरी राशि पर प्राप्तकर्ता के हस्ताक्षर उसे दिखा दिए। मुनीम पाई-पाई का हिसाब कर गया था।

वह सिर पकड़कर बैठ गया और आंखों के आगे अंधेरा सा छा गया।

उसको इस अंधेरे से घिरे संसार में यदि किसी का कोई आसरा दिखाई देता था तो वह थी जमना बाई या फिर उसके मित्र गोपालसिंह। अपना दुःख बांटने के लिए और इन दुखों से छुटकारा पाने का कोई रास्ता पूछने के लिए, वह गोपालसिंह के पास भागा गया।

परन्तु गोपालसिंह से क्या छिपा हुआ था। उसने झूठा ढाढस बंधा-कर और जमना बाई से बेहिसाब धन-दौलत मिलने के हरे बाग दिखा-कर उसे कुछ राहत पहुंचाई।

दूसरे ही दिन गोपालसिंह की प्रेरणा और जमना बाई की सहमति से प्रेम ने किसी और मोहल्ले में एक बहुत ही सुन्दर मकान किराए पर ले लिया और जमना बाई को वहां पर जा बसाया।

इसके पश्चात प्रेम की जेब थी और जमना का हाथ। ज्यों-ज्यों जमना बाई अपनी लाखों की झूठी सम्पत्ति उसे सौंप देने का लालच देती गई, त्यों-त्यों प्रेम के बाप की गाढ़े-पसीने की कमाई उसके पास पहुंचती गई।

वह दिन-प्रतिदिन कठिनाईयों के अथाह समुद्र में डूबने लगा और किनारा उससे दूर होता चला गया। उसके पांव पाप-सागर की गहराई में धसते जा रहे थे, परन्तु अभी भी उसे पूरा विश्वास था कि वह जिस नाव पर सवार है, वह उसे किनारे पर पहुंचा देगी। वह मूर्ख यह नहीं जानता था कि कागजों की नाव पर चढ़कर कोई भी पार नहीं पहुंच सकता।

१४

समय चाहे दुःख का हो या सुख का, उसकी गति रुकती नहीं, वह तो अपनी गति से चलता रहता है। हां इतना अवश्य होता है कि सुख की घड़ी जल्दी बीतती है और दुःख का समय काफी लम्बा प्रतीत होता है। रलाराम की पहली वर्षी हो गई।

प्रेम के लिए इस एक वर्ष को न तो हम खुशी का वर्ष कह सकते हैं और न ही दुःख भरा। परन्तु यह दुःख-सुख का मिलाजुला वर्ष था। दुःख तो उसे इस बात का था कि उसकी दौलत नदी में आई हुई बाढ़ की तरह बहती जा रही थी, क्योंकि कुछ तो उसने स्वयं बाप की कमाई को चोरी का माल समझकर उड़ाना शुरू कर दिया था और जो कमी थी वह पुराना मुनीम पूरी कर गया था, उससे अपने काम में जो कमी रह गई थी उसको हीरासिंह ने पूरा कर दिया।

हीरासिंह पर प्रेम को उतना ही विश्वास था जितना गोपालसिंह पर। उसको दुःख इस बात का था कि ऐसा ईमानदार और परिश्रमी नौकर उसे पहले क्यों न मिला, यदि मिल जाता तो कितना अच्छा होता।

शायद यह उसके मित्र की वफादारी और जमना बाई के पवित्र और अटूट प्रेम का फल था कि वह मां से चोरी-चोरी अपने दोनों मकान, इस एक ही वर्ष में, बेच चुका था।

दुकान के काम को दिन-प्रतिदिन अवनति की ओर जाते देखकर, प्रेम ने आजकल एक नया धन्धा शुरू कर लिया था जिसमें उसे काफी लाभ होने की आशा थी, परन्तु फल तो क्या अभी तक उसकी कोपलें भी नहीं निकली थीं। हां, कांटे अवश्य निकल आए थे जिनसे उलझकर, रोज़ ही प्रेम की जेब से कुछ नोट बाहर निकल जाते थे। यह था सट्टे का व्यापार। जितने रुपये उसके पास इकट्ठे होते, वह उन्हें कभी नम्बर पर और कभी दड़े पर लगा आता।

उधर जमना बाई का माया-जाल उसे दिन-प्रतिदिन चारों ओर से जकड़ता जाता था। उसका जमना बाई के प्रति प्रेम भले ही अब नाम-मात्र को भी न था, क्योंकि किसीके प्रति उसके प्रेम का जीवन सप्ताह-दो सप्ताह से अधिक न होता था, परन्तु यहां से छुटकारा पाना उसके

लिए सरल न था। प्रेम की आंखों को चकाचौंध कर रहे ये जमना बाई के झूठे जवाहरात और बैंक में जमा लाखों की झूठी दौलत।

इसी आशा के भरोसे वह जमना बाई से एक वर्ष तक चिपटा रहा। भले ही उसने इस लम्बे समय में जमना बाई की कई आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए हजारों रुपए खर्च डाले थे, परन्तु उसने कभी भी इस सौदे को महंगा नहीं समझा था। वह सोचता कि पन्द्रह-बीस हजार रुपये खोकर यदि डेढ़-दो सौ हजार आ जाएं तो इससे अधिक लाभदायक व्यापार और कौन-सा हो सकता है। परन्तु वह सुनहरा दिन उसे मृग-मरीचिका के समान दूर ही दूर दिखाई देता था। फिर भी वह निराश नहीं था और न ही जमना बाई का सम्मोहन-मन्त्र उसे निराश होने देता था। उसे सफलता की पूर्ण आशा थी और वह भी रुपये में ■ बत्तीस आने।

आजकल वह मन ही मन हर समय यही सोचता कि कौन-सा दिन होगा जब उसका जमना बाई की लाखों की सम्पत्ति पर अधिकार हो जाएगा और वह उसके पंजे से निकलकर किसी और का शिकार करेगा। जमना बाई के रहते उसकी इतनी हिम्मत न थी कि वह किसी दूसरी के पास जा सके। ऐसा करने से उसे बनता काम बिगड़ जाने का डर था, परन्तु वह लाचार था क्योंकि उसका मन सदा ही बे-काबू घोड़े की तरह कंटीली तारों से घिरे हीरों के खेत को फांदने के लिए बेचैन रहता था।

उधर उसकी मां घर में बहू लाने के लिए जल्दी कर रही थी और आखिर में उसे मां की इच्छा से सहमत होना ही पड़ा। उसके मार्ग में किसी प्रकार की रुकावट न थी। गोपालसिंह तो इसलिए सहमत हो गया कि विवाह के लिए कपड़ा-आभूषण बनाने का काम उसको सौंपा जाएगा, जिसको खाने-कमाने का वह एक अच्छा अवसर समझता था, और जमना बाई अब वैसे ही उससे पीछा छुड़ाना चाहती थी क्योंकि प्रेम की जेब जवाब दे चुकी थी, जमना के लिए तो अब वह चाहे जीवित हो या मरा दोनों एक समान था।

संक्षिप्त में इतना, कि प्रेम-विवाह करवाने के लिए तैयार हो गया। इससे उसे एक ओर भी लाभ दिखाई देता था, क्योंकि आजकल उसको

से की बड़ी आवश्यकता थी और खर्च दिन-प्रतिदिन बढ़ता ही जाता ा, इसलिए वह सोचता कि अगर किसी अमीर खानदान का रिश्ता मिल गया तो फिर लक्ष्मी से लदी कई गाड़ीयां भी मिल जाएंगी।

उसने जब मां के सम्मुख विवाह के लिए अपनी सहमति प्रकट की तो नारायणी बड़ी प्रसन्न हुई। उसके चेहरे पर पड़ी झुर्रियों में से लाली चमकने लगी। वह उसी दिन से किसी अच्छे खानदान से रिश्ता पाने की खोज करने लगी। परन्तु उसको कुछ निराशा हुई, जब उसने यह पाया कि जिस प्रेम के लिए कुछ दिन पहले जो रिश्ता लिए फिरते थे, अब बात करने पर वही टालमटोल कर देते हैं। प्रेम की बुद्धिमत्ता और गुणों की प्रसिद्धि सारे अमृतसर में हो चुकी थी। केवल दो कान ही ऐसे थे, जो अभी तक इस ओर से बेखबर थे। यह कान थे नारायणी के। संक्षिप्त में इतना कि अब अमृतसर में उसे प्रेम के लिए रिश्ता मिलने की बहुत कम आशा रह गई थी। धीरे-धीरे वह पूर्णरूप से निराश हो गई। इतना ही नहीं, कभी-कभी क्रोध से उसका हृदय जलने लगता, जब कभी रिश्ते के लिए किसीके घर जाने पर उसे यह उत्तर मिलता—तेरे बेटे को तो सभी बुरी लत पड़ी हैं।

अन्त में उसने सोचा शायद अमृतसर से बाहर ही कोई बहू मिल जाए। इसलिए बेचारी को जहां-कहां भी खबर मिलती, कभी लाहौर कभी गुजरांवाला और कभी गुरदासपुर, वह भाग जाती।

अन्त में उसकी मनोकामना पूरी हुई। इस भागा-दौड़ी के फ स्वरूप उसे प्रेम के लिए लाहौर से रिश्ता मिल गया।

१५

लाहौर की शाम गली में एक तीन-मंज़िला मकान है, जिस दरवाज़े पर पीतल के उभरे हुए शब्दों में लिखा है, "एकान्त कु

यही हमारे पूर्व-परिचित मोहन का घर है।

दोपहर का समय था, परन्तु बादल घिरे हुए और बूंदा- रही थी। मकान की दूसरी मंज़िल पर आंगन में सरला बच्चे

रही थी और वर्षा आ जाने के कारण उसने ऊपर को देखते हुए आवाज़ लगाई, "शान्ति ! तनिक घमाला ढक देना !"

यह दोनों ननद-भाभी थीं, परन्तु एक-दूसरे को नाम से सम्बोधित करती थीं। संसारी रिश्ते की अपेक्षा उन्हें बचपन का स्नेह [illegible] अधिक ऊंचा दिखाई देता था। ननद-भाभी होते हुए भी उन्हें एक-दूसरे की सहेली बने रहने में अधिक आनन्द मिलता था।

तीसरी मंज़िल पर बरसाती में बाज़ार की ओर की खिड़की [illegible] शान्ति अपने बालों को सुखाने के लिए बैठी थी और उसके हाथ में कोई पुस्तक थी। भाभी की आवाज़ सुन, उसने पुस्तक को वहीं [illegible] रख दिया और जाकर घमाला को ढकने लगी।

अमानत है।···नहीं···नहीं। मैं गलत मार्ग पर नहीं जा रही, शरीर से न सही, आत्मा से मेरा है, पर नहीं। क्या मैं उसकी आत्मा की स्वामिनी हूं ? यदि मैं स्वामिनी हूं तो फिर उसके पास शेष क्या रह गया ? केवल थोथा शरीर ? क्या मैं उसकी आत्मा पर अधिकार कर, शेष उसका आत्मा-हीन शरीर ही किसी आशाओं और इच्छाओं से भरे हृदय को सौंपना चाहती हूं ? वह अभागी उसको लेकर क्या करेगी, जिसमें न आत्मा होगी और न ही प्रेम ? आह ! अनर्थ हो जाएगा ! उस बेचारे हृदय पर अत्याचार हो जाएगा। और इस पाप के लिए दोषी कौन होगा ? मैं और केवल मैं। नहीं···नहीं ! मैं ऐसा नहीं करूंगी। स्वयं मर कर भी उस बेचारी को जीवन दूंगी। स्वयं मिटकर भी उसका घर बचाऊंगी। मेरे सुन्दरजी को······मेरे नहीं, उसके सुन्दरजी को पा वह खूब खुशियां मनाए—उसका सोहाग अटल रहे। परन्तु हृदय ! इस हृदय का क्या करूं ? कहां छिपाऊं। ऐसे स्थान पर, जहां···जहां से सुन्दरजी इसको न देख पाएं, न तड़पें और न ही अपने मार्ग से विचलित हों। आह, कितनी बड़ी समस्या में उलझ गई हूं मैं। उस प्रेम-पुजारी के कितने पत्र आ चुके हैं, परन्तु मैंने एक का भी जवाब नहीं दिया। अच्छा किया है या बुरा, नहीं जानती। उसके कल वाले पत्र ने तो पहलू से हृदय को ही खींच लिया है। क्या इसका भी जवाब न दूं ? नहीं, नहीं, अवश्य दूंगी। वह अभागा मिट जाएगा—तड़प-तड़प कर प्राण त्याग देगा।'

इसके पश्चात् उसने पुस्तकों में से पत्र निकाल, पहले कई बार पढ़ चुकने पर भी उसे फिर पढ़ने लगी—

धर्मशाला
तिथि···

"देवीजी,

आज तक सुनता आया था कि देवी-देवताओं में दैवी गुण होते हैं—दानवी नहीं। भले ही आपका व्यवहार मुझे इस कथन पर पूरा विश्वास बंधवाता है, परन्तु शायद देवी-देवताओं में भी एक-आध गुण अवश्य दानवी होता होगा और शायद वह गुण होगा—पत्थर दिल का। नहीं तो मेरी देवी का हृदय कैसे पत्थर का हो सकता था ?

पिछले पत्रों में, मेरी देवीजी ! मैं अपने हृदय का सारा रक्त निचोड़कर आपको भेज चुका हूं और यदि कुछ बूंदें शेष रह गई थीं तो वह इन पंक्तियों में चू पड़ी हैं। शेष अब मेरे पास कुछ भी नहीं रह गया। अब भी जवाब देकर अगर नया जीवन नहीं दिया, तो यह समाप्त हो जाएगा। ठंडा हो जाएगा। मैं मानता हूं कि जवाब मांगने का मेरा कोई अधिकार नहीं—मैं आपका कौन होता हूं जो इसके लिए दबाव डालूं, परन्तु मैं एक बात के लिए दबाव डाल सकता हूं—भले ही मैं आपके लिए कुछ भी नहीं, कुछ भी न होऊं—और वह है जीवनदान, जो कोई भी दैवी गुणों वाला दे सकता है और कोई भी मनुष्य उसे मांग सकता है।

मुझे क्षमा करना, एक बार आपको 'मेरी शान्तिजी' कहकर सम्बोधन करने को मन करता है। हां मेरी शान्तिजी ! मुझे पूरा विश्वास था कि पिछली वर्षाऋतु की तरह इस बार भी आप आएंगी, परन्तु आह ! 'देवदास' के बार-बार यह बोल हृदय से निकलने लगते हैं—

'सावन आया, तुम न आए !'

एक बार आप आ जातीं तो हृदय की सभी बातें आपके सम्मुख रख देता, अपनी देवी के पवित्र दर्शनों से आंखों को शान्त कर लेता और फिर सदा के लिए इस इच्छा को मन से निकाल फेंकता, निकालना अवश्य है और वह समय बहुत ही पास आ रहा है, जब किसी और के लिए मुझे अपना हृदय खाली करना पड़ेगा। मेरी शादी का दिन बहुत निकट आ रहा है। अब तक कब की शादी हो गई होती, परन्तु एक वर्ष के लिए अपना फालतू समय मैं सेवा-समिति को सौंप चुका था। अब लड़की वाले बहुत दबाव डाल रहे हैं। शायद दो-तीन साल में विवाह हो जाएगा, पर क्या मैं इसमें सफल हो सकूंगा ? क्या बताऊं, कुछ न कह सकता। इसीलिए चाहता था कि यदि मेरी देवी एक बार आ ज मेरे हृदय को नई शक्ति, नया उत्साह दे जातीं तो मैं सफल ज जाता।

परन्तु मेरी शायद सभी प्रार्थनाएं बेअसर हैं, सारी मिन्नतें हैं। शायद मैं अपने तुच्छ हृदय की तसवीर अपनी देवी को शब्दों द्वारा दिखा सकने में सफल नहीं हो सका।

अच्छा ! मेरा भाग्य ! बस और कुछ नहीं लिखूंगा—लिखना
हते हुए भी नहीं लिखूंगा । जवाब मांगने की भूल भी नहीं करूंगा ।

आपका—नहीं, किसीका भी नहीं,

सुन्दरदास ।"

पत्र पढ़ते-पढ़ते उसकी आंखों से आंसू छलक-छलककर वर्षा से भीगी उसकी चुनरी को और भी गीला करने लगे । उसने पत्र को फिर बन्द करके पुस्तक में रख दिया ।

इसके पश्चात् वह बिना कुछ और सोचे कलम, दवात और पैड लेकर पत्र लिखने लगी ।

बच्चे को सुलाकर सरला जब ऊपर आई तो शान्ति पत्र का काफी भाग लिख चुकी थी ।

सरला को देखकर उसे पत्र छिपाना नहीं पड़ा । आरम्भ से ही दोनों के हृदय आपस में इस प्रकार मिले हुए थे कि गुप्त से गुप्त बात भी एक-दूसरी से छिपा नहीं सकती थीं । सुन्दरदास के अभी तक जितने पत्र उसको मिले थे उसने सबके सब उसे पढ़ा दिए थे । सरला कई बार उनका जवाब देने के लिए उसे कह चुकी थी, परन्तु शान्ति कभी भी सहमत नहीं होती थी ।

पिछले वर्ष जब वे धर्मशाला गए थे तो बाबू सुन्दरदास से इनक मिलाप हुआ था, तब मोहन और सरला को यह आशा थी कि शान्ति लिए ऐसा पति बड़ा योग्य होगा, परन्तु जब उनको पता चला कि सुन्द दास की सगाई हो चुकी है तो उनको बड़ी निराशा हुई थी ।

इसके पश्चात् मोहन और सरला दोनों ने कई बार शान्ति सगाई कर लेने के लिए कहा—कई लड़कों के परिचय उसको दिए परन्तु शान्ति ने कभी इस ओर ध्यान न दिया । अब उसकी इस म में तनिक भी रुचि नहीं थी । जब कभी भी सरला द्वारा मोहन से इस बारे में कुछ कहलवाता वह हमेशा यही उत्तर दे देती— भैय्या की इच्छा हो मेरा रिश्ता वहीं कर दें, मुझे स्वीकार होगा स्वयं इस मामले में भाग नहीं लेना चाहती ।

मोहन और सरला इस ओर से अनभिज्ञ न थे कि जब से धर्मशाला से आई है । उसका मन एक प्रकार से निराश हो गया

जीवन दिन-प्रतिदिन नीरस-सा होता जाता है, परन्तु वे क्या कर सकते थे, वे विवश और दुःखी थे। धर्मशाला से लौटे उन्हें एक वर्ष हो गया था, परन्तु शान्ति अभी तक अविवाहित थी।

सरला ने उसके पास आते ही हंसते हुए कहा, "यह कौन-सा दफ्तर खोले बैठी है?"

शान्ति जवाब दे, इससे पहले सरला ने उसके हाथ पत्र ले लिया और पढ़ने लगी। शान्ति ने बिना विरोध किए उसे पत्र पढ़ने दिया।

सरला ने पत्र पढ़ा और पढ़ते ही उसका चेहरा गम्भीर हो गया, उसकी आंखों में आंसू भर आए। पत्र क्या था, शान्ति के हृदय की एक तसवीर था। वह सोचने लगी—इतना त्याग किसी स्त्री में हो सकता है। शान्ति यदि आज भी चाहे तो सुन्दरदास को प्राप्त कर सकती है, परन्तु किसी दूसरे के भविष्य के लिए वह बलिदान कर रही है, अपनी सारी आशाओं और इच्छाओं का गला घोट रही है। शान्ति वास्तव में इस युग की देवी है।

सरला ने शान्ति को अपने सीने से लगा लिया और उदास चेहरे पर हंसी लाकर बोली, "क्या सचमुच मेरी प्यारी ननद सन्यासिनी बनना चाहती है? (उसके लम्बे बालों को हाथ में लेकर) परन्तु यह काले बादल जब हवा में मिलकर उड़ेंगे तो चांद और सूर्य भी छिप जाएंगे।"

शान्ति ने गहरी सांस भरी, परन्तु हंसी का जवाब हंसी से देते हुए बोली, "तब तो बहुत ही अच्छा होगा, अधिक रोशनी आंखों के लिए हानिकारक होती है।"

ठोड़ी पकड़कर उसके चेहरे को ऊपर करते हुए सरला बोली, "और सौ चांदों को मात करनेवाला यह चांद जब चमकेगा, तो पता है फिर क्या होगा?"

"क्या होगा?"

"राह से गुज़रने वालों की आंखें चौंधिया जाएंगी और (उसके बालों को दोबारा हाथ में लेकर) वे रास्ता भूलकर इस घने जंगल में आ फंसेंगे।"

उसकी पीठ पर चुटकी भरकर शान्ति हंसते हुए बोली, "तू कवि-

यित्री है या जुलाहिन ? पहले इनको बादल बनाया है और अब जंगल बताने लगी है ?"

"जुलाहिन मैं हूं या तू ?"

"मैं क्यों ?"

"तू ही तो है, जो उपमा-अलंकार को समझ ही नहीं सकती कि एक उपमेय की कई उपमाएं दी जा सकती हैं।"

शान्ति निरुत्तर हो गई।

सरला फिर बोली, "फिर क्या विचार है तेरा ? सन्यासिन बनना है या ग्रहस्थिन ? पत्र से तो ऐसा लगता है, बस सन्यास लेने के लिए तैयार बैठी है। आज तेरे भैय्या आते हैं तो कहती हूं— एक चिम्टा, एक कमण्डल, एक रुद्राक्ष की माला और थोड़ा-सा गेरू बाजार से ले आवें, और क्या-क्या ? बस यही वस्तुएं होती हैं न, या कुछ और भी ?"

"बाजार से लाने की क्या आवश्यकता है, भीतर तेरी ये सब वस्तुएं जो पड़ी हैं, उन्हींका प्रयोग कर लेती हूं।"

"मेरी ? मेरी कौन-सी ?"

"वही, जो काश्मीर की एकान्त कुटिया में जाते समय तूने खरीदी थीं।"

सरला शर्मा गई।

शान्ति फिर कहने लगी, "मुझे सन्यासिन बनाकर तू अपने ऋण से छुटकारा पाना चाहती है।"

"कौन-सा ऋण ?"

"जो मेरा तेरे पर है।"

"कौन-सा ?"

"अपना भैय्या, और कौन-सा ?"

"ठीक है। सचमुच तेरा मेरे पर ऋण है, परन्तु मेरा भाई बहुत छोटा है और वह भी सौतेला। इसीलिए पहाड़ की चोटी पर जाकर एक ढूंढ़ा था, परन्तु तू तो स्वयं ही उसको ठुकरा रही है, मैं क्या करूं।"

"दूसरे स्थान पर बिके हुए माल का मैंने क्या करना है ?"

"तब तेरा विचार है कोई दूसरा खरीदने का ?"

"तो और क्या···?"

"अच्छा तो यही सही। अमृतसर की एक फैक्टरी ने बहुत बढ़िया माल तैयार किया है, खास तौर पर तेरे लिए, परन्तु इस बार न लौटाना। यदि यह भी पसन्द न आया तो फिर तेरा मेरे पर कोई ऋण न रहेगा।"

शान्ति चुप रही। सरला फिर बोली, "लौटाना नहीं।"

"तेरी दी हुई भेंट मैं लौटा सकती हूं?"

"फिर न कहना मैंने देखा नहीं—परखा नहीं।"

"तेरे जैसी दलालिन के रहते भला मुझे क्या आवश्यकता है, देखने और परखने की।"

"दलालिन तो नहीं, दलाल कल अमृतसर जाकर परख आया है—कहता था बहुत बढ़िया माल है। सुन्दरदास की तरह न कहीं बिका हुआ है और न ही सौदा हुआ है। बिलकुल कोरा कपड़े की तरह। तेरा भैय्या कहता था, शान्ति से पूछ लेना, यदि देखना चाहे तो उसे यहीं बुलवा लेंगे।"

"देखने-परखने का मन में चाव ही नहीं रहा।"

"यदि कल को कोई चिपटे नाकवाला बदसूरत निकल आया तो फिर बैठेगी हमें कोसते हुए।"

शान्ति ने कोई जवाब न दिया। विस्तार से बताने के लिए सरला बोली, "उस दिन जब तू भैय्या के साथ चिड़ियाघर देखने गई हुई थी तो अमृतसर से एक बुढ़िया हमारा घर पूछते-पूछते यहां आ पहुंची। उसका बेटा पच्चीस-छब्बीस वर्ष का अविवाहित है। बाप नहीं है और अमृतसर में थोक मनियारी की दुकान है। काफी धनी परिवार है। रात को जब तुम सैर करके लौटे थे तो चोरी-चोरी तेरे भैया को मैंने सब कुछ बता दिया था। वह कहने लगे, "पहले स्वयं जाकर देख आएं फिर शान्ति से बात करेंगे। इसलिए कल वह गए थे, देख और परख आए हैं। लड़के की बड़ी प्रशंसा करते हैं। कहते हैं बड़ा ही गोरा, सुकोमल और सजीला जवान है, पूरा साहब का साहब। अब बता तेरा क्या विचार है? यदि इच्छा है तो कल अमृतसर चलें या लड़के को यहीं बुला लें।"

शान्ति गम्भीर हो बोली, "सरला! मैं तो तुझे कह चुकी हूं कि

मुझे देखने-परखने की कोई आवश्यकता नहीं है। मैं विवाह कराऊंगी, इसलिए नहीं कि इसकी मुझे आवश्यकता है, परन्तु इसलिए कि शायद मैं सन्यासिन का जीवन नहीं बिता सकूंगी। सो गले में फंदा डलवाना है, चाहे रस्सी का हो या लोहे का।"

"परन्तु हम तो तेरे गले में सोने का डालेंगे।"

"सोने का ही सही। है तो आखिर फंदा ही या कुछ और? सोने का बल्कि भारी होगा, गर्दन को जल्दी काटेगा।"

"यदि तू फंदा न समझे तो नहीं, यदि समझे तो है।"

"परन्तु मेरे लिए तो सरला यह फंदा ही होगा।"

"अपने-आप फंदे का हार बन जाएगा, जब तू उस बुढ़िया को किसी कमरे में बन्द कर और स्वयं उस अरबी घोड़े पर सवार हो इतनी बड़ी हवेली में छम-छम करती फिरेगी।"

"शान्ति चुप रही। सरला फिर बोली, "तेरी क्या इच्छा है फिर? ठीक-ठीक बता दे। वह तो आज जाते हुए कह गए हैं कि शान्ति से सब कुछ पूछ लेना।"

"जैसे भैया की इच्छा हो।"

"तुझे कोई इतराज़ नहीं?"

"मुझे क्या इतराज़ हो सकता है?"

"खोदा, काना स्वीकार?"

शान्ति ने कोई जवाब न दिया।

"फिर शगुन दे दें?"

"जैसे तुम्हारी इच्छा!"

इसी समय नीचे से बच्चे के रोने की आवाज़ आई, सरला जल्दी से नीचे चली गई और शान्ति फिर अधूरे पत्र को पूरा करने लगी।

१६

मोहन ने एक सप्ताह के भीतर ही शान्ति का शगुन दे दिया, और आश्विन मास की विवाह-तिथि भी निकलवा ली, क्योंकि उसे कलकत्ता

की एक फिल्म कम्पनी में नौकरी मिल गई थी, और वर्षा ऋतु के पश्चात् उसे कार्य पर उपस्थित होना था। इसलिए वह चाहता था कि कलकत्ता जाने पूर्व ही शान्ति का विवाह हो जाए।

उधर जब प्रेम को मालूम हुआ कि शान्ति उसी फिल्मी कलाकार की बहन है, जिसकी चर्चा बच्चे-बच्चे की जबान पर है, तो वह अपने भाग्य को सराहने लगा। साथ ही फिल्म की हीरोईन (सरला) जिसको एक बार देखकर आंखों की प्यास बुझाने के लिए वह उसी दिन से मछली की तरह तड़प रहा था, जिस दिन उसने उसकी फिल्म देखी थी, अब कहीं उसकी सगी सलहज बन गई। वह सोचने लगा—भगवान कितना दयालु है। कभी-कभी मांगे और मनमांगे सभी अभिलाषाएं पूरी कर देता है।

सगाई के बाद ठीक समय पर प्रेम का विवाह हो गया और वह भी बड़ी धूम-धाम से। मां नारायणी ने बेटे की खूब खुशियां मनाईं। प्रेम को भी अपने विवाह की कोई कम खुशी न थी, परन्तु दूसरी ओर वह अपने भीतर के दोषों से भी परिचित था। वह इस समय ऐड़ी से चोटी तक कर्ज से दबा हुआ था। परन्तु मां नारायणी के लिए तो जैसे अब भी पंचमणी बिक रही थी, उस बेचारी को क्या पता था कि घर की सारी सिद्धियां बूढ़े के साथ थीं। वह सोचती मेरा कौन-सा दूसरा बेटी-बेटा है। युग-युग जिए मेरा प्रेम, मगर उसके विवाह पर अपने चाव पूरे न किए तो फिर कब करूंगी।

संक्षिप्त में यह कि घर में जो जमापूंजी थी वह भी खर्च हो गई और उतने पर भी प्रेम को हवेली का आधा भाग गिरवी रखना पड़ा। विवाह का काम तो उसके अनुसार तीन-चार हजार में हो जाना था, परन्तु इसके अतिरिक्त उसने कुछ हुण्डियों का भुगतान भी तो करना था, इसलिए उसने सोचा चलो एक साथ दोनों काम हो जाएंगे। इन दो के अतिरिक्त तीसरा एक बहुत ही आवश्यक काम और भी था और वह यह कि जमना बाई की कुछ मांगें थीं जो बड़ी देर से लटकती आ रहीं थीं। हवेली को गिरवी रख प्रेम ने अपनी ओर से तो बड़ी बुद्धिमत्ता का काम किया था कि तीनों कार्य पूरे हो जाएंगे, परन्तु उसकी योजना सफल न हो सकी। तीन में से केवल एक या डेढ़ काम ही

हो सका—केवल विवाह का और लगभग आधा ऋण चुकाने का।

लड़की के लिए कपड़ा-गहना बनाते समय नारायणी दूने तो क्या चौगने खर्च कर बैठी। पहले कुल मिलाकर सात-आठ सौ के कपड़े बनवाने का निर्णय लिया गया, परन्तु भगवान उठाए इन पड़ौसियों को, जिन्होंने राई का पहाड़ बना दिया। एक आकर कहती, "बहन, आजकल तो गोटा किनारी तो भंगिन भी नहीं पहनतीं। दो सूट सिलमे-सितारे के, तीन कच्चे तिल्ले के, दो-तीन खीमखाब और लगभग दस सूट साधारण रेशम के, इतना तो आजकल नीची जाति वाले ही कर रहे हैं।" दूसरी कहती, "भाभीजी, भला खानदानी परिवार में हज़ार-आठ सौ के कपड़ों से क्या बनता है। खुशियां तो सभी कपड़ों से होती हैं। फिर तेरा इकलौता ही तो बेटा है। बहू क्या कहेगी कि मेरी सास ने कपड़ों का चाव भी पूरा नहीं किया ?" इसी प्रकार की भांति-भांति की बोलियों के पीछे नारायणी आंखें बन्द किए चल पड़ी। जो कुछ भी कोई कहती, वह वही करती। संक्षिप्त में यह कि नारायणी के घर का आंगन लगभग पौन महिना दर्जियों ने सजाए रखा।

यह तो थी कपड़ों की। शेष रह गए गहने। उसे शुभचिंतक और बुद्धिमान स्त्रियों ने नाम बनाए रखने का एक सरल मार्ग बताया, वह यह कि वास्तविक में अमीरों की बहू-बेटी का प्रत्येक गहना जड़ाऊ होता है, इतना ही नहीं वे सिर से पांव तक गहनों से लदी रहती हैं। इतने से भी पड़ौसियों का मन न भरा, उन्होंने उसे एक और सलाह दी—'बीबी-जी ! कम से कम एक गहना ऐसा अवश्य बनवाना जो अभी तक मोहल्ले में किसी दूसरी स्त्री के पास नहीं है।' इसके परिणामस्वरूप नारायणी ने पूरे पैंतीस सौ का एक रानी-हार बनवा लिया। नगर के प्रत्येक भाग से स्त्रियां खासकर इसी हार को देखने के लिए आईं। बड़ी-बूढ़ी औरतों ने तो इसकी प्रशंसा में यहां तक कह दिया कि ऐसा हार सेठ भानूमल की बहू के गले के अतिरिक्त और किसी के पास नहीं देखा।

प्रेम के विवाह की सारे नगर में धूम मच गई। परन्तु किसी के द्वारा कही हुई बात सच बन गई कि रस्सी जल गई पर बल न गया। सब कुछ बिक गया था पर बेटे का विवाह तो हो गया।

प्रेम द्वारा उधार में लिए हुए दस हजार रुपये में से एक फूटी कौड़ी

भी शेष न बची। बल्कि ऐसा कहना उचित होगा कि यदि नारायणी के पास से कुछ रखी-रखाई पूंजी न निकलती, तो हो सकता था तीन-चार हजार का और उधार लेना पड़ता। नारायणी तो इसीलिए दोनों हाथों से दौलत लुटा रही थी कि वह उसके बेटे की कमाई थी। यदि बेचारी को पता रहता कि अपनी जूती, अपना ही सिर वाली बात होनी है, तो शायद वह कुछ सोच-समझकर खर्च करती।

विवाह के लिए सारी खरीद-फरोख्त की जिम्मेदारी सरदार गोपालसिंह पर थी। सारा गहना-कपड़ा उसीने खरीदा था। तभी तो *इतनी कंजूसी करती जा रही थी।*

मोहन पूर्णरूप से एक सुधारक विचारों वाला व्यक्ति था। सामाजिक रीति-रिवाजों को वह सादगी से निपटाने का इच्छुक था, परन्तु जब उसको अपने समधी की तड़क-भड़क का पता चला तो वह बड़ा घबराया और पछताया भी। परन्तु अब क्या हो सकता था। फौज जितनी बड़ी बारात का उसने किसी तरह स्वागत किया, पर बड़े ही साधारण ढंग से। इसी सादेपन से ही उसने शान्ति के विवाह की रस्म पूरी की। शान्ति तो अपने भाई से भी कहीं अधिक सादगी पसन्द करती थी। समधी के इस व्यवहार से नारायणी जल-भुन गई, परन्तु अब क्या हो सकता था।

विदाई के समय शान्ति ने देखा कि कितनी बेदर्दी से धन लुटाया जा रहा है। इसके अतिरिक्त जिस प्रकार उसे सिर से पाव तक गहनों से लाद दिया गया था, उससे उसके लिए सांस तक लेना असम्भव हो गया था। वह सोच रही थी कि कब वह समय आए, कि वह इन काट रहे पत्थरों से छुटकारा पाए। उसका शरीर गहने और कपड़ों के भार से बोझिल हो रहा था, और आज किसी और ही पीड़ा से व्याकुल था। उसके लिए सारा संसार एक भयानक जंगल बन गया था। सारी चहल-पहल उसके लिए मातम थी। भले ही इन सब पीड़ाओं को सहन करने के लिए वह पहले से ही अपने हृदय को तैयार कर चुकी थी, परन्तु सब कुछ यदि मनुष्य के हाथ में होता तो फिर मनुष्य भगवान ही न बन जाता। विवश हो शान्ति ने अपने मन-मस्तिष्क और शरीर पर काबू पा सारे रीति-रिवाज और रस्मों को पूरा किया और अन्त में सुहाग-

रात की वेला आई।

पति देवता आए और शान्ति की पहली नज़र उसके चेहरे पर पड़ी और वह इस तरह कांप उठी जैसे किसी सो रहे व्यक्ति पर सांप लोट गया हो। यह चेहरा उसको जाना-पहचाना लगता था। फिर तुरन्त ही पिछली वर्षा ऋतु और धर्मशाला की उस सामने वाली कोठी का ध्यान हो आया। 'शायद मुझे भ्रम हुआ है' यह विचार अभी मन में उठा ही था कि शराब की तेज़ गन्ध ने उसके मस्तिष्क को धर-दवाया और उस भ्रम को उड़ा दिया। उसको रुपये में सोलह आने विश्वास हो गया कि श्रीमानजी कोई न होकर यही महोदय हैं जिन्हें उसने किसी स्त्री के साथ न केवल शराब पीते बल्कि और भी बहुत कुछ करते देखा था। साथ ही अपनी तथा सरला की ओर लम्पट नज़रों से घूर-घूर कर गन्दी गज़लों को गाते भी।

शान्ति हृदय पर हाथ रखकर नीचे बैठ गई, परन्तु जन्म-जन्मान्तरों से चले आ रहे सम्बन्धों को तोड़ना और बिछुड़ों को मिलाना भला मनुष्य के वस में है ? वह सब्र का घूंट पी गई।

इसके पश्चात प्रेम ने शान्ति के साथ जो व्यवहार किया, वेशक उसमें कुछ सीमा तक प्यार की एक झलक भी थी, परन्तु शान्ति के लिए वह सब कुछ अत्याचार था, घोर अत्याचार। पहली भेंट ने उसके हृदय में पति के प्रति घृणा के भावों को जन्म दे दिया। उसने जिस प्रकार और सब कुछ सहन किया था, उसी प्रकार अपने शराबी और दुराचारी पति का सहयोग भी सहन कर लिया, परन्तु अपने हृदय की बात कि उसने पहले उसे किसी और रूप में देखा था, उसने उसे न वताई। जिस पुरुष के साथ उसने जीवन काटना था, उससे ऐसी कोई बात पूछना ठीक न समझा।

परन्तु प्रेम शान्ति को न पहचान पाया। पिछले कुछ दिनों से उसका ध्यान किसी दूसरी ओर लगा हुआ था। कुछ दिनों से जब वह सीढ़ियां उतरकर नीचे रह रहे किराएदार के दरवाज़े के आगे से होकर निकलता तो उसका मन वेकाबू हो जाता और उसके भीतर मादकता की ज्वाला-सी जलने लगती थी।

वह जितनी वार भी वहां से गुज़रता, उसकी निगाह हमेशा शंभूनाथ

के द्वार पर टिकी रहती, और खास करके जब कभी सुशीला की तिरछी नज़र उसपर पड़ जाती तो वह घायल हो जाता था। इस नज़र का शिकार हो वह कई बार काम-बेकाम घर मे आता-जाता रहता था।

विवाह के अवसर पर जब अन्य लड़कियो के समान सुशीला का भी इस घरमे बे-रोक-टोक आना-जाना हो गया था तो प्रेम का मन बिलकुल ही कामुकता से व्याकुल हो गया। उसकी दृष्टि हमेशा सुशीला का पीछा करती और मस्तिष्क तरह-तरह की योजनाएं बनाता। यही कारण था कि सुहाग-रात की पहली भेंट के अवसर पर भी प्रेम अपने-आपे में न था।

१७

मोहन को कलकत्ता जाना था, इसलिए शान्ति को पहले फेरे के पश्चात् उसने ससुराल मे ही रहने दिया और स्वयं सपरिवार कलकत्ता जाने की तैयारी करने लगा। शान्ति ने अपनी भाभी के आगे भेद न खोला, परन्तु सरला ने स्वयं ही प्रेम को पहचान लिया था, क्योंकि दोनो ने एक ही समय पर उसे इकट्ठे देखा था। फिर भी शान्ति ने सरला से प्रार्थना की कि वह किसी के आगे इस भेद को न खोले, समय आने पर अपने-आप देखा जाएगा।

सरला और मोहन को इस घटना से बड़ा दुःख हुआ। मोहन शान्ति के आगे बड़ा लज्जित था क्योंकि यह उसकी पसन्द का परिणाम था, परन्तु अब हो क्या सकता था—बिना ज़बान को ताला लगाने के अलावा। इस बारे मे प्रेम से कुछ कहना-सुनना भी उचित नही था बल्कि खतरे का कारण था।

शान्ति ने पहले दिन आते ही सास की त्योरिया चढ़ी देखी। वह समझ गई कि सास की नाराज़गी का कारण यही है कि वह अधिक दहेज नहीं लाई। परन्तु नई रोशनी में पली और पढ़ी शान्ति के लिए ऐसी सब बातें अर्थहीन थी। फिर भी जहां तक हो सकता, वह अपने पति और सास को प्रसन्न रखने की चेष्टा करती।

रात की वेला आई।

पति देवता आए और शान्ति की पहली नजर उसके चेहरे पर पड़ी और वह इस तरह कांप उठी जैसे किसी सो रहे व्यक्ति पर सांप लोट गया हो। यह चेहरा उसको जाना-पहचाना लगता था। फिर तुरन्त ही पिछली वर्षा ऋतु और धर्मशाला की उस सामने वाली कोठी का ध्यान हो आया। 'शायद मुझे भ्रम हुआ है' यह विचार अभी मन में उठा ही था कि शराव की तेज गन्ध ने उसके मस्तिष्क को घर-दबाया और उस भ्रम को उड़ा दिया। उसको रुपये में सोलह आने विश्वास हो गया कि श्रीमानजी कोई न होकर यही महोदय हैं जिन्हें उसने किसी स्त्री के साथ न केवल शराव पीते वल्कि और भी वहुत कुछ करते देखा था। साथ ही अपनी तथा सरला की ओर लम्पट नज़रों से घूर-घूर कर गन्दी गजलों को गाते भी।

शान्ति हृदय पर हाथ रखकर नीचे वैठ गई, परन्तु जन्म-जन्मान्तरों से चले आ रहे सम्वन्धों को तोड़ना और विछुड़ों को मिलाना भला मनुष्य के वस में है? वह सब्र का घूंट पी गई।

इसके पश्चात प्रेम ने शान्ति के साथ जो व्यवहार किया, वेशक उसमें कुछ सीमा तक प्यार की एक झलक भी थी, परन्तु शान्ति के लिए वह सव कुछ अत्याचार था, घोर अत्याचार। पहली भेंट ने उसके हृदय में पति के प्रति घृणा के भावों को जन्म दे दिया। उसने जिस प्रकार और सव कुछ सहन किया था, उसी प्रकार अपने शरावी और दुराचारी पति का सहयोग भी सहन कर लिया, परन्तु अपने हृदय की वात कि उसने पहले उसे किसी और रूप में देखा था, उसने उसे न वताई। जिस पुरुष के साथ उसने जीवन काटना था, उससे ऐसी कोई वात पूछना ठीक न समझा।

परन्तु प्रेम शान्ति को न पहचान पाया। पिछले कुछ दिनों से उसका ध्यान किसी दूसरी ओर लगा हुआ था। कुछ दिनों से जव वह सीढ़ियां उतरकर नीचे रह रहे किराएदार के दरवाजे के आगे से होकर निकलता तो उसका मन वेकावू हो जाता और उसके भीतर मादकता की ज्वाला-सी जलने लगती थी।

वह जितनी वार भी वहां से गुज़रता, उसकी निगाह हमेशा शंभूनाथ

के द्वार पर टिकी रहती, और खास करके जब कभी सुशीला की तिरछी नज़र उसपर पड जाती तो वह घायल हो जाता था। इस नज़र का शिकार हो वह कई बार काम-बेकाम घर में आता-जाता रहता था।

विवाह के अवसर पर जब अन्य लड़कियों के समान सुशीला का भी इस घरमें बे-रोक-टोक आना-जाना हो गया था तो प्रेम का मन बिलकुल ही कामुकता से व्याकुल हो गया। उसकी दृष्टि हमेशा सुशीला का पीछा करती और मस्तिष्क तरह-तरह की योजनाएं बनाता। यही कारण था कि सुहाग-रात की पहली भेंट के अवसर पर भी प्रेम अपने-आपे में न था।

१७

मोहन को कलकत्ता जाना था, इसलिए शान्ति को पहले फेरे के पश्चात् उसने ससुराल में ही रहने दिया और स्वय सपरिवार कलकत्ता जाने की तैयारी करने लगा। शान्ति ने अपनी भाभी के आगे भेद न खोला, परन्तु सरला ने स्वयं ही प्रेम को पहचान लिया था, क्योंकि दोनों ने एक ही समय पर उसे इकट्ठे देखा था। फिर भी शान्ति ने सरला से प्रार्थना की कि वह किसी के आगे इस भेद को न खोले, समय आने पर अपने-आप देखा जाएगा।

सरला और मोहन को इस घटना से बड़ा दुःख हुआ। मोहन शान्ति के आगे बड़ा लज्जित था क्योंकि यह उसकी पसन्द का परिणाम था, परन्तु अब हो क्या सकता था—बिना ज़बान को ताला लगाने के अलावा। इस बारे में प्रेम से कुछ कहना-सुनना भी उचित नहीं था बल्कि खतरे का कारण था।

शान्ति ने पहले दिन आते ही सास की त्योरियां चढ़ी देखी। वह समझ गई कि सास की नाराजगी का कारण यही है कि वह अधिक दहेज नहीं लाई। परन्तु नई रोशनी में पली और पढ़ी शान्ति के लिए ऐसी सब बातें अर्थहीन थीं। फिर भी जहा तक हो सकता, वह अपने पति और सास को प्रसन्न रखने की चेष्टा करती।

रात की वेला आई।

पति देवता आए और शान्ति की पहली नज़र उसके चेहरे पर पड़ी और वह इस तरह कांप उठी जैसे किसी सो रहे व्यक्ति पर सांप लोट गया हो। यह चेहरा उसको जाना-पहचाना लगता था। फिर तुरन्त ही पिछली वर्षा ऋतु और धर्मशाला की उस सामने वाली कोठी का ध्यान हो आया। 'शायद मुझे भ्रम हुआ है' यह विचार अभी मन में उठा ही था कि शराब की तेज़ गन्ध ने उसके मस्तिष्क को धर-दबाया और उस भ्रम को उड़ा दिया। उसको रुपये में सोलह आने विश्वास हो गया कि श्रीमानजी कोई न होकर यही महोदय हैं जिन्हें उसने किसी स्त्री के साथ न केवल शराब पीते बल्कि और भी बहुत कुछ करते देखा था। साथ ही अपनी तथा सरला की ओर लम्पट नज़रों से घूर-घूर कर गन्दी गज़लों को गाते भी।

शान्ति हृदय पर हाथ रखकर नीचे बैठ गई, परन्तु जन्म-जन्मान्तरों से चले आ रहे सम्बन्धों को तोड़ना और बिछुड़ों को मिलाना भला मनुष्य के बस में है ? वह सब्र का घूंट पी गई।

इसके पश्चात प्रेम ने शान्ति के साथ जो व्यवहार किया, बेशक उसमें कुछ सीमा तक प्यार की एक झलक भी थी, परन्तु शान्ति के लिए वह सब कुछ अत्याचार था, घोर अत्याचार। पहली भेंट ने उसके हृदय में पति के प्रति घृणा के भावों को जन्म दे दिया। उसने जिस प्रकार और सब कुछ सहन किया था, उसी प्रकार अपने शराबी और दुराचारी पति का सहयोग भी सहन कर लिया, परन्तु अपने हृदय की बात कि उसने पहले उसे किसी और रूप में देखा था, उसने उसे न बताई। जिस पुरुष के साथ उसने जीवन काटना था, उससे ऐसी कोई बात पूछना ठीक न समझा।

परन्तु प्रेम शान्ति को न पहचान पाया। पिछले कुछ दिनों से उसका ध्यान किसी दूसरी ओर लगा हुआ था। कुछ दिनों से जब वह सीढ़ियां उतरकर नीचे रह रहे किराएदार के दरवाजे के आगे से होकर निकलता तो उसका मन बेकाबू हो जाता और उसके भीतर मादकता की ज्वाला-सी जलने लगती थी।

वह जितनी वार भी वहां से गुजरता, उसकी निगाह हमेशा शंभूनाथ

के द्वार पर टिकी रहती, और खास करके जब कभी सुशीला की तिरछी नज़र उसपर पड़ जाती तो वह घायल हो जाता था। इस नज़र का शिकार हो वह कई बार काम-बेकाम घर में आता-जाता रहता था।

विवाह के अवसर पर जब अन्य लड़कियों के समान सुशीला का भी इस घरमें बे-रोक-टोक आना-जाना हो गया था तो प्रेम का मन बिलकुल ही कामुकता से व्याकुल हो गया। उसकी दृष्टि हमेशा सुशीला का पीछा करती और मस्तिष्क तरह-तरह की योजनाएं बनाता। यही कारण था कि सुहाग-रात की पहली भेंट के अवसर पर भी प्रेम अपने-आपे में न था।

१७

मोहन को कलकत्ता जाना था, इसलिए शान्ति को पहले फेरे के पश्चात् उसने ससुराल में ही रहने दिया और स्वयं सपरिवार कलकत्ता जाने की तैयारी करने लगा। शान्ति ने अपनी भाभी के आगे भेद न खोला, परन्तु सरला ने स्वयं ही प्रेम को पहचान लिया था, क्योंकि दोनों ने एक ही समय पर उसे इकट्ठे देखा था। फिर भी शान्ति ने सरला से प्रार्थना की कि वह किसी के आगे इस भेद को न खोले, समय आने पर अपने-आप देखा जाएगा।

सरला और मोहन को इस घटना से बड़ा दुःख हुआ। मोहन शान्ति के आगे बड़ा लज्जित था क्योंकि यह उसकी पसन्द का परिणाम था, परन्तु अब हो क्या सकता था—बिना ज़बान को ताला लगाने के अलावा। इस बारे में प्रेम से कुछ कहना-सुनना भी उचित नहीं था क्योंकि खतरे का कारण था।

विवाह के पश्चात् प्रेम ने जमना बाई के मकान पर जाना बहुत कम कर दिया। इसके कई कारण थे। सबसे बड़ा कारण तो यह था कि प्रेम के पास आजकल कुछ न था और जो कुछ था विवाह ने निचोड़ लिया। इस तरह वह ऐसी दशा में जमना बाई के पास कैसे जा सकता था—खासकर जबकि उसने जमना बाई को एक कीमती हार बनवा देने का वचन दे रखा था। जब तक वह वचन पूरा न हो जाए, तब तक उस ओर देखना भी खतरे से खाली न था। इसके अतिरिक्त जमना बाई एक और बात पर भी उससे नाराज़ थी, वह चाहती थी कि पिछली बरसात की तरह, इस बार भी प्रेम उसे पहाड़ पर ले जाता—क्योंकि इस तरह वह प्रेम को अच्छी तरह लूट सकती थी—परन्तु प्रेम ने उसकी इस इच्छा की अवहेलना कर दी। विवाह के पश्चात् प्रेम के दिन और रातें तो नई पत्नी के चाव में अच्छी तर कट गईं, परन्तु फिर धीरे-धीरे उसका मन उस ओर से हटने लगा—खास करके निचले किराए-दार की साली की ओर।

दूसरी ओर उसको काम-धन्धे की चिन्ता खाए जा रही थी। नये मुनीम की कृपा से दुकान का काम दिन प्रति दिन अवनति की ओर जा रहा था और बैंकों के कई पहाड़ के समान भारी भुगतान सिर पर बोझ होते जाते थे। साथ ही बाज़ार का ऋण भी इतना बढ़ गया था कि दुकान पर बैठना तो एक ओर, बाज़ार में से गुज़रना भी उसके लिए कठिन हो गया। वह बार-बार सोचता कि आखिर यह भेद कब तक छिपा रहेगा। मां को यदि इस बात का पता चल ही जाएगा, विशेष कर मकान बिकने का और घर गिरवी रखे जाने की तो ढोल की पोल खुल ही जाएगी।

इससे बड़ी उसे एक और घबराहट थी और वह भी शान्ति के बारे। शान्ति के इन कुछ दिनों के सम्पर्क से वह तंग आ चुका था। शान्ति अनुपम सुन्दरी थी, इतनी सुन्दर कि हज़ारों में से कोई एक ही ऐसी होती होगी। परन्तु प्रेम उसकी सुन्दरता को जिस सांचे में ढालना चाहता था, उस सांचे में वह ढलने को तैयार न थी। प्रेम हर समय उसे परियों के देश की रानी के रूप में देखना चाहता था, तरह-तरह के फैशनों से लदी हुई, परन्तु शान्ति चाहती थी सादा जीवन। कई बार

दोनों की आपस में कहा-सुनी भी हो जाती थी। अपनी इच्छाओं का खून करके, यथा चलते शान्ति अपने पति को प्रसन्न रखने के लिए सब कुछ करती। वह कभी-कभी पति का कहना मान, कुछ बनावट और शृंगार भी कर लेती, परन्तु उसका भोला, निष्कपट और सदा गुलाब की तरह प्रकृति की गोद में खिलने वाला चेहरा, अपनी वास्तविकता को नहीं छिपा पाता था।

इसलिए प्रेम कभी भी उससे जी भर खुश नहीं हुआ था। अन्त में उसके हृदय का तूफान फिर दूसरी ओर जाने लगा। जिन अदाओं और सदाओं से प्रेम का मन भर सकता था, वह सब शान्ति के पास नहीं थी और जो सुन्दरता शान्ति के पास थी उसको पहचानना प्रेम के बस की बात न थी। वह बाजारी पुरुष था और वह देवलोक की एक देवी। इसीलिए धीरे-धीरे दोनों के हृदय एक-दूसरे से दूर होते जा रहे थे।

१८

"इकट्ठे तीन भुगतान और वे भी एक ही तारीख के। मोह भगवान ! इस बार तो तेरे बचाए ही इज्जत बच सकती है।"

दोपहर को धूप में घूमता-फिरता प्रेम दुकान पर पहुंचा। मुनीम को यह कहकर कि कोई पूछे तो कह देना कहीं काम से गए हैं—वह दुकान के पिछले भाग में छिपकर जा बैठा। अभी उसने कोट को उतारकर लटकाया ही था कि हीरासिंह ने बैंक की तीनों हुण्डियां उसके सामने लाकर रख दीं।

हुण्डियों को उलट-पलटकर उसने उनके भुगतान की तारीख देखी। तीनों की एक ही भुगतान की तारीख थी और वह भी इस मास के अन्त में, यह देखकर उसके माथे पर पसीना आ गया। इसी घबराहट में उसके मुंह से उपरोक्त शब्द निकले। उसने मुनीम से पिछली आमदनी के रुपये मांगे, क्योंकि कई दिनों से वह दुकान पर नहीं आया था। मुनीम ने रुपयों वाली संदूकची उसके आगे लाकर रख दी। संदूकची को खाली कर प्रेम ने रुपये गिने। परन्तु यह धन उसको इ

इतना कम निकला कि उसका होना न होना एक बराबर
ों पर जीभ फेरते हुए उसने मुनीम से कहा, "और आज की ?"
पेश की गई।
हूं! कुल साढ़े पचपन रुपये ? थोक मनियारी की इतनी बड़ी
और इतनों दिनों की कुल आमदनी साढ़े—पचपन रुपये ?"
र्य से हीरासिंह की ओर देखकर वह बोला। मुनीम हिचकिचाते
बोला, "लालाजी ! माल तो सारा खतम हुआ पड़ा है। व्यापारी
र लौट जाते हैं, सनलाईट की पांच पेटियों के लिए अभी-अभी
ग्राहक आया था। पांच गुर्स रीलों को भी चाहता था, परन्तु बैंक
ले माल ही नहीं उठाने देते। दिल्ली का चालान भी भुगतान न हो
ने के कारण रुका पड़ा है। फिर बताओ आमदनी काहे से हो ? यह
ी कोई परचून का ग्राहक आ जाता है नहीं तो......।"

बीच में ही प्रेम बात को काटकर बोला, "बैंक का माल रुकने का
क्या कारण है ?"

"उनकी पिछली हुण्डी का रिमाईंडर आया हुआ है, शायद उनका
पिछला भुगतान न हो पाने के......।"

प्रेम ने कोई जवाब न दिया। चिन्ताओं पर चिन्ताएं कि बैंक वाले
पहले एक दिन की छूट देते थे, अब एक दिन का भी विश्वास नहीं
करते।

"सरदार गोपालसिंह का लड़का यह दे गया था।" कहते हुए
हीरासिंह ने एक लिफाफा उसे दिया। प्रेम ने लिफाफा खोलकर पढ़ा।
उसमें लिखा था, "प्रिय प्रेम जी। कई दिनों से दर्शन नहीं हुए। कृपा
करके आज शाम के आठ बजे आवश्य मिलना। एक बहुत ज़रूरी काम
है।"

अपने मित्र का पत्र पढ़कर थोड़ी देर के लिए उसकी सभी चिन्ताएं
दूर हो गईं और उसके चेहरे पर प्रसन्नता की एक झलक उभर आई
इसके साथ ही किसी सुन्दरी का मतवाला चेहरा उसकी आंखों के आ
घूमने लगा, जमना बाई का नहीं, किसी और का। वह उठा और बाज़
वालों की आंख बचा कर एक ओर को चल पड़ा। वह चला जा र
था और आज के कार्यों का मन ही मन हिसाब लगाता जा रहा था

पहले सट्टाबाजार, इसके पश्चात घर जाकर भोजन करना और फिर गोपालसिंह की दुकान। जमना बाई के पास भी जाने का उसका विचार था, परन्तु अफसोस! मुसीबतों ने उधर के सारे रास्ते बन्द कर दिए थे। उसको पश्चाताप था कि "मिस जमना बाई के पास जाना मैंने क्यों छोड़ दिया। उसकी एक-दो साधारण मांगें किसी प्रकार पूरी कर देता तो शायद वह मेरे पर कृपा कर अपना सारी धन-दौलत मेरे को सौंप कर अपना वचन निभाती। आह! कितनी बड़ी मूर्खता की है मैंने, परन्तु अभी भी बिगरे बेरो का क्या बिगड़ा है? वह भले ही मेरे से कितनी नाराज हो, मेरे एक बार सामने जाने पर वह तुरन्त मान जाएगी, क्योंकि वह मेरे से सच्चा प्रेम करती है। प्रेम ही नहीं वह तो मेरे पर जान देती है। भगवान की कृपा से आज यदि सट्टे में मनचाहा हो जाए तो सारे कार्य सुलझ सकते हैं। कल जो इधर-उधर से इकट्ठा कर और उधार लेकर साढ़े-सात का सट्टा खेला था, यदि सारे का सारा निकल आए तो वारे-न्यारे हो जाए। हुण्डियों का भुगतान और जमना बाई का बताया काम पूरा कर देने पर भी कुछ न कुछ बच जाएगा। साढ़े सात सौ का कितना बना? तीन सौ का तो लगाया था नम्बर और साढ़े-चार सौ का दड़ा। दड़े यदि दोनों ही ठीक पड़ जाए तो फिर मुझे कितने रुपये मिलेंगे? नम्बर वाले तीन सौ के बन गए, तीन-ढाई तीस सौ, तीन हजार। और दड़े के साढ़े-चार सौ के बन जाएंगे—साढ़े-चार सौ को सौ से गुणा किया तो बन गए पैंतालीस और तीन अड़तालीस। अड़तालीस हजार में दस प्रतिशत वें कमिशन काट लेंगे—अड़तालीस सौ। शेष बचे तैंतालीस हजार के लगभग। अगर डूबी हुई रकम यदि सारी नहीं तो आधी भी निकल आए तो भी बीस-पच्चीस हजार कहीं नहीं गए। वाह! एकदम जब इतनी दौलत मेरी जेब में आ जाएगी तो सब कुछ साफ हो जाएगा। सारे के सारे सौ-सौ के नोट ही लूंगा, छोटे नोटों को कहां सम्भालता फिरूंगा। इसके साथ ही यदि जमना बाई का माल भी हाथ लग गया, फिर तो मैं अमृतसर के लखपतियों में गिना जाऊंगा।

उपरोक्त बातें सोचता हुआ वह चला जा रहा था और ज्यों-ज्यों प्राप्त होनेवाले धन का वह हिसाब-किताब जोड़ता, त्यों ...

चाल तेज़ होती जाती थी। उसके विचारों की लड़ी अभी अधूरी ही थी कि सट्टे की दुकान आ गई। ग्राहकों की काफी भीड़ थी। कोई लिखा रहा था और कोई-कोई विरला भाग्यवान गिनवा भी रहा था।

प्रेम ने धड़कते हृदय से अपनी जेब में से पर्चे निकाले और एक सट्टेबाज़ के पास खड़ा होकर पूछने लगा, "क्यों जी, क्या निकला है ?"

"छक्का, छमासी।" उसके मुंह से सुनते ही प्रेम के होश उड़ गए। उसके सभी हवाई-किले देखते ही देखते ढह गए। दो-तीन आदमियों को धकेल कर आगे बढ़कर उसने पर्चे साहूकार को दिए। देख-दाखकर साहूकार ने पैंतालीस रुपये प्रेम को थमाकर पर्चों को एक ओर रख दिया। इन सब में से केवल पांच रुपये का छक्का लगा हुआ था, जिसके बने पचास रुपये और बीच में से पांच गए कमीशन के और शेष बचे पैंतालीस।

साढ़े-सात सौ के बदले नहीं, पैंतालीस हज़ार के बदले केवल पैंतालीस रुपये लेकर प्रेम निराश होकर वापिस लौट पड़ा। उसके लिए पांव उठा-कर चलना कठिन हो गया था। अन्त में गिरता सम्भलता उगाही के लिए चला, परन्तु पता नहीं चलते समय वह किस मनहूस का मुंह देख-कर आया था कि हर ओर से निराशा ही मिली। एक-दो से तो लड़ाई-झगड़े तक की नौबत आ गई थी।

इसी प्रकार घूमते-फिरते शाम हो आई। प्रेम की इस समय दशा बड़ी ही दयनीय थी। हुण्डियों का भुगतान, चालानों की आदायगी और ऐसी ही अन्य समस्याएं भयानक रूप धारण कर उसके सामने घूमने लगीं। वह सोचता जा रहा था—'क्या होगा ? बेड़ा पार कैसे उतरेगा ? एक मास के भीतर यदि आठ हज़ार रुपया न जुटा पाया तो बैंक वाले दुकान की डुगडुगी बजा देंगे। परन्तु इतना रुपया कहां से आएगा ? जमना बाई से बहुत कुछ मिलने की आशा है, परन्तु न जाने कब तक ?'

अन्त में जहां प्रेम की नज़र जाकर टिकी, वह थी घर वाली इमारत, जिसका अभी आधा भाग शेष था। उसके हृदय को तनिक सहारा मिला। वह सोचने लगा—कुछ भी हो जाए, अभी इतना सहारा तो है ही जिससे समय को तनिक और धकेला जा सकता है। इसको छोड़, एक बार उसका ध्यान शान्ति के गहनों की ओर भी गया, परन्तु अभी

इसका समय नही था। अभी केवल मास-डेढ़ मास ही तो हुआ था इन्हें बनवाए। परन्तु इतना जानते हुए भी उसका ध्यान शान्ति की एक वस्तु की ओर से न हट सका। वही रानी-हार, जिसे मां नारायणी ने बड़ी खुशी के साथ बनवाया था और जो अब शान्ति की छाती पर चम-चम कर रहा था।

वह सोचने लगा, यदि एक बार यह हार मिस जमना के गले में जा पड़े, तो जरूर ही वह इतनी खुश हो जाएगी कि तुरन्त ही अपने सारे आभूषण और नकदी को मेरे चरणों में डाल देगी। उसको यह व्यापार और सभी व्यापारों से सरल और लाभदायक लगा—सट्टे से भी अधिक लाभदायक।

वह घर के दरवाजे पर जा पहुंचा। उसने तुरन्त अपनी भाव-मुद्राओं को ऐसे बदल लिया जैसे उसे किसी प्रकार का दुःख या चिन्ता नही थी। अपने चेहरे पर मुस्कराहट ले आया। जाते ही शान्ति से किस तरह बातचीत करनी चाहिए, जिससे उसपर जादू चल सके। उसके लिए उसने आपको तैयार कर लिया। वह जानता था कि स्त्री से गहना लेना, एक शेरनी से मांस छीनने के समान होता है। वह सीढ़ियां चढने लगा। इस समय शाम के साढ़े छः बज चुके थे।

१९

शान्ति को ससुराल में आए बीस ही दिन हुए थे कि मोहन और सरला उससे मिलकर कलकत्ता चले गए थे। अपनी सहेली रूपी भाभी के इतनी दूर चले जाने पर शान्ति बहुत उदास हो जाती, यदि उसे एक नई सहेली न मिलती। यह थी उसके किरायदार बाबू शम्भूनाथ की साली सुशीला।

शान्ति की इस नई सहेली को हम बहुत पहले से जानते हैं। केवल इतना जानना ही अधिक होगा कि सुशीला के विवाह का दिन ज्यों-ज्यों समीप आ रहा था, उसका चंचल मन कुछ शीतल होता जाता था। परन्तु जब से उसकी शान्ति से मित्रता हुई है, तब से उसकी परेशा

काफी हद तक दूर हो गई है।

आजकल सुशील का अधिकतर समय शान्ति के पास ही बीतता है। भले ही दोनों के गुणों, कर्मों और स्वभावों में बहुत बड़ा अन्तर है, परन्तु फिर भी दोनों एक-दूसरे को चाहती हैं। शान्ति जितनी गम्भीर है, सुशीला उतनी ही चंचल। शान्ति का शरीर पतला और सुकोमल है, परन्तु सुशीला का शरीर भरा हुआ। सुशीला की शक्ल-सूरत अच्छी, नक्श तीखे, चेहरा गोल और आंखें मोटी हैं, परन्तु इन सबके होते हुए भी शान्ति और सुशीला की सुन्दरता में धरती और आसमान का अन्तर है। दोनों को प्रकृति ने सुन्दरता की देन इतनी दी है कि कोई भी देखकर नहीं बता सकता कि दोनों में से कम और अधिक सुन्दर कौन है, परन्तु पारखी-आंखें फिर भी जान जाती हैं कि ठंडी किरणों को छोड़ रहा चन्द्रमा, और ताप भरी और तेज़ किरणें को फेंकने वाला सूर्य—दोनों ही अपने-अपने गुणों के आधार पर, ज़रूर कोई अन्तर रखते हैं। सुशीला के अंग-अंग में मादकता-भरी चंचलता है, परन्तु शान्ति का शरीर सुकोमलता, सरलता और मधुरता में ढला हुआ है। या ऐसे कह सकते हैं कि एक ओर शीशे की सुराही में रंगीन शराब छलक रही है, और दूसरी ओर एक गम्भीर, ठंडी और मनमोहक नदी अठखेलियां करती हुई मधुर संगीत का रस लुटाती हुई बह रही है।

आज दोपहर से ही अपने तीन-मंज़िले चौबारे पर बैठी शान्ति इसी सहेली से मन बहला रही है। सुशीला के यहां बहुत आने का, विशेषकर उस समय जब प्रेम के घर आने का समय होता है, एक और भी कारण था और यह कि उसे प्रेम का गाना और बाजा बजाना अधिक भाता है। प्रेम की रसीली बातों से उसे और भी सुख मिलता है। प्रेम की आंखों को भी शान्ति की बजाय सुशीला को देखकर अधिक तृप्ति मिलती है।

इस समय दोनों आमने-सामने बैठी हैं। शान्ति के हाथ में 'चन्दन-दाड़ी' नाम की कविताओं की पुस्तक है, जिसे पढ़कर वह अपनी सहेली को सुना रही है। 'राधा-सन्देश' कविता सुनकर सुशीला के हृदय पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ा, और वह पूछने लगी, "बहनजी, यह कविता तो ऐसे लगती है जैसे स्वयं राधा ने ही कहीं एकान्त में बैठकर कृष्ण महाराज

को पत्र लिखा हो। और बहनजी! यह जो सखियां कृष्णा की पत्नियां थी?"

शान्ति हंसती हुई बोली, "पगली! पत्नियां नहीं प्रेमिकाएं थीं।

"प्रेमिकाएं?" सुशीला ने अचम्भे में पूछा, "इतने बड़े अवतारों को भी प्रेमिकाएं होती हैं?"

"होतीं क्यों नहीं। कृष्ण जैसे ऊंचे, सच्चे और विशाल हृदय वाले की प्रेमिका बनना कौन नहीं चाहती होगी?"

"परन्तु बेगानों के साथ……"

उसकी बात को काटकर शान्ति बोली, "बेगाने और अपने उन मृत्युलोक के लोगों के लिए होते हैं जिनकी आत्माएं काली और मैली हों। किन्तु जिनकी आत्मा ममता और स्नेह-भरी हो, उनके लिए कोई भी बेगाना नहीं होता।"

"परन्तु पाप नहीं होता?"

"पाप! जहां खोटापन हो, जहां संसारी इच्छाएं और स्वार्थ हों, वहां पाप के अतिरिक्त और कुछ नहीं होता। परन्तु जहां निष्काम प्रेम हो, जिसमें नाम-मात्र को भी वासना न हो, वहां पाप पहुंच भी नहीं सकता। बल्कि त्याग ही त्याग होता है और यही निष्काम प्रेम आदमी को देवता बना देता है।" कहते-कहते शान्ति को कोई पुरानी घटना याद आ गई और उसका हृदय हिलोरें लेने लगा।

सुशीला बोली, "तुम्हारे विचार में ब्रज की ग्वालनों का कृष्ण से संसारी प्रेम नहीं था?"

"बिलकुल नहीं! उनका प्रेम पवित्र था, श्रद्धापूर्ण और निष्काम प्रेम।"

"मैं तो इसे नहीं मान सकती कि एक स्त्री का पुरुष से प्रेम हो और फिर……।"

"तू इसलिए नहीं मान सकती क्योंकि तेरे भीतर अभी वह भाव ही उत्पन्न नहीं हुए।"

सुशीला की समझ में यह बात न आई। उसके विचार में यह बात अनहोनी थी। वह सच्चे प्रेम के संसार से अनभिज्ञ थी। जिस वातावरण में पली थी, उसका ऐसा ही प्रभाव हो सकता…।

बातें करते-करते शान्ति का चेहरा गम्भीर हो उठा। देखकर सुशीला पूछने लगी, "तो बहनजी ! आपको भी ऐसे प्रेम का अनुभाव है ?"

इस प्रश्न का जवाब सीधा न देकर शान्ति बोली, "हर एक के लिए इसका अनुभव जरूरी नहीं। यह तो मनुष्य के जीवन में एक घटना के समान किसी-किसी के साथ ही घटता है।"

"मैंने सोचा था शायद विवाह के समान यह भी हरएक के लिए ज़रूरी है।"

शान्ति ने मज़ाक में कहा, "तुझे तो हर समय विवाह के सपने ही आते रहते हैं। समझ ले विवाह हुआ कि हुआ। बस गिनती के दिन रह गए हैं। अरी मुझे तो याद ही नहीं रहा। उस दिन देवकी बहन ने बताया था कि शीला का विवाह समीप है।"

सुशीला बोली, "सपने मुझे नहीं आते। मेरा भाग्य तेरी तरह नहीं जो विवाह के सपने देखूं।"

"क्या कहा है ? भाग्य अच्छा नहीं ? क्यों क्या हुआ है तेरे भाग्य को ?"

"होना छोड़, लूटे ही गए हैं।"

चिन्तित हो शान्ति बोली, "क्यों, किस बात से ?" सुशीला चुप रही।

शान्ति ने फिर पूछा, "कोई ऐसी बात है जो तू नहीं बताना चाहती तो मैं नहीं पूछती।"

यह सोचकर कि शायद शान्ति नाराज़ हो गई है, वह प्यार से उसके गले में अपनी बांह डालकर बोली, "ले तेरे से छुपाऊंगी तो और किसको बताऊंगी।"

"फिर बताती क्यों नहीं ?"

"क्या बताऊं बहन ! मेरे हृदय को हर समय एक चिन्ता खाए जा रही है।"

"परन्तु कौन-सी ?"

"फिर कभी बताऊंगी।"

"फिर वही बात ! जा मैं तेरे साथ नहीं बोलूंगी।"

"अच्छा तो ले सुन, तू तो इतनी-सी बात पर नाराज हो जाती है। बहन ! लज्जा आती है।"

"मेरे से ? मैं कोई तेरा पति तो नहीं।"

"कभी तू ही मेरा पति होती तो तब भी मुझे कुछ कहने में संकोच होता।"

"हैं, ऐसी कोई बात है क्या ?"

"मेरे भाग्य में लगता है सुख नहीं।"

"बात भी बता अब, कि दो घन्टे तक नखरे ही करती रहेगी।"

"इस विवाह से तो मैं अविवाहित रहती तो अच्छा था।"

"मरी, कुछ बताएगी भी।"

"तुझे नहीं पता, मुझे बहन ने कितने लाड़-प्यार से पाला है। बच्ची थी कि मां मर गई, परन्तु मेरी बहन ने मा का दुःख एक दिन भी अनुभव नहीं होने दिया। बत्तीसी में से जो कुछ निकाला, उसने पूरा किया। घर में गरीबी थी, परन्तु मेरा उसने कामी पाव भी मैला नहीं होने दिया। अच्छे से अच्छा खाना और अच्छे से अच्छा पहनना। सच बहन, उसने मुझे फूलों से तोल-तोलकर इतना बड़ा किया है। मैं बड़ी आशाएं लिए बैठी थी, परन्तु लगता है भगवान ने मेरे भाग्य में और सुख नहीं लिखा। आजकल के समय का जिसे पता ही न हो, न जिसको खाने-पीने का शौक हो और न ही पहनने का। जो कमाए सब लोगों में बांट दे और स्वयं मुट्ठी-भर चने चाबकर ही गुजारा कर ले, ऐसा पुरुष के साथ बंधकर मेरी-जैसी लड़की कितना सुखी रह सकती है, तू ही बता।"

चिन्तित होकर शान्ति बोली, "यह तो सचमुच ही दुःख की बात है, परन्तु तेरे जीजाजी ने देखा-भाला नहीं था, उससे रिश्ता करने से पूर्व ?"

"देखना छोड़, वह तो मेरे जीजाजी का बड़ा पुराना मित्र है। पहले लाहौर में सरकारी अस्पताल में डाक्टर था।"

"फिर जान-बूझकर तेरे जीजाजी ने ऐसा क्यों किया ?"

"उसकी इच्छा, या फिर मेरा भाग्य।"

"और तेरे से किसीने न पूछा ?"

"ऐसा कभी हो सकता है ?"

"परन्तु तेरे जीजाजी ने उसमें क्या देखा ?"

"देखा रुपया-पैसा, और क्या ?"

"अच्छा चल इतना तो शुक्र कर, कोई ऐवी-शरावी नहीं।"

"ऐवी न सही, परन्तु मैं संन्यासिन वनने के लिए तो पैदा नहीं हुई।"

"अपने-आप जाकर ठीक कर लेगी।"

"ठीक क्या होना है उसने। उस दिन एक आदमी वता रहा था जीजाजी को—मैं छिपकर सुन रही थी—कि पहले तो फिर भी कुछ था अव तो विलकुल संन्यासी वन गया है। सरकारी काम को छोड़, और किसी काम से उसे लगाव ही नहीं। वस, खद्दर की धोती, खद्दर का कुर्ता और सिर पर किश्तीनुमा दो-अंगुल की टोपी पहने फिरता है। मुझे तो ऐसे लगता है कि वह संन्यासी हो जाएगा। चाहे आज हो या दस दिन वाद।"

"कहां का रहनेवाला है ?"

"घर, ज़िला गुजारांवाला में है और नौकरी करता है सरकारी कार्यालय में, उधर कहीं कांगड़ा जिला में। पता नहीं क्या नाम है उस स्थान का, कोई अच्छा-सा है।"

"होगा कोई ऐसा ही ठरकी'। यह सोचकर शान्ति वोली, "वात सच-मुच ही दुःख की है, परन्तु शीला! मेरे से तो फिर भी तेरा भाग्य हज़ार गुना अच्छा है। जव तेरा मन अधिक दुःखी होने लगे तुम मे वारे में सोच लिया करना।"

"क्या कहती है ?" तेजी से सुशीला वोली, "तेरा भाग्य ? यदि ते जैसा मेरा भाग्य होता तो देवी माता की सौगन्ध ज़मीन पर पांव लगते मेरे। ऐसा चांद के समान पति तो किसी वड़ी भाग्यवान मिलता है।"

गहरी सांस खींचकर शान्ति वोली, "चांद से भी वढ़कर यदि ग्रहण न लगा होता तव।"

उसके मन के भावों को समझकर सुशीला वोली, "वहन ! मैं डर के मारे तेरे से पूछती ही नहीं थी, कई वार पूछने को मन

था। जीजाजी (प्रेम) के बारे में तरह-तरह की बातें उड़ाई जा रही हैं, भगवान करे सब झूठी हों।"

आरम्भ में ही पति के बारे में शान्ति के हृदय में जो शक पैदा हो गया था, उसको मिटाने के लिए हर समय उसकी नज़र गुप्तचर की तरह प्रेम के पीछे लगी रहती थी। उसने कई बार चोरी-छिपे पति के मन की बात जानने की कोशिशें भी की थी, परन्तु प्रेम किसी कच्चे उस्ताद का शिष्य नहीं था। फिर भी शान्ति इतना तो जान ही गई कि आधी-आधी रात तक घर से बाहर रहनेवाला, सारा-सारा दिन दुकान से अनुपस्थित रहनेवाला और हर समय बोतल की सवारी करनेवाला पति कितना पवित्र हो सकता है। हां, व्यापार में घाटा पड़ने के बारे में प्रेम ने कई बार उसे बताया था। यह सभी चिन्ताएं शान्ति को घुन के समान खाए जा रही थीं। आज यह जानकर कि सुशीला को उसके पति के बारे में बहुत कुछ पता है, तो वह जवाब में बड़े उतावलेपन से बोली, "कौन-सी बातें लोग करते-फिरते हैं? मैंने तो कभी कोई बात नहीं सुनी उनके बारे में।"

सुशीला यह सोचकर कि शायद शान्ति ने उसकी बात का बुरा मान लिया है, तो वह अपने भावों को बदलते हुए बोली, "तो फिर और कौन-सा उसे ग्रहण लगा हुआ है?"

"ग्रहण! यही शराब की बुरी आदत जो है। अच्छा बता तूने क्या सुना है?"

"खैर, कुछ भी हो, हम दोनों की बातों का विषय एक ही है।" ऐसा सोचकर सुशीला बेधड़क होकर बोली, "मैंने तो सुना है कोई और रखी हुई है उसने।"

यह सुनते ही शान्ति की आंखों के सामने फिर वही दृश्य घूमने लगा, वही धर्मशाला की सामनेवाली कोठी वाला दृश्य। इस बात को और स्पष्ट तथा विस्तार में जानने के भाव से वह बोली, 'मैंने भी किसी से सुना था, परन्तु विश्वास नहीं हुआ था। और शीलो! तूने किससे सुना है?"

"जीजाजी (शम्भूनाथ) एक दिन मेरी बहन से बातें कर रहे थे कि जब से प्रेम के पिता का देहावसान हुआ है, वह बिलकुल ही आवारा

लिया था

गया है। रामबाग की एक, पता नहीं कौन-सा नाम
होंने, स्त्री के साथ रहता है।"

दुःखी भाव से शान्ति बोली, "तेरे जीजाजी को कैसे पता चला
ा ?"

"जीजाजी कहते थे कि उसको साथ ले वह दूसरे शहरों की सैर भी उसे कराता रहता है। जीजाजी प्रतिदिन जो लाहौर जाते हैं। पिछली ग्रीष्म ऋतु की बात है, वह कहते थे, 'एक बार मैं साढ़े-आठ की गाड़ी से पिछड़ जाने पर साढ़े-दस की गाड़ी पर चढ़ा। अमृतसर के स्टेशन पर उतरा तो वह उसको साथ लिए पठानकोट वाले प्लेटफार्म पर टहल रहा था।' जीजाजी ने पूछा, "बाबूजी! कहां जा रहे हो?' तो बोला, 'बम्बई जा रहा हूं।' जीजाजी घर आकर मेरी बहन को बताने लगे, 'मैं बड़ा हैरान हुआ कि बम्बई मेल को तो गए उस समय डेढ़-घण्टा हो गया था और वह कहता था बम्बई जा रहा हूं। साथ में वह खड़ा भी पठानकोट वाले प्लेट फार्म पर था।' जीजाजी ने फिर कहा कि 'वह ज़रूर ही उस रण्डी के साथ किसी पहाड़ पर जा रहा होगा।' क्योंकि सामान से भी जीजाजी को ऐसा ही लगा। भला बम्बई में गर्म वस्त्रों की क्या आवश्यकता पड़ती है और वह भी ग्रीष्मकाल में उस कंजरी का नाम जमना बाई है, मुझे याद हो आया है।"

'पिछली गर्मियां', 'उसके साथ' और 'पहाड़ की सैर' इन सब बा को मिलाकर, शान्ति के हृदय में जो बहुत पहले एक उलझन पैदा हो थी, वह सुलझ गई। वह बोली, "यह किन दिनों की बात है?"

"पिछली बरसात की।"

"और शीलो! क्या तुझे कुछ याद है कि यह तब कितना बिताकर आए थे?"

"याद क्यों नहीं? सारा मोहल्ला उन दिनों इन्हीं की चर्चा था। लोग मुंह बना-बनाकर कहते थे—देखोजी लायक बेटे नामे। बाप को मौत के मुंह में धकेल कर आप लाट साहब चला गया है। बाप बेचारा बेटा-बेटा कहते हुए चल बसा जी तब लौटे जब बेचारे की हड्डियां श्मशान-भूमि में पड़ी थीं ...स दिन लगाकर लौटे थे।"

सब कुछ साफ हो गया। पति के दुराचारी होने का शान्ति के हृदय में शेष कोई शक न रहा। उस समय जब धर्मशाला में सामने वाली कोठी में शान्ति ने प्रेम को किसी स्त्री के साथ शराब पीते देखा था, भले ही उस समय वह उस स्त्री का चेहरा नहीं देख पाई थी क्योंकि शान्ति की ओर उसकी पीठ थी, परन्तु अब शान्ति को पूरा विश्वास हो गया कि वह स्त्री जमना बाई ही थी, दूसरी कोई नहीं।

वह सुशीला से बोली, "तभी कह रही थी कि पति किसी भाग्यवान को मिलता है? यदि भाग्यवान होना इसीको कहते हैं, तो मैं कहती हूं भगवान तेरे को भी ऐसा ही भाग्य दे।"

"मेरे भाग्य से बहन, तेरा भाग्य फिर भी अच्छा है। सुन्दर और छैल-छबीला तो है, खाने-पहनने का शौक तो है, तेरी इच्छाएं तो पूरी करता है। रोज भांति-भांति के कपड़े, कभी इत्र, कभी पाउडर और कभी नई-नई फैशनों की चीजें तो आ जाती हैं।"

"आती हैं, परन्तु मेरे लिए नहीं—आलमारी के लिए।"

"तुम स्वयं उनका प्रयोग न करो तो उस बेचारे का इसमें क्या दोष। तभी तो तेरे काबू में नहीं आता। मेरे जैसी हो तो चार दिन में अपनी सुन्दरता का जादू कर ऐसा सीधा कर ले कि फिर कहीं दूसरी ओर देखने का नाम भी न ले। परन्तु तू तो सचमुच सन्तनी है। न तुझे खाने का शौक, न पहनने का, तेरी तरह कभी पति वश में रह सकता है?"

हंसते हुए शान्ति बोली, "यदि तेरे में इतना ही बल है तो फिर तू ही मेरे पर दया कर दे।"

"मैं तो मिण्टों में उसे तीर की तरह सीधा कर दूं परन्तु···।"

"पर यह तो बता, यदि तू इतनी ही बलवान है तो फिर अपने भाग्य पर क्यों रोती है? अपने मंगेतर की तुझे फिर इतनी चिन्ता क्यों खाए जा रही है?"

दुःखी हृदय से सुशीला बोली, "बहन तू नहीं जानती। अड़ियल से अड़ियल घोड़े को भी पुचकारकर और दाना देकर तांगे में जोत लेते हैं, परन्तु हवा में उड़नेवाले पंछी को पकड़ना किसी के भी बस में नहीं है?"

"इसका मतलब ?"

"इसका मतलब यह कि जिसे संसार और संसारी विषयों ने छुआ क नहीं, उसको विचारों की दुनिया से कौन लौटा सकता है। जिसके ाग्य में अढ़ाई आने का कुर्त्ता और एक टके की लंगोट ही हो, उस भागे को मेरे जैसी फूलों की रानी से क्या मतलब।"

मज़ाक करने की इच्छा से शान्ति बोली, "अच्छा शीला, फिर ऐसे रही मेरे आवारा को सुधारना तेरे ज़िम्मे और तेरे योगीराज को रास्ते पर लाना मेरे ज़ुम्मे।"

"ले फिर हुआ पक्का समझौता ?"

"हुआ।"

उपरोक्त वार्तालाप का अंतिम भाग बेशक मज़ाक में कहा गया था, परन्तु इससे दोनों के हृदयों को कुछ शान्ति अवश्य मिली। प्रकृति की लीला कितनी अद्भुत है। यह संसार वास्तव में एक बड़ी मेज़ है, जिसके चकोर छिद्रों में गोल चूलें और गोल छिद्रों में चकोर चूलें फंसी हुई हैं। ऐसी ही दशा इन दोनों सहेलियों के जीवन की है।

अभी उनकी बातचीत यहां तक ही पहुंची थी कि नीचे से जूतों की आवाज़ आई और इसके पीछे ही अपने मुर्झाए हुए चेहरे पर जबरदस्ती मुस्कराहट लाने की कोशिश करता हुआ प्रेम उनके सामने आ पहुंचा। परन्तु सुशीला को बैठी देख, उसकी वह नकली मुस्कराहट असली बन गई। उसका आना था कि सुशीला अपने कंधे मटकाती हुई और कमर को लचकीली बनाते हुए, अपने कंधों पर पड़ी चुनरी को सिर पर लेते हुए बोली, "अच्छा बहन! मैं अब जाती हूं, आज बहुत देर हो गई है बहन प्रतीक्षा में होगी और अब तुम्हें अकेले में बैठकर बातें करनी होंगी।"

उसकी चुनरी को खींचकर एक ओर फेंककर शान्ति बोली, "तनि और बैठ जा, तुम्हें खा तो नहीं लेंगे जो भागने लगी है।"

प्रेम बोला, "हे भगवान! इसको मेरी कमज़ोर पाचन शक्ति पचा सकती है?"

तीखे कटाक्षों से उसकी ओर देखकर सुशीला बैठती हुई बो "जिसको यह बर्फी की टुकड़ी नहीं पच सकी, वह और क्या पचाएगा

ग्रौर उसने शान्ति की ग्रोर देखा।

प्रेम को इस नजर ग्रौर इस ग्रनोखी ग्रदा मे दिए गए जवाब ने घायल कर दिया। वह मन ही मन सोचने लगा—'काश ! शान्ति के पास भी ऐसी ग्रदा ग्रौर नखरे होते।' वह कुछ कहने ही वाला था कि इससे पहले ही शान्ति बोल पड़ी, "खबरदार, यदि मेरी सहेली को कुछ कहा तो।"

प्रेम बोला, "देख तो सही, इसके ग्रग पारे की तरह थरक रहे हैं। एक मिनिट भी ग्राराम से बैठी है ? ग्रौर जबान इसकी ? हे भगवान ! यह तो बस बम्बे-एक्सप्रेस है, बन्दरी न हो तो।"

सुशीला बोली, "मेरे जैसी कोई बन्दरी तुझे मिलती तो ग्रपने तीखे नाखूनों से तुझे सीधा भी कर देती।"

यह कह ही रही थी कि शान्ति ने पीछे से उसकी पीठ पर चुटकी भर कर उसे चुप करा दिया। उसको डर था कि वह कहीं उसी समय कच्चा चिट्ठा न खोल दे।

. बेशक विवाह से पहले भी प्रेम ग्राते-जाते सुशीला को एक नजर भर कर देख लिया करता था, परन्तु विवाह के पश्चात जब से शान्ति ग्रौर सुशीला में मित्रता हुई है तब से उसका मन हर समय उसीकी ग्रोर खिचा रहता है, खासकर उसके मजाक ग्रौर छेड़खानी से तो प्रेम को बड़ा ही ग्रानन्द मिलता है। सुशीला को देखते ही उसका मन ग्रतृप्त ग्रौर ग्रधीर सा हो उठता था। उसको ऐसे लगता जैसे सुशील की नजर तेज छुरी बन, उसके हृदय में धंसती जा रही है। बेकाबू ग्रौर कमजोर दिलों की ग्रामतौर पर ऐसी हालत होती है। उनके शरीर की प्यास कभी ग्रौर कहीं नहीं बुझती।

सुशीला के सिर से चुनरी हट जाने पर प्रेम की नजर उसके सुईयों ग्रौर कलियों से सवारे गए बालों पर पड़ी, जिन्होंने सुशीला के चेहरे को भौंहों तक ढक रखा था। काले बादलों में से चमक रहे ग्राधे चांद ने ग्रौर तारों के समान चमक रही भूरी ग्रांखों ने, जिनकी पुतलियां बिजली की तेजी के समान इधर-उधर थिरक रही थीं, प्रेम को बिलकुल पागल बना दिया। सुशीला का व्यंग सुनकर प्रेम का हृदय धड़कने लगा। उसको ग्रपना संयम टूटता दिखाई देने लगा। शान्ति ने स्थिति को

सम्भालते हुए अपने पति से कहा, "माताजी, कितनी देर से नीचे खाने के लिए प्रतीक्षा कर रही हैं।"

प्रेम हंसते हुए बोला, "मुझे आए आधा घन्टा हो गया है। खाना खाने के पश्चात कितनी देर तक मां के पास बैठा भी रहा हूं, कहती थीं आज तबियत ठीक नहीं।"

"अच्छा, मैंने सोचा था अभी चले आ रहे हो।"

उसी समय नीचे से आवाज़ आई, "शीला ! नीचे आ। तेरी बहन बुला रही है।"

सुशीला अभी कुछ देर और बैठना चाहती थी, कई दिनों से वह और शान्ति प्रेम से बाजा सीखा करती थीं, आज भी उसकी इच्छा कुछ सीखने की थी, परन्तु बहन का संदेश आ जाने के कारण वह रुक न सकी।

"अच्छा जीजाजी, तुम्हें बन्दरी बनकर दिखाऊंगी।" कहते हुए वह सलीपरों से टप-टप करते सीढ़ियां उतर गई। वे दोनों पति-पत्नी अकेले रह गए।

और दिनों की उपेक्षा आज प्रेम ने अधिक प्यार जताने के लिए शान्ति को अपनी बाहों में भरते हुए कहा, "आज तो तुम बड़ी सुन्दर लग रही हो।" परन्तु उसका ध्यान सुशीला की ओर ही था।

शान्ति के लिए पति सहयोग के क्षण कभी-कभी ही आते थे। पति जब कभी भी गहरे प्यार के राग अलापने लगता था तब अक्सर वह नशे में चूर होता था, जिससे वह क्षण दुर्गंध और अभद्रता के कारण उसके लिए दुःखदाई हो जाते थे। ऐसी हालत में उसकी किसी भी प्रार्थना और शिक्षा का पति पर असर नहीं होता था। और यदि कभी वह सूफी की हालत में शान्ति के सामने आता भी था तो उस समय अक्सर वह क्रोध में होता था। परन्तु आज शान्ति को उसकी हालत और दिनों से कुछ उलट ही दिखाई दी अर्थात् वह नशे में न होते हुए भी प्यार के नशे में डूबा हुआ था।

शान्ति ने इस अवसर को भगवान का वरदान समझा और वह प्यार से बोली, "आज तो कुछ बांटना चाहिए।"

"क्यों ? इसलिए कि आज मैं पीकर नहीं आया ?"

"आप तो बिना पिए ही हो गए हैं।"

"मैं अब इस बुराई को छोड़ दूंगा।"

"कौन सी-बुराई को ?"

"इसी शराब को।"

"मैंने सोचा था किसी और बुराई को।"

"और कौन-सी ?"

"मुझे क्या मालूम, आपको ही मालूम होगा।"

प्रेम समझ गया कि शान्ति को उसकी करतूतों का पता चल गया है और वह जानता था कि आखिर पता तो लगेगा ही, परन्तु इतनी जल्दी वह मानने को तैयार न था।

वह भोलेपन में बोला, "ऐसा लगता है जैसे किसी ने तुम्हें झूठ कह दिया हो। मेरे को शराब को छोड़ और कोई बुरी आदत नहीं, वह भी इसलिए क्योंकि मुझे अक्सर जुकाम रहता है। बेशक जाकर मां से पूछ लें। छटांक-आधपाव कभी-कभी पी लेता हूं।"

पति की इन चालाकियों का शान्ति पर क्या असर हो सकता था। उसको पति पर बड़ा अफसोस था जिसे मन ही मन दबाकर वह धीरज से बोली,,,'और वह, जिसे पहाड़ों पर लिए फिरते से हो वह कौन है तुम्हारी ?"

प्रेम का रंग उड गया। परन्तु ढिठाई के साथ बोला, "क्या कहा है ? किसको लिए फिरता हूं पहाड़ों पर ?"

"मुझे क्या पता अपने मन से पूछो।"

"बिलकुल झूठ।"

"बिलकुल सच।"

"इसका प्रमाण।"

"जीवित प्रमाण चाहिए।"

"हां।"

"अच्छा, मैं आपके सामने अपनी एक सहेली की गवाह लाऊंगी।"

"कौन-सी सहेली।"

"एक नहीं दो सहेलियों की गवाही।"

"कौन-कौन सी ?"

"वही याद करो, जिन्हें धर्मशाला पहाड़ पर अपने सामनेवाली कोठी में देखा था। याद है जिनकी ओर घूर-घूरकर देखा करते थे? याद करो।"

इस प्रश्नोत्तर की लड़ाई में प्रेम मुंह के बल जा गिरा, उठकर भाग जाने की अपने में शक्ति न पा वह आंखों को नीचे किए हुए बोला, "तुझे···तुझे कैसे पता चला?"

"चाहे कैसे भी चला हो, परन्तु यह बताओ, यह सच है या झूठ?"

प्रेम ने कोई जवाब न दिया, जिसका अर्थ था अपने दोष को स्वीकार करना। थोड़ी देर रुककर शान्ति फिर बोली, "यदि उस समय तुम नशे में न होते तो मेरी दोनों सहेलियों की शकलें आपको भूल न जातीं।"

आज से वर्ष-सवा वर्ष पूर्व देखी गई दो शकलें इस समय फिर प्रेम की आंखों के आगे घूमने लगीं। उसको कुछ भ्रम-सा हुआ और उसने टकटकी लगाकर शान्ति के चेहरे को बड़े ध्यान से देखा।

'तो क्या तब मैंने इसी शान्ति और इसकी भाभी सरला को देखा था?' अभी वह इस बात का निर्णय ही ले रहा था कि शान्ति ने यह कहकर सारा मामला ही स्पष्ट कर दिया, "और वह तुम्हारी रखेल, जो नौकर से गिलास ले-लेकर ज़बरदस्ती तुम्हारे मुंह से लगाती थी, उसका क्या नाम था, जमना बाई? मैंने उसकी सूरत तो नहीं देखी थी, क्योंकि हमारी कोठी की ओर वह पीठ किए बैठती थी, परन्तु है तो बहुत सुन्दर।" कहते हुए शान्ति का शरीर क्रोध से कांपने लगा।

प्रेम ने सिर झुका लिया। शान्ति की ओर देखने की उसमें अब हिम्मत न थी। उसके भीतर से आवाज़ आई, 'तू विश्वासघाती है, तू चोर है, तेरा नाम प्रेम है परन्तु वास्तव में तू प्रेम का अनादर करनेवाला पापी और दुराचारी है।' इस भीतरी फटकार से उनका मन एक बार रो उठा। पश्चात्ताप और ग्लानि के ताप से उसका जमा हुआ रक्त पिघलने लगा, परन्तु मनुष्य का हृदय बड़ा अजीबो-गरीब है। यह कभी-कभी दुराचार की बीमारी से इतना रोगी बन जाता है कि धनवंतरी की पुड़िया भी उसपर असर नहीं करती। क्षण में ही किसी चंचल आंखों की ज़हरीली अदाओं ने उसके हृदय को पत्थर बना दिया। उसका पिघलता हुआ रक्त बर्फ के समान जम गया।

उसने एक बार फिर मन के तराजू पर दो सूरतों को तोला, परन्तु गलत पासग हमेशा कम को अधिक और अधिक को कम बताता है। वह फिर उस पाप की नदी के बहाव के साथ बहने लगा, जिसमें बहते हुए को किसीने क्षणभर के लिए पकड़कर रोकने की कोशिश की थी।

पति क्या जवाब देता है—इसी प्रतीक्षा में शान्ति एक-दो मिनिट बैठी रही, परन्तु जब उसकी ओर से कोई जवाब न मिला तो उसका हाथ पकड़कर बोली, "अभी भी कुछ नहीं बिगड़ा, जवानी में सभी से भूल होती है, यदि अब भी संभल जाओ तो मैं तुम्हारी सभी भूलों को भूल जाऊंगी।"

'एक दुराचारी पति के प्रति इतना स्नेह' देखकर प्रेम का मन पानी-पानी हो गया। उसने बड़ी नम्रता से पूछा, "सचमुच तू मेरे गुनाहों को क्षमा कर देगी ?"

"यदि भविष्य के लिए तौबा करो।"

"एक बार छोड़कर सौ बार···।"

"परन्तु क्या ?"

"जमना के साथ अब मेरा कोई रिश्ता नहीं, मैं केवल अपने एक उद्देश्य की पूर्ति के लिए···।"

"कौन-सा उद्देश्य ?"

"उससे मुझे बहुत अधिक धन मिलने की आशा है। लगभग डेढ़-दो लाख।"

हंसते हुए शान्ति बोली, "क्या कहते हो, एक कंजरी से रुपये मिलने की आशा ?"

"वह कंजरी नहीं, एक बड़े ऊंचे घराने की है। अगर तुझे उसकी सारी कहानी सुनाऊं तो तू हैरान रह जाए। वह अपनी सारी धन-सम्पत्ति मुझे देने को तैयार है।"

"आपको छोड़, यदि भगवान स्वयं भी आकर मुझे ऐसा कहे तो मैं फिर भी नहीं मान सकती कि ऐसी रण्डी किसीको पैसे की शकल भी दिखा सकती है।"

"अफसोस, यदि तू मुझे एक मास का समय दे दे तो तुझे सब कुछ दिखा दूं। फिर मैं हमेशा के लिए उसका साथ छोड़ दूंगा। तुझे पता है

इस समय मेरी हालत बड़ी खस्ता है। यदि उससे मुझे रुपया मिल गया तो मेरे सारे काम पूरे हो जाएंगे, नहीं तो मेरा व्यापार नष्ट हो जाएगा।"

"यदि ऐसी ही बात है तो मेरे आभूषणों को बेचकर अपना काम चला लो।"

"ऐसा मैं नहीं कर सकता। मुझे रुपये में से सोलह आने पूर्ण विश्वास है, उससे रुपये मिलने का।"

शान्ति सोचने लगी, 'इस समय ज़िद करने से कोई लाभ नहीं होगा। यदि पति आसमान के फूल सूंघने की आस लगाए बैठा है तो इसे अपने अरमान पूरे करने देना चाहिए।'

उसने कहा, "अच्छा आपको एक मास का समय देती हूं, परन्तु इससे अधिक एक दिन भी नहीं दूंगी।"

शान्ति को विशाल हृदय पाकर प्रेम मन ही मन प्रसन्न हो उठा। उसने प्यार भरी निगाहों से उसे देखकर कहा, "एक मास से भी पहले।"

इसके पश्चात वह घड़ी की ओर देखते हुए बोला, "ओह! सवा-आठ बज गए हैं। मुझे तो अभी दो-तीन के पास उगाही के लिए जाना था।"

शान्ति बोली, "कल चले जाना, अब तो अन्धेरा हो गया है।"

"नहीं, मेरा जाना बड़ा जरूरी है।" कहकर और तनिक सोचकर वह बोला, "हां, एक बात और याद आ गई। गोपालसिंह ने अपनी पत्नी के लिए हार बनवाना था। नमूना सुनार को दिखाने के लिए उसने तेरा हार मंगवाया है।"

शान्ति ने पति के मुंह से गोपालसिंह की बड़ी प्रशंसा सुनी थी—दो-चार बार वह घर पर भी आया था। प्रेम ने कई तरीकों से शान्ति को यह भी बताने का प्रयत्न किया था कि गोपालसिंह एक लखपति व्यक्ति है और उनका बड़ा शुभचिन्तक है। वह हमेशा ज़रूरत के समय उनकी सहायता करता है। इसलिए शान्ति को गोपालसिंह के प्रति श्रद्धा-सी हो गई थी। परन्तु गोपालसिंह की पत्नी की सूरत उसने आज तक नहीं देखी थी। उसने पूछा, "गोपालसिंह की पत्नी यहीं है? विवाह

में तो नहीं आई थी।"

प्रेम बोला, "तब मायके गई हुई थी। तीन-चार दिन हुए हैं, लौटी है।"

शान्ति भीतर जाकर हार वाला मखमल का डिब्बा उठा लाई।

गोपालसिंह का नाम सुनते ही शान्ति को एक और बात याद आ गई, क्यों न उसको कहकर पति को कुमार्ग से हटाया जाए। ऐसे नेक और उपकारी मित्र का कहा कभी नहीं टालेंगे। ऐसा सोचकर वह पति को हार देती हुई बोली, "उसको कहना, किसी दिन पत्नी को हमारे घर लाए।"

हार देते समय शान्ति के हृदय में शंका ने जन्म लिया, उसका हाथ तनिक रुका, परन्तु तुरन्त ही विचार आया, नहीं शंका की कोई बात नहीं। मां यदि डायन बन जाए तो क्या बच्चों को ही खाने लगेगी ?

"कहूंगा उसे अवश्य लाए।" कहकर प्रेम ने हार डिब्बे में से निकाल लिया और रुमाल से लपेटकर कोट की भीतरी जेब में रख लिया और बोला, "डिब्बे को यहीं रहने दे, कहां भारती की तरह उठाए फिरूंगा।"

शान्ति ने डिब्बा रख लिया और प्रेम उगाही करने के लिए नीचे उतर गया। भगवान जाने इस 'उगाही' शब्द का प्रेम के शब्द-कोष के अनुसार क्या अर्थ था।

नीचे दूसरी मंज़िल पर पहुंचने पर मां ने उसे आवाज़ दी, "बेटा! बाज़ार जा रहा है तो जल्दी लौटना। वह बेचारी प्रतीक्षा में रहती है, आधी-आधी रात तक।"

"अच्छा" कहकर वह बाहर निकल गया। इस समय साढ़े-आठ बजे थे।

२०

गोपालसिंह आयु में प्रेम से बेशक बड़ा था, परन्तु प्रेम के विवाह में अपने-आपको छोटा बताकर और शान्ति को घूंघट उठाने के बदले सोने की अंगूठी देकर उसने देवर का पद पा लिया था।

शान्ति को देखते ही वह पानी से निकली मछली की तरह तड़पने लगा। शान्ति इतनी सुन्दर होगी, ऐसा उसने स्वप्न में भी न सोचा था।

प्रेम को कई और तरीकों से लूटने और उसका रहा-सहा घर भी उजाड़ने की वह कई योजनाएं बनाया करता था, परन्तु जब से उसने शान्ति को देखा, उसको एक और चिन्ता खाने लगी और वह थी शान्ति को प्राप्त करने की।

वह दिन-रात इन्ही सोचों में डूबा रहता कि प्रेम के घर में आना-जाना कैसे शुरू हो, क्योंकि वह अविवाहित था। इसलिए उसके इस काम में यही बहुत बड़ी रुकावट थी।

अन्त में सोचते-सोचते उसे एक तरकीब सूझी, वह एक तीर से दो निशाने लगाना चाहता था। यह तरकीब कौन-सी थी ?

अप्राप्य वस्तु ही मनुष्य के लिए मूल्यवान रहती है, परन्तु प्राप्त होने पर उसीकी बेकद्री होने लगती है।

शान्ति जैसी सुन्दरता की देवी प्रेम के लिए एक तुच्छ वस्तु के समान थी, क्योंकि उसको वह प्राप्त हो चुकी थी, परन्तु गोपालसिंह जैसे दुराचारी पुरुष के लिए वह एक अनमोल-रत्न थी, जिसकी संसार में कोई कीमत ही नहीं आंक सकता। बनावटी रंग-रूप से सजी हुई, राह गुज़रते पक्षियों को फांस लेने वाली बाज़ारू औरतों से गोपालसिंह का मन उकता गया था, उनसे जिनकी प्राप्ति के लिए न कोई प्रयत्न करना पड़ता था और न ही उनकी जुदाई से किसी प्रकार का दुःख होता था।

अपने जीवन में आज तक उसने केवली बाज़ारी सुन्दरता, बनावटी श्रृंगार, बनावटी प्रेम और बनावटी व्यवहार ही देखे थे। ऐसी बनावटी दुनिया से उसका मन भर गया था और अब उसका मन, किसी वास्तविक सुन्दरता की देवी को प्राप्त करने के लिए, हर समय व्याकुल रहता था। आखिरकार वह एक ऐसे स्थान पर जा गिरा जहां से उठ सकना उसके लिए असम्भव था, वह था शान्ति का चांद-सा मुखड़ा।

अपने कार्य में सफलता प्राप्त करने के लिए उसने एक नई योजना तैयार की। उस योजना को आज असली रूप देने के लिए ही उसने प्रेम को बुलवा भेजा था और उसके आने से पूर्व करीम को बुलाकर पहले

से ही बातचीत की भूमिका तैयार कर रहा था।

करीम हृदय से गोपालसिंह को नही चाहता था। वह उसे दूसरों के कंधों पर बन्दूक रखकर निशाना लगाने वाला, लालची और धोखेबाज समझने लगा था। जिस प्रकार प्रेम का मित्र बन, उसके विवाह में गोपालसिंह ने उसे दोनों हाथो से लूटा-खसूटा था और बेचारे करीम को सूखा ही छोड़ दिया था—करीम उससे अनभिज्ञ नही था, परन्तु यह सब जानते हुए भी वह गोपालसिंह से सम्बन्ध-विच्छेद नहीं करना चाहता था। इसकी मित्रता से चाहे थोड़ा चाहे अधिक, परन्तु लाभ ही लाभ था। इतना ही नहीं जब कभी नशा टूटता, तो वह गोपालसिंह से किसी न किसी बहाने कुछ ले ही लेता था।

उधर मिस जमना बाई भी गोपालसिंह से रुष्ट थी। उसको भी इस बात पर गुस्सा था कि जब यह बदमाश उसकी कमाई मे से अपना हिस्सा बांट लेता है, तो फिर उसने प्रेम के विवाह पर की गई लूट-खसोट में से उसे हिस्सा क्यों न दिया। परन्तु फिर भी गोपालसिंह के साथ बनाए रखने मे ही उसे भलाई दिखाई देती थी। प्रेम जैसी मालदार मुर्गी उसे गोपालसिंह की कृपा से ही मिली थी। आजकल वह प्रेम वाला मकान छोड़कर फिर अपनी बैठक मे चली गई थी, क्योंकि जिस उद्देश्य की पूर्ति के लिए उसने अपनी बैठक छोडी थी, वह उद्देश्य अब पूरा हो चुका था। अब सप्ताह बीत जाते थे पर प्रेम के दर्शन नही होते थे। और फिर जिन्होंने भर पेट खाया हो उन्हे भला अगुली चाटने पर कैसे मजा आता, इसलिए इस गुमनाम गली मे बिना ग्राहकों के जमना बाई का गुजारा कैसे चल सकता था। लाचार हो उसे फिर अपने पुराने ठिकाने पर ही जाना पड़ा। गोपालसिंह की उस नई योजना मे उसे भी सम्मलित होना पड़ा, फिर होती भी क्यों न, जबकि उसे लाभ ही लाभ दिखाई देता था। हीग और फिटकरी तो उसकी लगनी नहीं थी। परन्तु इस बार वह गोपालसिंह की ओर से चोकन्ना अवश्य रहना चाहती थी।

गोपालसिंह दूसरी ओर जमना बाई पर दात पीस रहा था कि पिछली बार पहाड़ पर जाकर उसने जो प्रेम से माल ऐंठा था, उसमें से उसे केवल नाम मात्र को दिया था। उसने सोचा कि इस बार इत

चुड़ैल को भी ऐसे हाथ दिखाऊंगा कि याद रखेगी।

संक्षिप्त में यही कि शतरंज के इस खेल को जीतने के लिए सभी अपने-आप में तैयार थे।

इस समय रात के पौने-नौ बज चुके थे और गोपालसिंह अपनी दुकान के पिछले भाग में करीम सहित बैठा था। एक बार बाहर जाकर बाज़ार की ओर नज़र दौड़ाकर, भीतर आकर करीम से बोला, "क्या बात है करीम ! आज साले ने बड़ी देर कर दी है, रुकने वाला तो नहीं था।"

गोपालसिंह के जवाब में करीम बोला, "मेरा तो विचार है शायद वह नहीं आएगा। बात यह है गोपाल मियां ! अब वह हो गया है फक्कड़। उसके पास ज़हर खाने को भी पैसा नहीं रहा, फिर आकर क्या करेगा। ऐसे काम तो तब तक चलते हैं जब जेबें भरी हों। मैं जब कलकत्ता में ठेकेदारी करता था तब का किस्सा है—तब एक मारवाड़ी लाला किसी तरह मेरे पंजे में फंस गया। मेरी आदत है जो काम कल होना हो उसको पहले ही समझ जाता हूं। भगवान की मार उसके घर······।"

बीच में ही बात काटकर गोपालसिंह कहने लगा, "छोड़ इन फिज़ूल की बातों को—कोई मतलब की बात किया करते हैं। तू कहता है वह आएगा नहीं, परन्तु मुझे पूरा विश्वास है कि वह अवश्य आएगा। क्या कहा है तूने फक्कड़ हो गया है ? अभी बदमाश के पास काफी सम्पति है। मकान कम से कम तीस-चालीस हज़ार का होगा, उसका।"

बाईं ओर की मूंछ को अंगुली से सहलाते हुए करीम बोला, "मकान ही मकान तो उसके पास रह गया है और उसके पास है क्या ? और मैंने सुना है उसका भी कुछ भाग गिरवी पड़ा है। रुपया लेने वालों की भी उसीपर निगाह है। जो शेष बचा है उसे भी लेकर छोड़ेंगे।"

"यही तो मैं कहता हूं, यदि हमारे रहते मकान कोई और ले जाए तो फिर हमारा पैदा होना किस काम का। मैं सोचता हूं उसके पास तो रहना नहीं, फिर हम ही क्यों न सम्भाल लें ?"

खुशी से फूलते हुए करीम बोला, "गोपाल मियां ! बात तो लाख

रुपये की है। अच्छा हुआ जो समय पर सम्भल गए हैं नहीं तो यह भी हाथ से निकल जाता। मैं तो तेरे को पहले ही कहनेवाला था कि इस पाजी से जो कुछ मिलता है प्राप्त कर लेना चाहिए। मेरी आदत है होनेवाली बात को पहले से जान जाता हूं। मेरे साले नब्बीबख्श के पड़ोस में एक काश्मीरी रहता था। कढ़ाई का काम किया करता था, बहुत अच्छा कारीगर था, रोज तीन-चार रुपये कमा लेता था। बस जी······।"

बात काटकर गोपालसिंह ने कहा, "तू तो अपने किस्से सुनाने लगता है। इन व्यर्थ की बातों को छोड़, कोई मतलब की बात कर। वह आनेवाला है।"

"अच्छा, फिर बता तूने इस बारे में क्या सोचा है?"

"मैंने तो यही सोचा है कि अभी जमना बाई से उसका सम्बन्ध न टूटने दें।"

"टूटने कैसे न दें, गोपाल मियां, वह तो कभी का टूट चुका है। जमना उसका मकान कभी का छोड़ आई है। परसों?···नहीं, कल मुझे मिली थी। मैंने पूछा जमना बाई सुना तेरे 'महिवाल' का क्या हाल है? बोली, 'मेरी जाने जूती'···।"

गोपालसिंह बोला, "हां, इतना तो मुझे पता है, परन्तु मेरा विचार है, प्रेम का मन अभी उससे नहीं भरा।"

"क्या मतलब?"

"मतलब यह कि उसकी आंखें अभी भी जमना बाई के झूठे आभूषणों पर टिकी हुई हैं।"

"परन्तु दोबारा जमना बाई के पास उसे फसाने का हमें क्या लाभ होगा?"

"अभी तू लाभ की बात मत पूछ। इस बात को तू मेरे पर ही छोड़ दे। तुझे मतलब रुपयों से है या किसी और चीज से?"

चालाक गोपालसिंह मन की बात करीम को नहीं बताना चाहता था, न ही जमना को। वह तो केवल उन दोनों का प्रयोग चोर के रूप में करना चाहता था। इसलिए रुपयों की बात कहकर उसने करीम का घर भर दिया।

करीम बोला, "अच्छा बाबा, जैसे तेरी इच्छा, हम तेरे नौकर हैं, जिधर भेजेगा चले जाएंगे।"

"अच्छा अब तू जमना की बैठक पर जा।"

"जाकर उसे क्या कहूं?"

जो कुछ जमना को कहना था, गोपालसिंह ने विस्तार से करीम को समझा दिया और साथ में यह चेतावनी भी दे दी कि प्रेम के साथ यह नया मेल-जोल बढ़ाने के लिए उसे जितना परिश्रम करना पड़ेगा, उसकी पूरी कीमत उसे दी जाएगी।

"अच्छा, सलाम।" कहकर करीम चला गया और गोपालसिंह वहीं पर बैठा प्रेम की प्रतीक्षा करने लगा।

करीम रास्ते में सोचने लगा, "मुझे लगता है इस बार भी यह शैतान मुझे सूखा ही टरका देगा। पर ठीक है, देखता हूं मैं कब इसकी चालों में फंसने वाला हूं।'

करीम को गए अभी पन्द्रह-बीस मिनिट ही हुए होंगे कि बाहर से मनोहरी ने आवाज़ दी, "सरदार जी! महीवाल आ रहा है।"

"उसे अन्दर भेज देना।" कहकर गोपालसिंह ने जल्दी से आलमारी में से ह्विस्की की बोतल और दो गिलास निकालकर मेज़ पर रख दिए।

प्रेम के भीतर आते ही गोपालसिंह खड़ा हो गया और उसका हार्दिक अभिनन्दन करते हुए बोला, "वाह भाई! तू तो बस ईद का चांद बन गया है। तेरे जैसा भी कोई होगा। उधर वह पैदा करने वालों को खानेवाली मेरा पीछा नहीं छोड़ती। रोज़ संदेशे, रोज़ गिले-शिकवे पता नहीं कौन-सा जादू कर आया है उसके सिर पर। अभी-अभी उसकी नौकरानी दुकान पर बैठी गई है। यदि दो मिनिट पहले आ जाते तो मुझे साथ ही ले जाती।" कहते-कहते गोपालसिंह ने बोतल खोलकर गिलास में उड़ेलनी शुरू कर दी।

निराशा के काले बादलों में से आशा की बिजली चमक पड़ी। प्रेम कई सप्ताहों से अपनी प्रेमिका की मांगें पूरी नहीं कर पाया था, जिससे जमना बाई का उसके प्रति जो प्यार था, वह डांट-फटकार में बदलने लगा था।

यही कारण था कि वह लज्जा का मारा उसके पास जाने में शरमाता था, भले ही मन उसका हर समय जमना की दौलत मे भटकता रहता था। आज भी उसने सट्टे में से मिलनेवाले हजारों रुपयों में से जमना का भाग निकालने का निर्णय किया था। उसका विचार था कि रुपया मिलने की देर है कि वह जमना बाई की गोदी रंग-बिरंगी और कीमती भेंटों से भर देगा। परन्तु बेचारे की आशा पूर्ण न हुई। फिर भी वह खाली हाथ नहीं आया था—शान्ति का हार उसकी जेब में था।

वह सोचता था कि पता नहीं जमना उससे कितना नाराज़ है, जिसको मनाने के लिए पता नहीं कितना परिश्रम करना पड़े, परन्तु गोपालसिंह की बात सुनकर वह खुशी से लोट-पोट हो गया। प्रेम के लिए ऊपर भगवान और नीचे गोपालसिंह था, बस।

गोपालसिंह से यह सब बातें सुनकर वह हक्का-बक्का रह गया। तो क्या जमना बाई मुझे इतना प्यार करती है कि मेरे इस कुछ दिनों के वियोग को भी सहन नहीं कर सकी ?

वह अपने भाग्य की सराहना करने लगा और गिलास को खाली करके बोला, "सचमुच ?"

गोपालसिंह तनिक और गम्भीर बनकर बोला, "तो क्या झूठ है ? परन्तु तूने यह बेवकूफी क्यों की ? इतने दिन तक तूने उसकी खबर ही न ली। मैं तो तुझे पहले ही बता चुका था कि जमना कोई बाजारी औरत नहीं है। दुर्भाग्य ने बेचारी को इस पेशे में ला फेंका, परन्तु है बड़ी नम्र स्वभाव की। तेरे पीछे तो बस 'सती' बनी फिर रही है। जब जाओ बस प्रेम के नाम की माला फेरते दीख पड़ती है।"

खुशी से सीना फुलाकर प्रेम बोला, "मेरे लिए तो स्वयं गोपालसिंह उसके बिना खाना हराम हो गया है, परन्तु क्या करूं···।"

गोपालसिंह बीच में ही पूछ उठा, "क्यों, सब ठीक तो है ?"

प्रेम के मन में विचार आया कि गोपालसिंह को सब कुछ बता दे, परन्तु एक मित्र को अपनी कमजोरियों से परिचित कराना उचित समझते हुए उसने इतना ही कहा, "वैसे ही आजकल थोड़ा हाथ तंग था, जिसके कारण कई दिनों से नहीं जा पाया था। गोपालसिंह तू तो समझ-

दार है, खाली हाथ जाते आदमी अच्छा भी नहीं लगता।"

गोपालसिंह को पहले ही उसकी हालत का पता था और वह यह भी जानता था कि जल्दी ही वह दिन आनेवाला है जिसकी वह कई दिनों से प्रतीक्षा में था। अपना अफसोस जताते हुए वह बोला, "परन्तु तू बता भी नहीं सकता था। मित्र यदि दुःख में काम न आए तो फिर क्या फांसी पर चढ़ाने के लिए होते हैं? यदि तुझे सौ-पचास की आवश्यकता थी तो तू मुझे बताता।"

प्रेम को ऐसे सच्चे और पक्के मित्र पर गर्व था। उसके सभी दुःख दूर हो गए। मन ही मन सोचने लगा, 'मैं कितना भाग्यवान हूं, जिसको ऐसा वफादार मित्र मिला है।"

वह कुछ कहने को ही था कि गोपालसिंह ने अपने नौकर को आवाज़ लगाई, "मनोहरी! ओ मनोहरी! संदूकची में जो कुछ भी है निकाल ला।"

दूसरे ही क्षण प्रेम के सामने मेज़ पर पांच-पांच रुपये के कुछ नोट और रेज़गारी बिखरी पड़ी थी। यह सब मिलाकर लगभग पचास रुपये के बराबर थे।

गोपालसिंह की इस सब कुछ दान कर देनेवाली उदारता को देखकर प्रेम का हृदय गद्‌गद् हो गया, भले ही इतने से उसका काम चलने का न था।

वह सब इकट्ठा करके, उसकी जेब में डालते हुए गोपालसिंह बोला, "इस समय तो मेरे पास इतना ही है, कल या परसों तक और का प्रबन्ध कर लूंगा। ओ भोले मित्र यदि मेरे होते हुए तुझे इन तुच्छ पैसों के लिए चिन्ता करनी पड़े, तो फिर मेरा होना ही बेकार है। वैसे तेरा विचार नेक है कि तेरे जैसा मशहूर आदमी खाली हाथ जाना अच्छा नहीं लगता। वह बेचारी बेशक तुझसे कुछ मांगती नहीं, परन्तु आदमी को अपनी इज़्ज़त तो रखनी ही होती है न। अच्छा पहले जा उस बेचारी से मिल आ, शेष फिर देखा जाएगा।"

प्रेम का पूरा सेर भर खून बढ़ गया। उसने कई बार मना किया, परन्तु उसे रुपये लेने ही पड़े। वह उठता-उठता फिर यह सोचकर बैठ गया कि 'ऐसे जान तक दे देनेवाले मित्र के आगे अपने हृदय की वेदना

प्रकट न की तो और किसके आगे करूंगा ? नहीं; गोपालसिंह से कोई भी बात छिपानी नहीं चाहिए। इससे बढ़कर मेरा शुभ-चिन्तक दूसरा कौन हो सकता है ? आनेवाली कठिनाई से बचने के लिए, वह मुझे कोई नेक सलाह देगा।' कुर्सी को गोपालसिंह के समीप सरकाते हुए वह बोला, "तेरे साथ एक और भी बात के बारे में सलाह करनी थी।"

"मेरे साथ ?" गोपालसिंह ने उसके कंधे पर हाथ रखकर कहा, "बता।"

"मुझे अचानक आवश्यकता आन पड़ी है, मेरा विचार मकान पर कुछ और रुपया लेने का है।"

बात सुनते ही गोपालसिंह के चेहरे का रंग पीला पड़ गया—मित्र की कठिनाई को सुनकर नहीं, बल्कि अपने ही एक सुनहरी स्वप्न के भंग होने की सम्भावना को सोचकर।

दुःखी भावों से चेहरे को ढककर बोला, "मकान पर ? तेरा मतलब है मकान को गिरवी रखकर ?"

उदास और दुःखी हृदय से प्रेम ने 'हां' में अपना सिर हिलाया।

"पर क्यों ?" गोपालसिंह ने आश्चर्य-भरी दृष्टि से उसकी ओर देखते हुए पूछा, "ऐसी क्या आवश्यकता पड़ गई है ?"

प्रेम ने सब कुछ कह सुनाया। इसके साथ ही आज सट्टे में हुई हार के बारे में भी उसे बताया।

सुनकर गोपाल ने मन ही मन कहा, "चौबेजी छब्बे बनने गए, पर दुबे बनकर आए।" परन्तु चेहरे पर दुःखी भावों को लेकर बोला, "यदि आज सट्टे में गए हैं तो कल आ भी जाएंगे, परन्तु मकान को गिरवी रखने के लिए मैं तो नहीं कह सकता। तेरे बुजुर्गों की एक ही तो यादगार है तेरे पास। गिरवी रखा मकान फिर कब छूटता है ? पहले ही आधा भाग गिरवी रखकर तूने गल्ती की है। यदि मुझे पता चलता तो कभी भी तुझे ऐसा न करने देता। विवाह के लिए रुपये इधर-उधर से इकट्ठे कर लेते, यह कौन-सा कठिन काम था। ब्याज को बढ़ते कौन समय लगता है। हाथ से निकला समय फिर कब लौटता है, ऐसा न हो तो जीवन भर के लिए पश्चाताप करना पड़े।

प्रेम आंखों को नीचे झुकाकर बोला, "गोपाल मियां इसके अलावा

दार है, खाली हाथ जाते आदमी अच्छा भी नहीं लगता।"

गोपालसिंह को पहले ही उसकी हालत का पता था और वह यह भी जानता था कि जल्दी ही वह दिन आनेवाला है जिसकी वह कई दिनों से प्रतीक्षा में था। अपना अफसोस जताते हुए वह बोला, "परन्तु तू बता भी नहीं सकता था। मित्र यदि दुःख में काम न आए तो फिर क्या फांसी पर चढ़ाने के लिए होते हैं? यदि तुझे सौ-पचास की आवश्यकता थी तो तू मुझे बताता।"

प्रेम को ऐसे सच्चे और पक्के मित्र पर गर्व था। उसके सभी दुःख दूर हो गए। मन ही मन सोचने लगा, 'मैं कितना भाग्यवान हूं, जिसको ऐसा वफादार मित्र मिला है।"

वह कुछ कहने को ही था कि गोपालसिंह ने अपने नौकर को आवाज़ लगाई, "मनोहरी! ओ मनोहरी! संदूकची में जो कुछ भी है निकाल ला।"

दूसरे ही क्षण प्रेम के सामने मेज़ पर पांच-पांच रुपये के कुछ नोट और रेज़गारी बिखरी पड़ी थी। यह सब मिलाकर लगभग पचास रुपये के बराबर थे।

गोपालसिंह की इस सब कुछ दान कर देनेवाली उदारता को देखकर प्रेम का हृदय गद्‌गद् हो गया, भले ही इतने से उसका काम चलने का न था।

वह सब इकट्ठा करके, उसकी जेब में डालते हुए गोपालसिंह बोला, "इस समय तो मेरे पास इतना ही है, कल या परसों तक और का प्रबन्ध कर लूंगा। ओ भोले मित्र यदि मेरे होते हुए तुझे इन तुच्छ पैसों के लिए चिन्ता करनी पड़े, तो फिर मेरा होना ही बेकार है। वैसे तेरा विचार नेक है कि तेरे जैसा मशहूर आदमी खाली हाथ जाना अच्छा नहीं लगता। वह बेचारी बेशक तुझसे कुछ मांगती नहीं, परन्तु आदमी को अपनी इज़्ज़त तो रखनी ही होती है न। अच्छा पहले जा उस बेचारी से मिल आ, शेष फिर देखा जाएगा।"

प्रेम का पूरा सेर भर खून बढ़ गया। उसने कई बार मना किया, परन्तु उसे रुपये लेने ही पड़े। वह उठता-उठता फिर यह सोचकर बैठ गया कि 'ऐसे जान तक दे देनेवाले मित्र के आगे अपने हृदय की वेदना

प्रकट न की तो और किसके आगे करूंगा ? नहीं; गोपालसिंह से कोई भी बात छिपानी नहीं चाहिए। इससे बढ़कर मेरा शुभ-चिन्तक दूसरा कौन हो सकता है ? आनेवाली कठिनाई से बचने के लिए, वह मुझे कोई नेक सलाह देगा।' कुर्सी को गोपालसिंह के समीप सरकाते हुए वह बोला, "तेरे साथ एक और भी बात के बारे में सलाह करनी थी।"

"मेरे साथ ?" गोपालसिंह ने उसके कंधे पर हाथ रखकर कहा, "बता।"

"मुझे अचानक आवश्यकता आन पड़ी है, मेरा विचार मकान पर कुछ और रुपया लेने का है।"

बात सुनते ही गोपालसिंह के चेहरे का रंग पीला पड़ गया—मित्र की कठिनाई को सुनकर नहीं, बल्कि अपने ही एक सुनहरी स्वप्न के भंग होने की सम्भावना को सोचकर।

दुःखी भावों से चेहरे को ढककर बोला, "मकान पर ? तेरा मतलब है मकान को गिरवी रखकर ?"

उदास और दुःखी हृदय से प्रेम ने 'हां' में अपना सिर हिलाया।

"पर क्यों ?" गोपालसिंह ने आश्चर्य-भरी दृष्टि से उसकी ओर देखते हुए पूछा, "ऐसी क्या आवश्यकता पड़ गई है ?"

प्रेम ने सब कुछ कह सुनाया। इसके साथ ही आज सट्टे में हुई हार के बारे में भी उसे बताया।

सुनकर गोपाल ने मन ही मन कहा, "चौबेजी छब्बे बनने गए, पर दुबे बनकर आए।" परन्तु चेहरे पर दुःखी भावों को लेकर बोला, "यदि आज सट्टे में गए हैं तो कल आ भी जाएंगे, परन्तु मकान को गिरवी रखने के लिए मैं तो नहीं कह सकता। तेरे बुजुर्गों की एक ही तो यादगार है तेरे पास। गिरवी रखा मकान फिर कब छूटता है ? पहले ही आधा भाग गिरवी रखकर तूने गल्ती की है। यदि मुझे पता चलता तो कभी भी तुझे ऐसा न करने देता। विवाह के लिए रुपये इधर-उधर से इकट्ठे कर लेते, यह कौन-सा कठिन काम था। ब्याज को बढ़ते कौन समय लगता है। हाथ से निकला समय फिर कब लौटता है, ऐसा न हो तो जीवन भर के लिए पश्चाताप करना पड़े।

प्रेम आंखों को नीचे झुकाकर बोला, "गोपाल मियां इसके अलावा

दार है, खाली हाथ जाते आदमी अच्छा भी नहीं लगता ।"

गोपालसिंह को पहले ही उसकी हालत का पता था और वह यह भी जानता था कि जल्दी ही वह दिन आनेवाला है जिसकी वह कई दिनों से प्रतीक्षा में था । अपना अफसोस जताते हुए वह बोला, "परन्तु तू बता भी नहीं सकता था । मित्र यदि दुःख में काम न आए तो फिर क्या फांसी पर चढ़ाने के लिए होते हैं ? यदि तुझे सौ-पचास की आवश्यकता थी तो तू मुझे बताता ।"

प्रेम को ऐसे सच्चे और पक्के मित्र पर गर्व था । उसके सभी दुःख दूर हो गए । मन ही मन सोचने लगा, 'मैं कितना भाग्यवान हूं, जिसको ऐसा वफादार मित्र मिला है ।"

वह कुछ कहने को ही था कि गोपालसिंह ने अपने नौकर को आवाज़ लगाई, "मनोहरी ! ओ मनोहरी ! संदूकची में जो कुछ भी है निकाल ला ।"

दूसरे ही क्षण प्रेम के सामने मेज़ पर पांच-पांच रुपये के कुछ नोट और रेज़गारी बिखरी पड़ी थी । यह सब मिलाकर लगभग पचास रुपये के बराबर थे ।

गोपालसिंह की इस सब कुछ दान कर देनेवाली उदारता को देखकर प्रेम का हृदय गद्‌गद् हो गया, भले ही इतने से उसका काम चलने का न था ।

वह सब इकट्ठा करके, उसकी जेब में डालते हुए गोपालसिंह बोला, "इस समय तो मेरे पास इतना ही है, कल या परसों तक और का प्रबन्ध कर लूंगा । ओ भोले मित्र यदि मेरे होते हुए तुझे इन तुच्छ पैसों के लिए चिन्ता करनी पड़े, तो फिर मेरा होना ही बेकार है । वैसे तेरा विचार नेक है कि तेरे जैसा मशहूर आदमी खाली हाथ जाना अच्छा नहीं लगता । वह बेचारी बेशक तुझसे कुछ मांगती नहीं, परन्तु आदमी को अपनी इज़्ज़त तो रखनी ही होती है न । अच्छा पहले जा उस बेचारी से मिल आ, शेष फिर देखा जाएगा ।"

प्रेम का पूरा सेर भर खून बढ़ गया । उसने कई बार मना किया, परन्तु उसे रुपये लेने ही पड़े । वह उठता-उठता फिर यह सोचकर बैठ गया कि 'ऐसे जान तक दे देनेवाले मित्र के आगे अपने हृदय की वेदना

प्रकट न की तो और किसके आगे करूंगा ? नहीं; गोपालसिंह से कोई भी बात छिपानी नहीं चाहिए। इससे बढकर मेरा शुभ-चिन्तक दूसरा कौन हो सकता है ? आनेवाली कठिनाई से बचने के लिए, वह मुझे कोई नेक सलाह देगा।' कुर्सी को गोपालसिंह के समीप सरकाते हुए वह बोला, "तेरे साथ एक और भी बात के बारे में सलाह करनी थी।"

"मेरे साथ ?" गोपालसिंह ने उसके कंधे पर हाथ रखकर कहा, "बता।"

"मुझे अचानक आवश्यकता आन पड़ी है, मेरा विचार मकान पर कुछ और रुपया लेने का है।"

बात सुनते ही गोपालसिंह के चेहरे का रंग पीला पड़ गया—मित्र की कठिनाई को सुनकर नहीं, बल्कि अपने ही एक सुनहरी स्वप्न के भंग होने की सम्भावना को सोचकर।

दुःखी भावों से चेहरे को ढककर बोला, "मकान पर ? तेरा मतलब है मकान को गिरवी रखकर ?"

उदास और दुःखी हृदय से प्रेम ने 'हां' में अपना सिर हिलाया।

"पर क्यों ?" गोपालसिंह ने आश्चर्य-भरी दृष्टि से उसकी ओर देखते हुए पूछा, "ऐसी क्या आवश्यकता पड़ गई है ?"

प्रेम ने सब कुछ कह सुनाया। इसके साथ ही आज सट्टे में हुई हार के बारे में भी उसे बताया।

सुनकर गोपाल ने मन ही मन कहा, "चौबेजी छब्बे बनने गए, पर दुबे बनकर आए।" परन्तु चेहरे पर दुःखी भावों को लेकर बोला, "यदि आज सट्टे में गए हैं तो कल आ भी जाएंगे, परन्तु मकान को गिरवी रखने के लिए मैं तो नहीं कह सकता। तेरे बुजुर्गों की एक ही तो यादगार है तेरे पास। गिरवी रखा मकान फिर कब छूटता है ? पहले ही आधा भाग गिरवी रखकर तूने गल्ती की है। यदि मुझे पता चलता तो कभी भी तुम्हें ऐसा न करने देता। विवाह के लिए रुपये इधर-उधर से इकट्ठे कर लेते, यह कौन-सा कठिन काम था। ब्याज को बढ़ते कौन समय लगता है। हाथ से निकला समय फिर कब लौटता है, ऐसा न हो तो जीवन भर के लिए पश्चाताप करना पड़े।

प्रेम आखों को नीचे झुकाकर बोला, "गोपाल मियां इसके अलावा

दार है, खाली हाथ जाते आदमी अच्छा भी नहीं लगता।"

गोपालसिंह को पहले ही उसकी हालत का पता था और वह यह भी जानता था कि जल्दी ही वह दिन आनेवाला है जिसकी वह कई दिनों से प्रतीक्षा में था। अपना अफसोस जताते हुए वह बोला, "परन्तु तू बता भी नहीं सकता था। मित्र यदि दुःख में काम न आए तो फिर क्या फांसी पर चढ़ाने के लिए होते हैं? यदि तुझे सौ-पचास की आवश्यकता थी तो तू मुझे बताता।"

प्रेम को ऐसे सच्चे और पक्के मित्र पर गर्व था। उसके सभी दुःख दूर हो गए। मन ही मन सोचने लगा, 'मैं कितना भाग्यवान हूं, जिसको ऐसा वफादार मित्र मिला है।"

वह कुछ कहने को ही था कि गोपालसिंह ने अपने नौकर को आवाज़ लगाई, "मनोहरी! ओ मनोहरी! संदूकची में जो कुछ भी है निकाल ला।"

दूसरे ही क्षण प्रेम के सामने मेज़ पर पांच-पांच रुपये के कुछ नोट और रेज़गारी बिखरी पड़ी थी। यह सब मिलाकर लगभग पचास रुपये के बराबर थे।

गोपालसिंह की इस सब कुछ दान कर देनेवाली उदारता को देखकर प्रेम का हृदय गद्‌गद् हो गया, भले ही इतने से उसका काम चलने का न था।

वह सब इकट्ठा करके, उसकी जेब में डालते हुए गोपालसिंह बोला, "इस समय तो मेरे पास इतना ही है, कल या परसों तक और का प्रबन्ध कर लूंगा। ओ भोले मित्र यदि मेरे होते हुए तुझे इन तुच्छ पैसों के लिए चिन्ता करनी पड़े, तो फिर मेरा होना ही बेकार है। वैसे तेरा विचार नेक है कि तेरे जैसा मशहूर आदमी खाली हाथ जाना अच्छा नहीं लगता। वह बेचारी बेशक तुझसे कुछ मांगती नहीं, परन्तु आदमी को अपनी इज़्ज़त तो रखनी ही होती है न। अच्छा पहले जा उस बेचारी से मिल आ, शेष फिर देखा जाएगा।"

प्रेम का पूरा सेर भर खून बढ़ गया। उसने कई बार मना किया, परन्तु उसे रुपये लेने ही पड़े। वह उठता-उठता फिर यह सोचकर बैठ गया कि 'ऐसे जान तक दे देनेवाले मित्र के आगे अपने हृदय की वेदना

प्रकट न की तो और किसके आगे करूंगा ? नहीं; गोपालसिंह से कोई भी बात छिपानी नहीं चाहिए। इससे बढ़कर मेरा शुभ-चिन्तक दूसरा कौन हो सकता है ? आनेवाली कठिनाई से बचने के लिए, वह मुझे कोई नेक सलाह देगा।' कुर्सी को गोपालसिंह के समीप सरकाते हुए वह बोला, "तेरे साथ एक और भी बात के बारे में सलाह करनी थी।"

"मेरे साथ ?" गोपालसिंह ने उसके कंधे पर हाथ रखकर कहा, "बता।"

"मुझे अचानक आवश्यकता आन पड़ी है, मेरा विचार मकान पर कुछ और रुपया लेने का है।"

बात सुनते ही गोपालसिंह के चेहरे का रंग पीला पड़ गया—मित्र की कठिनाई को सुनकर नहीं, बल्कि अपने ही एक सुनहरी स्वप्न के भंग होने की सम्भावना को सोचकर।

दु:खी भावों से चेहरे को ढककर बोला, "मकान पर ? तेरा मतलब है मकान को गिरवी रखकर ?"

उदास और दुःखी हृदय से प्रेम ने 'हां' में अपना सिर हिलाया।

"पर क्यों ?" गोपालसिंह ने आश्चर्य-भरी दृष्टि से उसकी ओर देखते हुए पूछा, "ऐसी क्या आवश्यकता पड़ गई है ?"

प्रेम ने सब कुछ कह सुनाया। इसके साथ ही आज सट्टे में हुई हार के बारे में भी उसे बताया।

सुनकर गोपाल ने मन ही मन कहा, "चौबेजी छब्बे बनने गए, पर दुबे बनकर आए।" परन्तु चेहरे पर दु:खी भावों को लेकर बोला, "यदि आज सट्टे में गए हैं तो कल आ भी जाएंगे, परन्तु मकान को गिरवी रखने के लिए मैं तो नहीं कह सकता। तेरे बुजुर्गों की एक ही तो यादगार है तेरे पास। गिरवी रखा मकान फिर कब छूटता है ? पहले ही आधा भाग गिरवी रखकर तूने गल्ती की है। यदि मुझे पता चलता तो कभी भी तुझे ऐसा न करने देता। विवाह के लिए रुपये इधर-उधर से इकट्ठे कर लेते, यह कौन-सा कठिन काम था। ब्याज को चढ़ते कौन समय लगता है। हाथ से निकला समय फिर कब लौटता है, ऐसा न हो तो जीवन भर के लिए पश्चाताप करना पड़े।

प्रेम आंखों को नीचे झुकाकर बोला, "गोपाल मियां इसके अलावा

दूसरा चारा भी क्या था। मकान का नाम लेते ही मेरा तो हृदय फटने लगता है। पिताजी ने कितनी आशाएं लेकर इसे बनवाया होगा। मैं तो जीते-जी इसकी एक ईंट भी उखाड़कर किसी को देना, अपनी मौत समझता हूं, परन्तु करूं भी क्या, 'मजबूरी का नाम महात्मा गांधी।'

"परन्तु तुझे जरूरत कितने रुपयों की है?"

आशा भरी निगाह से उसे देखकर प्रेम हिसाब जोड़कर बोला, "छः-सात हज़ार तो हुण्डियों का है, जिनका भुगतान इसी मास में करना है, दूसरा भले ही आगे-पीछे हो जाए, परन्तु यह तो तू जानता ही है कि हुण्डी का काम कितना टेढ़ा है, फिर हुण्डियां भी बैंक की मारफत हैं।"

"छः···सात···हज़ार" गोपालसिंह ने लम्बी आवाज़ से कहा, "रकम भी थोड़ी नहीं। अगर हज़ार-पांच सौ की बात होती तो मैं ही कहीं से पकड़कर दे देता। रुपया इस समय मेरे पास भी नहीं, नहीं तो यह कौन-सा कठिन काम था। (सोचकर) अच्छा प्रेम! एक दूसरा काम कर! अगर तू हर-हालत में मकान ही गिरवी रखना चाहता है, तो मेरा मकान हाज़िर है। लगभग पांच हज़ार तो आराम से मिल जाएगा। तू किसलिए इतना बड़ा मकान, थोड़े से रुपयों के लिए मिट्टी में मिलाता है।"

प्रेम का बाल-बाल इस एहसान से दब गया। 'दोस्त के लिए इतना बड़ा त्याग? परन्तु मित्र यदि हाथ बढ़ाए तो क्या हाथ ही चाट लेना चाहिए?' वह सोचने लगा। वह कृतज्ञता भरी निगाह से प्रेम की ओर देखकर बोला, "भगवान तेरी रक्षा करें। तेरा क्या और मेरा क्या, एक ही बात है।" कहते-कहते उसका गला भर आया और आंखों में आंसू छलक आए।

उस बेचारे को क्या पता था कि गोपालसिंह को छोड़ उसके पूर्वज भी मकान के कभी मालिक नहीं बने थे। गोपालसिंह ने फिर दृढ़ता से कहा, "इसमें हानि भी क्या है? ऐसे लगता है जैसे तू अभी तक मुझे बेगाना ही समझता है।"

प्रेम कुछ न कह सका।

थोड़ी देर बाद गोपालसिंह ने कहा, "अगर तो प्रेम ! तू मकान को गिरवी रखकर रुपया लेना चाहता है तो पूर्वजों की जायदाद को मैं गिरवी नहीं रखने दूंगा। हां, मेरा मकान हाज़िर है, जिस समय कहेगा, मैं तुझे इसपर रुपया ले दूंगा। यदि तेरा कुछ दूसरा उपाय करने का विचार है तो मैं वह भी बता देता हूं।"

"दूसरा उपाय ?" प्रेम ने पूरी आंखें खोलकर पूछा, "वह क्या ?"

"यदि तू करना चाहे, तो बताऊं।"

"करूंगा क्यों नहीं—तू कहे और न करूं ?"

"पहले यह बता, दुकान का बीमा करवा रखा है या नहीं ?"

"नहीं, बीमा तो नहीं करवा रखा।"

"तब फिर यूं कर चालीस-पचास हज़ार का तुरन्त ही बीमा करवा ले।"

"इससे क्या लाभ होगा ?"

गोपालसिंह ने उसके कान के पास मुंह ले जाकर कुछ कहा, जिसको सुनते प्रेम का रंग उड़ गया और "हैं" कहने के पश्चात उसके होंठ खुले ही रह गए।

तनिक तेज़ी के साथ गोपालसिंह बोला, "डर क्यों गया है ? यह तो आजकल के व्यापारियों के बाएं हाथ का काम है। प्रेम ! इस संसार में बिलकुल ही धर्मात्मा बने रहने से काम नहीं चलता। बुद्धिमानों ने कहा है—'दुनिया खाओ मक्कर से और रोटी खाओ ठक्कर से।'

"अच्छा सोचूंगा इसके बारे में" कहकर प्रेम उठा और जमना की बैठक की ओर चल पड़ा।

"हां, सोच लेना।" पीछे से आवाज़ देकर गोपालसिंह बोला, "परन्तु जो भी काम करना हो, तनिक होशियारी से करना।"

"अच्छा, देखूंगा।" कहकर प्रेम दुकान से नीचे उतर गया, परन्तु अपने मित्र की यह सलाह उसके मन को जची नहीं—वह दुकान को आग लगाने की बात को सोचकर ही डर से कांप उठा था।

अभी प्रेम दुकान से नीचे उतरा ही था कि गोपालसिंह ने पीछे से

आकर उसे धीरे से कहा, "ऐसे कर, पहले गोकल की दुकान पर जा, दुकान अभी खुली होंगी, एक अच्छी-सी साड़ी उसके लिए लेते जाना।"

बेशक प्रेम अपनी प्रेमिका के लिए घर से एक बहुत सुन्दर भेंट लेता आया था, जिसके बारे में वह गोपालसिंह को बता न सका, परन्तु अपने मित्र की यह सलाह भी उसे पसन्द आई। अकेली एक भेंट भी क्या होती है ? कम से कम दो तो हों, ऐसा सोचकर वह गोपालसिंह से बोला, "अच्छा ले जाऊंगा।" और वह गोकल की दुकान की ओर चल दिया।

२१

प्रेम, जमना के मकान पर पहुंचा। दरवाज़ा बन्द था, भीतर से ऊंची-ऊंची आवाज़ आ रही थी, "बेटी, तुझे खाना खाए कितने दिन हो गए हैं ? यह भी कोई बात है ? ऐसे किए हमारा कहीं गुज़ारा होता है ? बाईजी, मेरे तो इसी काम में बाल सफेद हो गए हैं, परन्तु ऐसी मोहब्बत कभी किसी से नहीं की थी और···?"

इसके जवाब में ऐसी आवाज़ आई जैसे कोई रोकर और सिसकते हुए बोल रहा था, "माई ! यह कोई मेरे बस की बात है ? मन को बहुत समझाती हूं, परन्तु यह मुआ मानता ही नहीं, फिर क्या करूं ?"

प्रेम को समझते देर न लगी कि यह सब रोना-धोना उसके विरह में हो रहा है। उसको क्या पता था कि मियां करीम पहले ही आकर इसकी भूमिका बांध गए थे। उसका हृदय प्यार और माता से भर आया। वह अधिक देर ठहर न सका और दरवाज़े को खट-खटाते हुए बोला, "जमना !" भीतर से आवाज़ आई। "लो आ गए हैं। आवाज़ तो उन्हीं की लगती है।" और इसके साथ ही दरवाज़ा खुल गया।

प्रेम भीतर चला गया। बूढ़ी अपने भद्दे दांतों को निकालते हुए हंसकर बोली, "श्रीमानजी ! आपकी कितनी लम्बी आयु है ! अभी-अभी आपके बारे में ही बातें हो रही थीं। यदि आज भी आप न आते तो न जाने इसपर कौन-सा पहाड़ टूट पड़ता।"

प्रेम ने उसकी बातों की ओर ध्यान न दिया और वह सीधा जमना के पास पहुंचा।

जमना उस समय तकिए के सहारे उदास-सा मुंह लिए बैठी थी। उसके गले में खुले, परन्तु इत्र की सुगन्ध से महकते हुए, बाल थे। आंखों में लगता था जैसे आंसू बहकर काजल को बहाकर ले गए थे। उसकी साड़ी सिर से उतरकर इस प्रकार लापरवाही से उसके कन्धों पर गिरी हुई थी जैसे उसको अपने शरीर का तनिक भी ध्यान न हो। उस समय वह बिलकुल विरहिन-सी दिखाई देती थी जैसे कई दिनों के प्रीतम विरह ने उसे घायल कर दिया हो, जैसे निराशा ने उसे चकनाचूर कर दिया हो।

"मेरी जान! तेरा सेवक आ गया है।" कहते हुए प्रेम उसके पास जा बैठा और प्यार से उसका हाथ अपने हाथ में ले लिया। परन्तु तुरन्त ही जमना ने हाथ छुड़ाकर उसकी ओर से मुंह दूसरी ओर फेर लिया। इसके साथ ही वह तकिए पर सिर रखकर रोने का स्वांग करने लगी।

प्रेम इस दृश्य को कैसे देख सकता था। उसका हृदय तड़पने लगा। जमना के गले में अपनी बांह डालकर उसे अपनी ओर खींचते हुए बोला, "जमना! मुझे क्षमा कर दे, कई दिनों से तेरे पास नहीं आ पाया। परन्तु अगर मैं यहां होता तो अवश्य आता। अभी-अभी बम्बई से आ रहा हूं।"

यह शब्द प्रेम ने बड़े दुःखी भाव से कहे थे। जमना बाईं रूमाल से आंखों को रगड़ते हुए बोली, "क्षमा तो मुझे मांगनी है। उस दिन क्रोध में मेरे मुंह से दो-चार गाली निकल गईं और आप नाराज हो गए, उसी दिन से आपने आना छोड़ दिया। भगवान करे मेरी जुबान में कीड़े पड़ें। मैं तो उसी समय को लेकर पश्चात्ताप कर रही हूं। आपको क्या पता कि मैंने इतने दिन किस तरह गुजारे हैं। पूछो माई से!"

बूढ़ी वहां नहीं थी और न ही प्रेम को अपनी 'सतवन्ती' की सच्चाई को परखने की आवश्यकता थी। वह तो इस समय अपने-आपको स्वर्ग में बैठा अनुभव कर रहा था और पास बैठी हुई को एक देवी। जमना की दशा को देखकर उसकी आंखों में आंसू आ गए और वह सोचने लगा, 'सचमुच मैं बड़ा अत्याचारी हूं, जिसने बेचारी को इतना दुःख

पहुंचाया ।'

हार जेब में से निकालकर, उसके गले में डालकर और साथ ह कागज में से साड़ी को निकाल, उसके सामने रखते हुए वह बोला, "जमना बाई, मैं नहीं जानता था कि मेरे वियोग में तू इस तरह तड़पेगी। भविष्य में कभी भी ऐसा नहीं करूंगा।"

हार पर दृष्टि पड़ते ही जमना का तन-मन खिल उठा। उसको आशा भी नहीं थी कि भूखा-नंगा प्रेम उसके लिए इतनी कीमती भेंट लाएगा उसकी आंखें चौंधिया गईं।

गोपालसिंह ने करीम द्वारा कहलवा भेजा था कि प्रेम जो कुछ भी लाए, वह स्वीकार न करे—लौटा दे। परन्तु हार जैसी वस्तु जमना कं बैठक से बाहर कैसे जा सकती थी।

हार-प्राप्ति की खुशी में जमना ने आज का प्रेम-नाटक बड़ी सफा और सुन्दरता के साथ खेलना शुरू किया।

वह लापरवाही की मुद्रा बनाते हुए बोली, "यह सब वस्तुएं किस लिए-लाए हो?"

"तेरे लिए, मेरी जान!"

"इनको जाते हुए साथ लेते जाना।"

"क्यों?"

"मैं इन वस्तुओं की भूखी नहीं, मैं तो तुम्हारे प्यार की भूखी हूं भगवान की कृपा से मेरे पास सब कुछ है और ये सबकुछ तुम्हार ही है।"

उसके त्याग को देखकर प्रेम का हृदय स्नेह से ओत-प्रोत हो गय वह बोला, "और मेरा सब कुछ तेरा है जमना। फिर जब तेरे और में कोई अन्तर नहीं तब तू इनके लेने से इन्कार कैसे कर सकती है।"

"मेरे पास पहले ही इतने गहने और धन-दौलत है कि सम्भा कठिन है। मुझे और क्या करना है?"

"अच्छा यह तो तुझे लेना ही पड़ेगा।"

"नहीं, तुम्हें एक बार जो कह दिया है कि मैं नहीं लूंगी।"

"पर क्यों? क्रोध खतम नहीं हुआ अभी?"

"तुम्हारे से नाराज होकर मैंने रहना कहां पर है, जिसके

एक-एक क्षण दुःखदाई बन जाता है।"

"फिर लेती क्यों नहीं ?"

"इसका जवाब अभी नहीं दे सकती।"

"क्यों ?"

"तुम्हें विश्वास नहीं होगा।"

'तेरा विश्वास नहीं करूंगा ? ऐसा कभी सम्भव हो सकता है ?"

"हम लोगों पर विश्वास कौन करता है, भले ही हम देवी बनकर दिखा दें।"

प्रेम पर उसके प्रेम का और गहरा रंग चढ़ गया। उसने जमना बाई को अपनी बाहों में बांध लिया और बोला, "जमना बाई। तुझे मेरी कसम, जो लौटाए।"

क्रोध से जमना बोली, "तुम्हें कितनी बार कह चुकी हूं कि तुम्हारा जिस दूसरी कसम के लिए भी मन करे, वह डाल दिया करो, परन्तु अपनी कसम न डाला करो। अच्छा, तुम्हारी कसम को तोड़ने के लिए मैं आज के दिन हार को रख लेती हूं, परन्तु कल इसे अवश्य लेते जाना और यह साड़ी अपनी पत्नी को मेरी ओर से भेंट दे देना।"

क्योंकि साड़ी के बारे गोपालसिंह का यही उसे आदेश था, और इस बात को आगे कैसे बढ़ाना था, जमना बाई ने अपना पार्ट अदा करना शुरू किया।

थोड़ी देर चुप रहने के पश्चात् वह कहने लगी, "क्या सोच रहे हो ? यही न कि अपनी पत्नी के आगे मेरा जिक्र नहीं करना चाहते, न करो। बल्कि मैं भी नहीं चाहती। फिर कोई और बहाना बनाकर यह साड़ी उसे दे देना।"

प्रेम बुझे से चेहरे से बोला, "नहीं, मुझे कोई उसका डर है, परन्तु······।"

"मेरे चांद, उलझनों में क्यों फंस गए हैं ? और नहीं तो कह देना यह साड़ी तुम्हारे किसी मित्र ने दी है। बात यह है कि मैंने आपकी पत्नी को भेंट भेजनी आवश्यक है चाहे किसी बहाने भी भेजूं।"

"अच्छा ऐसे ही सही" कहकर प्रेम सोचने लगा, 'चलो हार भी बच गया और साड़ी भी और ऐहसान मुफ्त का।'

जमना को डर था गोपालसिंह से। वह सोचने लगी, 'अगर उस डाकू को हार का पता चल गया वह आते ही अपना हिस्सा मांगने लगेगा और करीम अपना कमिशन अलग से मांगेगा।' साथ ही वह और कई, बातें सोचकर बोली, "तुम बहुत ही भोले हो, अभी तुम्हें दुनियादारी की हवा भी नहीं लगी।"

इसका अभिप्राय जानने के लिए प्रेम ने पूछा, "क्यों ?"

"क्योंकि मोहब्बत का राज़ हमेशा मन में ही रखना चाहिए। मैं नहीं चाहती कि हमारे प्रेम में कोई दूसरा टांग अड़ाए, भले ही वह गोपालसिंह हो या दूसरा कोई।"

प्रेम सोचने लगा बात तो ठीक है, यदि गोपालसिंह को जमना के इस ऊंचे और पवित्र प्रेम का पता चल गया तो कल को जमना की लाखों की सम्पत्ति मेरे हाथ लगेगी तो उसका हृदय शान्त रहेगा ? वह कहने लगा, "मैं भविष्य में हमेशा इस राज़ को मन में रखूंगा, जमना।"

"गोपालसिंह से भी ?"

"अगर तू कहे तब।"

"अवश्य, क्योंकि वह हमारे प्यार से जलता है।"

"मेरा पहले भी यही विचार था, केवल तेरे से पूछना चाहता था।"

"हम अपने रास्ते में किसीको नहीं आने देंगे।"

"बहुत अच्छी बात है जमना, मैं भविष्य में कभी उसे भेद नहीं दूंगा।"

इस प्रकार कितनी देर तक यह प्रेम वार्तालाप चलती रही और अन्त में वह साढ़े-ग्यारह बजे बैठक से नीचे उतरा। जाते समय जमना ने साड़ी को उसी प्रकार कागज़ में लपेटकर उसे दे दी।

प्रेम बैठक से उतरकर घर की ओर चल पड़ा और वह मन में सोचने लगा चलो यदि सट्टे में तीन काने निकले हैं, इधर तो पौ बारह हो गए हैं। बस मैं होऊंगा और जमना बाई की दौलत।

२२

प्रात:काल उठते ही शान्ति ने अपने सिरहाने की ओर एक पैकेट रखा हुआ देख, उसे खोला। उसमें बन्धी एक कीमती साड़ी को देखकर उसने अपने पति से पूछा, "यह कहां से लाए हो ?"

शान्ति के इस प्रश्न का उत्तर देना पड़ेगा, इसके बारे में पहले से ही जमना ने उसे सिखा रखा था। वह जवाब में बोला, "गोपालसिंह की पत्नी ने तेरे लिए भेजी है।"

"मेरे लिए ? इतनी कीमती साड़ी उसने मेरे लिए भेजी है ? कहते हुए शान्ति की आखें खुशी से चमक उठी। गोपालसिंह और उसकी पत्नी के प्रति उसके हृदय में प्रेम उमड आया।

प्रेम ने जवाब दिया, "इतने बड़े घर की बहू-बेटी के लिए यह कौन-सी बड़ी बात है, ऐसी साड़िया तो गोपालसिंह की पत्नी के पांव तले दबी रहती हैं।"

एक चीज के बदले दूसरी चीज देने का तो स्त्रियों को बडा चाव होता है। शान्ति यह सोचकर कि उसे इससे भी बढकर चीज देनी चाहिए, वह अपने पति से बोली, "आपको जो मैंने कहा था कि गोपालसिंह को कहना किसी दिन अपनी पत्नी को यहां लाए, आपने कहा था ?"

प्रेम ने तो अपनी गर्दन छुड़ाने के लिए झूठ बोला था, परन्तु यह झूठ उसी के गले उलटा आ फंसा। वह बोला, "कहा था। कहता था लाऊंगा कल या परसों तक।"

शान्ति बोली, "परसों हम उनको खाने के लिए कह दें। जो हमारे लिए इतना करते हैं, हमें भी तो उनके लिए कुछ न कुछ करना चाहिए।"

प्रेम भूल-भुलैयां में फंस गया। आखिर उसे शान्ति का कहना मानना ही पड़ा।

उसी शाम को प्रेम ने गोपालसिंह की दुकान पर जाकर उसे सारी बात बताई। हार के बारे में तो उसने कुछ न कहा, क्योंकि जमना-बाई ने उसे एक तरह से मना कर दिया था और फिर उसकी अपनी भी इच्छ

न थी, परन्तु साड़ी का किस्सा उसने आदि से अन्त तक उसे कह सुनाया।

अन्धा क्या मांगे, दो आंखें। गोपालसिंह तो पहले ही यही चाहता था। उसकी इच्छा का पहला पग सफलता से उठ गया था, इसलिए वह अपने भाग्य और मना बाई की सराहना करने लगा। उसके द्वारा छोड़ा गया तीर निशाने पर लगा था। वह बोला, "अच्छा प्रेम! हम दोनों पति-पत्नी का खाना परसों तुम्हारे घर। हम ठीक प्रातःकाल दस बजे पहुंच जाएंगे।"

हैरानी से उसकी ओर देखकर प्रेम ने पूछा, "तेरी पत्नी! कहां से आएगी?"

"इस बात की तुझे क्या चिन्ता है, तुम मेरे साथ मेरी पत्नी देख लेना, चाहे कहीं से भी लाऊं।"

वह गोपालसिंह की बात से सहमत हो गया। इस प्रकार उसने परसों के लिए उसे प्रीति-भोज का निमन्त्रण दिया।

इसके पश्चात् उसे एक और बात याद आ गई और वह गोपालसिंह से पूछने लगा, "अगर शान्ति ने पूछ लिया कि तुम्हारा घर कौन-सी गली में है तो फिर क्या जवाब देगा?"

गोपालसिंह सीना फुलाकर बोला, "मेरा अपना मकान जो सुनारों वाली गली में है। बस उसी घर का पता बता दूंगा।" इसके पश्चात् जब गोपालसिंह ने पिछली रात के बारे में पूछा कि जमना बाई ने कैसा बर्ताव किया था तो उसने इधर-उधर की मारकर उसका घर पूरा कर दिया और हार के बारे में कुछ न कहा। अपनी ओर से वह जो मोर्चा जीतकर आया था, उसे गोपालसिंह से छिपा रहा था।

प्रेम की रुपयों के बारे में चिन्ता कुछ हद तक समाप्त हो गई थी। उसको यह पूरी आशा थी कि सप्ताह के भीतर ही जमना बाई की सारी दौलत उसकी अपनी पेटी में होगी और मिनटों में सभी बिगड़े काम बन जाएंगे।

गोपालसिंह के पास वह अधिक देर नहीं बैठ सकता था क्योंकि उसे जमना बाई के पास जाने की जल्दी थी। कल उसने यह निर्णय ले लिया था कि वह बेनागा जमना बाई को दर्शन देने जाएगा और उसके विरह में तपते हृदय को शान्त किया करेगा।

दिन के साढ़े-ग्यारह बजे हैं। हाल बाज़ार में से, एक बढ़िया किराए का टांगा कटड़ा जैमलसिंह के रास्ते में चौक पासीया की ओर जा रहा है जिसमें सीट पर दो सवार बैठे हैं—एक स्त्री और एक पुरुष।

पुरुष सवार आयु में बेशक कुछ बड़ा है परन्तु उसने रंग-ढंग से अपने आपको इस प्रकार सवार रखा है कि वह २५ वर्ष से अधिक का नहीं लगता।

उसने अपनी छोटी-छोटी मूछों को बल देकर तीखी बना रखा है। सिर पर बेल-बूटेदार पटियालवी सहजे में संवार कर पगड़ी बांधी हुई है। गले में बोसकी की आधी बांहों वाली कमीज और नीचे चूड़ीदार पजामा पहन रखा है। उसके पांव में फलैक्स के चमकदार जूते हैं और रेशमी कोट की तह लगाकर उसने जांघों पर रखा हुआ है।

उसकी साथी स्त्री का कद तनिक छोटा है। रंग उसका बहुत गोरा नहीं परन्तु पीलेपन में है, परन्तु दो-रंगे पाउण्डर की सहायता से उसने इस कमी को पूरा कर लिया है। सुरमा डाल लेने से उसकी आंखें वास्तविकता से कुछ अधिक मोटी दिखाई दे रही है। उसने बादामी रंग की साड़ी पहन रखी है, परन्तु सिर उसका नंगा है। बालों की बनावट से ऐसे लगता है कि जैसे उसने आज अपना, कंघी और शीशे का सारा वक्त इसी काम के लिए लगा दिया हो।

"बड़ी देर कर दी तूने, जमना।" उसके साथी ने उसके चेहरे को गौर से देखते हुए कहा, "दस बजे पहुंचना था, परन्तु अब ग्यारह बजने वाले हैं। तूने तो बस हार-शृंगार में दो घण्टे लगा दिए हैं।"

सिकुड़ती हुई आंखों और बन्द होठों में मुस्कराकर वह उसकी ओर देखकर बोली, "लड़कियों को नववधू बनने के लिए कई वर्ष लग जाते हैं, मैंने तो मिस से मिसेज बनने में केवल दो ही घण्टे लगाए हैं।"

"वहू बन तो गई है, परन्तु यदि बहू का पार्ट अदा करने में भी सफल हो गई तो तब मानूंगा। वह कैते हैं, 'सुरमा डालना तो सरल है पर उसे निभाना बड़ा कठिन होता है।'"

"हीर के मामा, अब मेरे से और क्या पार्ट करवाएगा? यही न

कि जाकर दो-चार इंधर-उधर की सुना आऊं। वहां और करना ही क्या है?"

"खैर देखा जाएगा, परन्तु जमना—नहीं श्रीमति सरनकौर जी! उस दिन की बात तो तूने बताई ही नहीं। सुना कैसे बीती उस दिन।"

"बीतनी क्या थी, बस उड़ते हुए पंछी को फिर फंसा लिया, तेरा कहना तो नहीं टालना था न।"

"क्या कुछ दे गया था?"

"साड़ी लाया था और मैंने लौटा दी, तूने जो कहा था।"

जमना सारा भेद खोलना नहीं चाहती थी क्योंकि एक शिकार के लिए दोनों ओर से दो जाल बिछे हुए थे। गोपालसिंह प्रेम को अपने जाल में फंसाना चाहता था और जमना बाई अपने जाल में। उधर तीसरा करीम अपने अलग ही मनसूबे बनाए फिरता था। संक्षिप्त में यह कि किसी को भी एक-दूसरे की सांझी पर विश्वास न था, और हर एक चाहता था कि सारा का सारा माल उसीके हाथ लगे।

जमना ने फिर पूछा, "अच्छा एक बात और बता, तू मुझे ले तो चला है उसके घर बहू बनाकर और यदि वह तेरा बाप बुरा मान गया तो फिर क्या करेगा?"

गोपाल से जवाब में बोला, "कौन, प्रेम? तू भी जमना बिलकुल जंगली है। मेरे से वह नाराज़ हो सकता है? और यदि हो भी गया तो दो-चार चिकनी-चुपड़ी बातों से उसे फिर मना लूंगा। ऐसे लोगों की नाराज़गी से मैं नहीं डरता। परन्तु तू अपना ध्यान रखना। तेरे से नाराज़ न हो जाएं, क्योंकि आज हमने उससे बहुत से काम निकालने हैं।"

"यदि मेरे से नाराज़ हो गया फिर?"

"फिर तेरा सिर। तू उसको तनिक और दाना डाल देना। बेशक कह देना, गोपालसिंह को लूटने के लिए मैंने ऐसा किया है। तुम साफ-साफ कह देना कि मैं गोपालसिंह को बुद्धू बनाकर उसकी सारी जायदाद पर कब्ज़ा कर लूंगी और फिर तेरे को सौंप दूंगी। बस तेरी इतनी सी बातों से ही वह फूलकर गोलगप्पा बन जाएगा। आजकल पैसे के पीछे तो वह पागल हुआ फिरता है।"

यह बातें हो ही रही थी कि तांगा चौक पासीयां में पहुंच गया और एक हवेली के आगे जाकर रुक गया।

२४

शान्ति आज प्रातःकाल से ही मेहमानों के लिए खाने आदि का प्रबन्ध बड़े ही सुचारू ढंग से कर रही है। प्रेम भी सुबह से घर पर ही है। वह इस बात से बड़ा खुश है कि शान्ति के हृदय में गोपालसिंह के प्रति बेहिसाब आदर और श्रद्धा है, परन्तु वह बार-बार एक ही बात को सोचे जा रहा था कि गोपालसिंह पत्नी के रूप में किसको लाएगा।

काम में हाथ बंटवाने के लिए शान्ति ने अपनी सहेली सुशीला को भी बुलवा लिया था। दोनों ने मिलकर रसोई का काम दस बजने तक समाप्त कर लिया था और बैठक को सज्जाकर खाली हो, उसमें आ बैठी थी। मां नारायणी कुछ अस्वस्थ थी। वह रसोई का थोड़ा-बहुत काम करके मियानी की छत पर अपनी चारपाई पर लेटी हुई थी।

प्रेम भी इस समय उन दोनों के पास बैठा गप्पें हांक रहा था। सुशीला की आज की खास तड़क-भड़क को देखकर बावला बनता जा रहा था और अपनी प्यासी आंखों को उस ओर देखने से रोकने के लिए बड़ी कठिनता से प्रयत्न कर रहा था, क्योंकि शान्ति उसके समीप बैठी थी।

सुशीला को दूसरों की नकलें उतारने का बड़ा शौक था। वह जब मुंह बनाकर किसी बड़े-बूढ़े की नकलें उतारती, तो प्रेम मुग्ध हो उठता था। विशेषकर प्रेम की मां की नकलें तो, शान्ति के रोकने पर भी, वह बड़े मसाले लगा-लगाकर उतारती थी। प्रेम और सुशीला इस समय बड़े घुल-मिलकर और हंस-हंसकर बातें कर रहे थे, शान्ति भी इस काम में भाग ले रही थी, परन्तु उसका हृदय खुश नहीं था, कुछ बुझा-बुझा सा था। उसको पति की गिरावट का गम खाए जा रहा था। वह दोनों के साथ बातें करती हुई भी मन में सोच रही थी 'कि गोपालसिंह से कैसे कहूंगी अपने मित्र को ठीक रास्ते पर लाए, आदि, आदि।'

बातें करते-करते सुशीला शान्ति से कहने लगी, "बहन ! जीजा जी ने जो दो-तीन 'स्वर' मुझको सिखाए थे वे मुझे भूल गए हैं। एक दिन बताकर फिर कई-कई दिनों तक सिखाता ही नहीं।" सुशीला अब काफी हिल-मिल गई थी, जिससे आदर-श्रद्धा का प्रश्न ही नहीं उठता था।

अपनी सहेली की शिकायत को स्वीकार करते हुए शान्ति पति से बोली, "आपको बताते हुए बोझ लगता होगा? शुरू ही किया है तो अब उसे पांच-दस 'स्वर' सिखा ही दो।"

प्रेम अपने भावों को छिपाते हुए बोला, "समय भी मिले, सारा दिन तो काम से फुर्सत नहीं मिलती। फिर इसके दिमाग में तो शायद भूसा भरा हुआ है। आज कुछ सिखाओ तो कल सुबह तक भुला देती है।"

शोखी के साथ सुशीला अपने हाथ से प्रेम को चिढ़ाते हुए बोली, "मेरे दिमाग में तो भूसा भरा हुआ है और तेरे दिमाग में मूली के पत्ते? सिखाना तो खुद को नहीं आता और भांडा फोड़ता है मेरे सिर पर। नाच न जाने आंगन टेढ़ा।"

इस शोख ताने-बाजी को सुनकर प्रेम का हृदय मचल उठा। परन्तु ऊपर से लापरवाही दिखाते हुए बोला, "अच्छा बाबा, तू कोई लायक गुरु ढूंढ ले।"

शान्ति को ऐसे लगा जैसे प्रेम ने यह क्रोध में कहा हो। वह सुशीला से कहने लगी, "पगली! सीखने वालों को तेरी तरह तो नहीं लड़ना चाहिए। तुझे अपने गुरु का आदर करना चाहिए।"

"देखूं" सुशीला ने मुंह बनाकर कहा, "बड़ा गुरु! दो स्वर बाजे के क्या आ गए और गुरु बन बैठा। तू सोचती है कि मैं तेरे पति के आगे माथा झुकाऊं। न बाबा! हम बाज आज ऐसी शागिरदी से। नहीं सिखाता तो न सिखाए। चूहे को हल्दी की गांठ मिली और पंसारी बन बैठा था।"

हंसते हुए प्रेम शान्ति से कहने लगा, "देखा है! इस जूठन......।"

उसकी बात को काटकर सुशीला बोली, "जूठन होगी तेरी मां वह जो नीचे चारपाई पर पड़ी है। और कुछ सुनना है?"

"अच्छा नवाबजादी! मैं हारा और तू जीती। जा वह पड़ा है

बाजा उठा ला।"

"इस तरह आ न सीधे रास्ते पर।" कहते हुए सुशीला शान्ति का बाजा उठा लाई और प्रेम उसको सिखाने लगा। शरारत की पुतली सुशीला एक-एक अंगुली बाजे पर रखती हुई बार-बार नखरे करती और प्रेम उसकी मेंहदी रंगी अंगुलियों को पकड़कर स्वरों पर रखता और दिखावटी क्रोध भी करता था।

जब फिर भी सुशीला की समझ में कुछ न आया तो वह तंग आकर उठ खड़ा हुआ, परन्तु इसी कमी को शान्ति ने पूरा कर दिया, उसे यह तर्ज याद थी, उसने आसानी से सुशीला को निकाल दी।

इस काम से छुटकारा पा, शान्ति क्लाक की ओर देखकर बोली, "अभी तक नही आए, आप तो कहते थे दस बजे आ जाएंगे, अब तो सवा-ग्यारह बजने को हैं।"

प्रेम जवाब देने को ही था कि नीचे से दरवाजा खटखटाने की आवाज आई।

"ले आ गए हैं।" कहकर वह खड़ा हो गया और उसके साथ वे दोनों भी।

नीचे जाने से पूर्व प्रेम ने खिड़की में से देखा और देखते ही उसका रंग पीला पड़ गया। गोपालसिंह के साथ थी मिस जमना बाई—वधू के रूप में सजी हुई। उसके मन में तरह-तरह के प्रश्न उठने लगे, परन्तु यह समय सोच-विचार करने का नही था। वह जल्दी से नीचे गया और उसके पीछे-पीछे शान्ति और सुशीला भी।

प्रेम को जो चिन्ता अधिक भयभीत कर रही थी, वह यह कि कहीं शान्ति जमना बाई को पहचान न ले, परन्तु फिर उसे याद आया कि शान्ति ने उसे बताया था कि उसने धर्मशाला में जमना बाई का मुंह नहीं देखा था। उसके मन को इस ओर से तो कुछ शान्ति मिली, परन्तु गोपालसिंह ने यह क्या पागलपन किया है—इस बात से वह बड़ा दुःखी होने लगा। इसके साथ-साथ उसे जमना बाई पर भी क्रोध आने लगा था जो कहा करती थी, 'मेरे चान्द! आपके बिना, दूसरे की ओर आंख उठाकर देखना भी मैं पाप समझती हूं।' हार के बारे में भी उसे चिन्ता थी कि कहीं शान्ति ने इस समय उसकी बात छेड़ दी तो

क्या होगा? 'खैर जो भी होगा देखा जाएगा। इस समय तो स्थिति को किसी तरह सम्भालना चाहिए।' यही सोचकर प्रेम उस जोड़े को बड़े आदर और प्रेम के साथ मिला।

सुशीला सहित शान्ति जमना बाई (जिसने अपना बनावटी नाम सरनकौर रख लिया था) से गले मिली और स्नेह भरे शब्दों में व्यंग कस कर बोली, "अभी तो काफी सवेर थी—बहनजी आप इतनी जल्दी आ गए।"

लज्जा का अनुभव करते हुए मुस्कराकर सरनकौर (जमना बाई) बोली, "बहन! क्या बताऊं, देर तो नहीं होनी थी, परन्तु यह सारी कृपा (गोपालसिंह की ओर देखकर) तुम्हारे इन देवर जी की है। ग्यारह बजे तो मुशकिल से दुकान पर से लौटे थे।"

जमना बाई की बात समाप्त होते ही गोपालसिंह शान्ति से कहने लगा, "भाभी! यह बिलकुल झूठ कहती है कि मैं दुकान से देरी से लौटा था। मैं तो प्रातःकाल से ही इसे जल्दी करने को कह रहा था, परन्तु इसे तो अपनी सहेलियों से फुर्सत ही नहीं मिलती, फिर मैं आकर क्या करता।"

जमना बाई अपने को निर्दोषी साबित करने के लिए बोली, "सहेलियों को मैंने थोड़ा न बुलवा भेजा था। मैं तो ठीक समय पर तैयार हो गई थी। घर से बाहर निकलने वाली ही थी कि मेरी सहेली, रायबहादुर पिण्डीदास की बहू, मिलने के लिए आ गई और उसके साथ सेठ दुर्गादास की लड़की और एक-दो और थीं। उनको पानी-वानी पिलाते घन्टा-डेढ़ घन्टा बीत गया। बहन! मैं तो स्वयं बड़ी लज्जित हूं आपके आगे।"

शान्ति बोली, "बहनजी! सहेलियों की देखभाल का काम इनको सौंपकर स्वयं चले आना था।"

अपने बारे में यह मधुरवाणी को सुनकर गोपालसिंह खुशी से फूल गया। इतना प्यार भरा लहजा! इतनी मीठी आवाज।

पास में ही बैठा हुआ प्रेम बोला, "हमारी भाभी इतनी भोली नहीं कि अपने पति को दूसरों को सौंपकर अकेले ही चली आती।"

इस प्रकार हंसी-मजाक करते हुए महमानों को बैठक में लाकर बैठा

दिया गया। वहीं पर खाना खिलाने का प्रबन्ध किया गया।

सुचारू ढंग से बनी हुई हर एक वस्तु को देखकर मेहमान मुग्ध हो गए, इसको छोड़ खाने में जो उन्हें आनन्द मिला वैसा आनन्द उन्हें जीवन में पहले कभी न मिला था। होटल और तदूरों के रसोइए चाहे लाख बार कोशिश कर लें परन्तु गृह-रानियों के हाथों बने साधारण से साधारण भोजन की भी वह बराबरी नहीं कर सकते। प्रकृति ने यह बहुमूल्य हुनर केवल भारतीय देवियों को ही दिया है। कहा नहीं जा सकता कि पश्चिमी सभ्यता इस हुनर को हमारी बहनों के पास कब तक रहने देगी।

पांचों ही सुशीला, शान्ति, जमना, प्रेम और गोपालसिंह खाना खाने के लिए बैठे। भले ही शान्ति उनमें सम्मिलित नहीं होना चाहती थी, परन्तु गोपालसिंह के बार-बार कहने पर सुशीला सहित उसे बैठना पड़ा। भोजन परोसने और बरताने के लिए नौकर उपस्थित था।

प्रीति-भोज में सम्मिलित हुए ये पांचों जीव वास्तव में अशान्त थे, किसी न किसी मनोविकार के शिकार।

गोपालसिंह की सारी चेतना शान्ति में लगी हुई थी। प्रेम का मन सुशीला पर मुग्ध हो रहा था और साथ ही जमना बाई के झूठे नगीने वाले आभूषणों पर मचल रहा था। जमना बाई अपनी कुरूपता की शान्ति की सुन्दरता के साथ तुलना करके मन ही मन जली जा रही थी, सुशीला की मस्त निगाह बार-बार प्रेम के चेहरे पर पड़ती और शान्ति सोच रही थी कि कोई अवसर मिले और वह गोपालसिंह को अलग ले जाकर अपने हृदय के दु:ख का हाल उसे सुनाए—पति को कुमार्ग से बचाने के लिए।

गोपालसिंह जिस तरह ललचाई हुई दृष्टि से शान्ति को निहार रहा था, प्रेम के हृदय को वह कांटे की तरह चुभ रही थी। उसके हृदय में गोपालसिंह के चरित्र सम्बन्धी कुछ शंका-सी उत्पन्न होने लगी, परन्तु फिर यह सोचकर कि यह मन का भ्रम है, वह अपना ध्यान दूसरी ओर लगाने की चेष्टा करने लगा, फिर भी गोपालसिंह आज दिनों की भांति उसे अच्छा नहीं लग रहा था। रुक-रुक कर उसे क्रोध आता कि वह जमना बाई को उसके घर पत्नी के रूप में क्यों लाया है। यदि उसने

ऐसा ही करना था तो रामबाग के कोठों पर और क्या कम थीं।

गोपालसिंह के प्रति प्रेम के हृदय में आज पहली बार ईर्ष्या और घृणा के अनदेखे भाव उत्पन्न हुए।

उधर जमना बाई अब तक सोचती थी कि प्रेम केवल उसके पीछे दिवाना है, परन्तु आज वह पहली नज़र में ही ताड़ गई कि वह सुशीला के लिए मरा जा रहा है। उसका निश्चय पक्का हो गया कि उसके साथ प्रेम का जो नाटक है केवल माया-प्राप्ति के लिए ही है।

वास्तव में स्वार्थी प्रेम का रंग देखने में जितना पक्का और गहरा लगता है, प्रयोग करने पर वह उतना ही घटिया। विशेष करके उस समय जबकि उसपर वासना रूपी मिट्टी की परत जम जाए, फिर तो उसे उड़ते देर नहीं लगती।

खाना खा लेने के पश्चात् दोपहर तक हंसी-मज़ाक और संगीत चलता रहा। शान्ति का गाना सुनकर गोपालसिंह अपने-आप में न रहा। सुशीला की कुछ बेसुरी परन्तु नखरों से भरपूर गज़लें प्रेम को पागल किए जा थीं और जमना तो थी ही गीतों की दुकान। शान्ति को न केवल जमना बाई का गाना ही अच्छा लगा, बल्कि उसकी रसीली बातों और हंसमुख तबियत ने शान्ति के हृदय में अपना स्थान बना लिया।

दोपहर को सुशीला कुछ समय के लिए अपने घर चली गई और प्रेम भी शाम की रसोई के लिए कुछ छुट-पुट लेने बाज़ार की ओर चला गया।

शान्ति ने गोपालसिंह और उसकी बनावटी पत्नी के आगे अपना दुःख खोलकर रखने के लिए यह अच्छा अवसर समझा।

एक चारपाई पर गोपालसिंह लेटा हुआ था और दूसरी पर शान्ति और जमना। इस समय शान्ति की भाभी और भाई के बारे में बातें हो रही थीं।

गोपालसिंह की हर एक बात का जवाब शान्ति बड़े आदर के साथ दे रही थी। जमना समझ गई कि गोपालसिंह की आंखों में कितना ज़हर भरा हुआ है और किस प्रकार वह शान्ति पर बलिहार हो रहा है। परन्तु दूसरी ओर शान्ति की भोली और निश्चल निगाह का उसके हृदय पर कुछ अजीब-सा प्रभाव पड़ रहा था।

बातों को जारी रखते हुए गोपालसिंह ने शान्ति से पूछा, "बीबी जी! आपने भी कभी अपने भाई और भाभी के साथ फिल्म में काम किया है या नहीं?"

स्वभावक सरलता के साथ शान्ति हंसकर बोली, "वह तो मुझे कई बार कह चुके थे, परन्तु मेरे को इस काम में लज्जा आती थी। एक बार स्टूडियो में जाकर उन्होंने मुझे जबरदस्ती कैमरे के सामने खड़ा कर दिया। उन्होंने मुझे एक भिखारिन का काम दिया। मुझे फटे-पुराने कपड़े पहना दिए और कहने लगे—'बर्तन वाला हाथ अमीर बने हुए कलाकार की ओर बढ़ाकर उसे दुःखी आवाज में कह—भगवान के नाम पर बाबा, कोई पैसा दे, कई दिनों से भूखी हूं।' मैं जैसे ही यह शब्द कहने लगी कि अपने-आप मेरी हंसी छूट गई। फिल्म का उतना टुकड़ा रद्दी हो गया। दूसरी बार फिर कोशिश की, फिर भी वही। उस दिन के बाद मैंने कान पकड़ लिए।"

सरनकौर (जमना) बोली, "बहन, भला इसमें हंसी की कौन-सी बात थी। तुम्हारी जगह यदि मैं होती तो इतना दर्दनाक पार्ट करती की स्टूडियो में खड़े सभी को रुला देती।"

शान्ति बोली, "अब तो मैं भी कर लूं, परन्तु उन दिनों तबियत कुछ अजीब-सी थी। दिन बड़े सुख से बीतते थे। हर समय हंसी-मजाक ही सूझता था। अब तो हंसने और खेलने का ढंग ही भूल गया है। चाहे जितनी बड़ी भी हंसी की बात क्यों न हो, हंसी आती ही नहीं। हंसने-खेलने के बहन, मेरे दिन बीत गए हैं।" कहते-कहते शांति ने एक गहरी सांस ली और उसकी आंखें भर आई।

गोपालसिंह को उसकी इस करुणा की मूर्ति में से बेहिसाब आनन्द मिला। उसने पूछा, "बीबीजी, अब तुम्हें कौन-सा दुःख है। भगवान की कृपा से तुम्हें किसी चीज की कमी नहीं।"

शान्ति बोली, "भाई साहिब! जैसी मैं आपको बाहर से सुखी दिखाई देती हूं यदि भीतर से भी ऐसी सुखी होती तो···।"

उसकी बात को काटकर जमना बोली, "परन्तु बात क्या है, बहन?"

"क्या बताऊं।"

गोपालसिंह बोला, "बीबीजी, मैं तो सोच रहा था कि आप बड़ी सुखी हैं, परन्तु आपकी बातों से तो ऐसे लगता है जैसे आप किसी बहुत बड़े कष्ट में हों। यदि बताने में कोई हानि न हो तो बता दो। शायद मैं भी आपके किसी काम आ सकूं।"

शान्ति फिर गहरी सांस लेकर बोली, "भाई साहिब, आपको बताने के लिए तो मैं कितनी देर से सोच रही थी। क्या पता आपकी वजह से ही मेरी सुनवाई हो जाए।"

जमना ने जल्दी में पूछा, "बता बहन, ऐसी कौन-सी बात है?" इसके साथ ही गोपालसिंह ने कहा, "बीबीजी, संकोच न करो, हमें अपने घर के ही सदस्य समझो।"

"आपसे छुपाकर क्या करना है? मैं तो आगे-पीछे आपकी प्रशंसा करती रहती हूं। परसों जब आपकी ओर से साड़ी लेकर आए थे, मैंने कहा, भाई साहिब का खाना करना है। परन्तु वास्तव में हृदय से मेरा विचार तो आपको बुलाने का इसीलिए था कि आपको कहूं कि अपने भाई को भी कुछ बुद्धि दो।"

हैरानी वाला मुंह बनाकर गोपालसिंह बोला, "प्रेम को?"

"उन्हीं को ही। यदि आप जैसे मित्र के रहते भी उनका चाल-चलन इसी तरह ही रहा तो फिर वह किसके हाथों सुधरेंगे।"

"परन्तु बात क्या है, बीबीजी? विस्तार से बताओ न। यदि प्रेम में कोई ऐसा दोष है तो मैं उसको मिनटों में ठीक कर लूंगा। मेरा कहा वह कभी नहीं ठुकराता।"

शान्ति के हृदय को कुछ ढाढ़स बंधा। उसने कहा, "इसीलिए तो मैंने आज आपको कष्ट दिया था। भाई साहिब, आपसे क्या छिपा है? मेरे ससुर की दौलत का कोई हिसाब नहीं था और एक ही वर्ष में हमारे घर में बर्तन बजने लगे हैं। ऋण से हमारा बाल बाल उलझा पड़ा है, और वह अब भी न आगे की सोचते हैं और न पीछे की, मुट्ठी भर-भर कर लुटाए जा रहे हैं।"

"लुटाता जाता है?" और अधिक हैरान होकर गोपालसिंह ने पूछा, "कहां? मैं तो आज तक उसे बड़ा समझदार समझता था।"

"भाई साहिब, समझदारी की पूछते हो! किसी में एक दोष तो

सात पीढ़ियों की धन-दौलत को मिट्टी में मिला देता है। परन्तु जहां कई दोष हों, वहां क्या दशा होगी?"

जमना भी उसी तरह हैरान होकर बोली, "परन्तु आजकल बहन, उनके बारे में कुछ सुना तो नहीं। क्या-क्या दोष हैं?"

"बहन! दोषों की गिनती, तुझे क्या बताऊं? सभी दोषों को मैं सहन कर लेती, यदि वह मुई एक जोंक न चिपकी होती। जो पैसा-धेला हाथ आता है बस उसी कलमुंही के पेट में डाल आते हैं। भगवान करे गढ़े में गिरे वह मुई। उसने तो हमारे घर में मुट्ठी भर चने तक नहीं छोड़े। इतना कुछ खा-हड़पकर भी 'मरजानी' हमारा पीछा नहीं छोड़ती।"

अनजान बनकर जमना ने पूछा, "परन्तु वह है कौन?" गोपालसिंह बोला, "सचमुच? बीबीजी, यह तो आपने बड़ी अजीब बात बताई है। परन्तु है कौन वह?"

शान्ति बोली, "कहते हैं कोई जमना बाई है।"

"जमना बाई?" मुंह बनाकर गोपालसिंह ने कहा, "कौन-सी गली में रहती है?"

"भाई साहिब, यदि कोई गलियों में रहनेवाली होती तो मैं उससे हाथों से न निपट लेती? गली में नहीं, वह किसी बाजार में रहती है, जहां मेरी पहुंच नहीं।"

"अच्छा!" गोपालसिंह ने अपना जोश दिखाते हुए कहा, "आ लेने दे उसको आज, देखना तो सही, फिर कभी उसका नाम ले गया तो। परन्तु आपने इतनी देर से पहले क्यों न मुझको बताया?"

"क्या करती भाई साहिब! कहते हैं कि पेट को चीरूं तो पट्टी कहां पर बांधूं। ऐसी बातें कोई बताने की होती हैं? जब सब ओर से निराश हो गई हूं तो बताया है आपको। परन्तु भाई साहिब, मेरे सामने उन्हें कुछ न कहना, जिकर भी न करना, नहीं तो मेरी जान ले लेंगे।"

"मेरा विचार तो था कि अभी उसके कान पकड़वाता, परन्तु ठीक है, कल बुलाकर उसे ठीक करूंगा। आप, बीबीजी! तनिक भी चिन्ता न करना। मैं उस बदकार औरत का पता लगाकर भी उ[illegible] करूंगा।" कहते-कहते गोपालसिंह ने आंख बचाकर जमना के

देखा और जमना ने उसकी ओर।

शान्ति का रोम-रोम गोपालसिंह को धन्यवाद दे रहा था और साथ में सरनकौर (जमना) को भी।

बातों का विषय अभी यहां तक ही पहुंचा था कि प्रेम सौदा लेकर आ गया।

इसके पश्चात बातों का विषय किसी दूसरी ओर बदल गया। और काफी समय हंसी-मज़ाक में बीता। एक-दो बार शान्ति ने चाहा कि वह जमना से पूछे कि उसने हार बनवा लिया है या नहीं, परन्तु यह सोचकर कि नई सहेली उसे गलत न समझ बैठे, वह चुप ही रही।

रात के लगभग ग्यारह बजे यह दोनों जोड़े आपस में बिछुड़े। अपने दयालु महमानों को मिलकर जितनी प्रसन्नता शान्ति को हुई, उतना ही दु:ख उसको उनसे बिछुड़ने पर हुआ।

चलते समय शान्ति ने जमना को एक बढ़िया साबुन का डिब्बा भेंट के रूप में दिया, जिसे जमना ने बड़े प्रेम और आदर के साथ स्वीकार कर लिया।

जमना के कुटिल और पापी हृदय ने आज पहली बार अपनेभीतर कुछ नाममात्र को पवित्रता, प्यार और सहृदयता के अंश का अनुभव किया। और गोपालसिंह अपनी वासनामयी और स्वार्थी मंज़िल पर पहुंचने के लिए एक सीधी और पथरीली सड़क का। शान्ति की दशा देखकर और सुनकर उसका हृदय क्षण भर के लिए पसीज-सा गया, परन्तु संस्कारों ने फिर उसे नरक के रास्ते पर चलने को बाध्य कर दिया, बल्कि पहले से भी अधिक दृढ़ता के साथ।

प्रेम को इसी बात की खुशी थी, कि आजका यह मिलन बिना किसी अड़चन के समाप्त हुआ था—उसकी कोई पोल नहीं खुली थी।

२५

पाप का पौधा मन में उपजता, मस्तिष्क में बढ़ता और शरीर में फलता-फूलता है।

अपनी पाप-यात्रा के पहले पडाव तक सफलता के साथ पहुंच जाने के पश्चात गोपालसिंह भविष्य के बारे में सोचने लगा, 'शान्ति को प्राप्त करना तो बड़ा सरल है, परन्तु आवश्यकता है विवाहित बने रहने की। केवल एक दिन में ही शान्ति मेरे साथ इतना घुन-मिल गई है, यदि इसी तरह दो-तीन बार अवसर मिला तो बस शान्ति सदा के लिए मेरी हो जाएगी, और प्रेम ? वह तो वैसे ही दो में से एक स्थान पर गया समझो—जेल में या नरक में। यदि उसके जाने में कुछ देर भी है तो मैं इस देर को 'झटपट' में बदल दूगा। फिर तो बस चारों ओर अपना ही राज्य होगा। इसीलिए सबसे पहले मुझे परिवार वाला बनना चाहिए।'

रात से लेकर दूसरे दिन की दोपहर तक गोपालसिंह इसी प्रकार की सोच-विचार में डूबा रहा।

इस समय वह करीम सहित अपने घर में बैठा शराब पी रहा था।

उस दिन करीम की सहायता से ही उसकी इच्छा रुपये में से सोलह आने पूरी हुई थी। इसीलिए यदि फिर वह करीम को जमना के पास भेजना चाहता था, उसी प्रकार का एक और सौदा करने के लिए। परन्तु इस काम को गोपालसिंह इस प्रकार गुप्त ढंग से करना चाहता था, जिससे करीम को वास्तविकता का पता न चल सके। यही कारण है कि वह अपने अभिप्राय को सीधी तरह न प्रकट कर, इस प्रकार बोला, "कल तो मिरज़ा , खूब मज़ा आया।"

शराब के नशे में झूमता हुआ करीम बोला, "किस चीज़ का मज़ा ?"

इसके जवाब में गोपालसिंह ने करीम को बताया कि किस तरह वह जमना बाई को अपनी पत्नी बनाकर प्रेम के घर कल मेहमान बनकर खाना खाने गया था।

करीम को यह जानकर कोई खुशी नहीं हुई, बल्कि वह उससे मन ही मन जलने लगा कि गोपालसिंह ने इस विषय में उससे सलाह क्यों नहीं की। वह व्यंग-भरे लहजे में कहने लगा, "अच्छा, तब तो सरदारजी कल चोरी-छिपे दावत खा आए हैं।"

"चोरी-चोरी ?" गोपालसिंह ने उसकी बात को टिलाते हुए कहा,

"इस चोरी-चोरी में भी करीम एक राज था जिसका अच्छा परिणाम जल्दी ही तेरे सामने आ जाएगा।"

करीम ने टेढी निगाहों से उसके चेहरे को देखकर कहा, "कोई बात नहीं, तेरी तू ही जाने। हां, आज क्या काम पड़ गया था? यदि तेरा नौकर और पांच मिन्ट तक न आता तो मैंने साढ़े-दस की गाड़ी से जालंघर चले जाना था। मेरी बहन का लड़का वहां रहता है और उसके ससुराल वालों की कई लाखों की जायदाद है वहां। बस एक ही सन्तान है, उनकी मेरे भान्जे की पत्नी। ससुर उसका चल बसा है और अपनी जायदाद का मुझे ट्रस्टी घोषित कर गया है। तू तो जानता है कि इतनी बड़ी जायदाद की देखभाल करना कोई बच्चों का काम तो नहीं न। मेरा भान्जा बार-बार लिखता है—मामाजी! आप अमृतसर में बैठे क्या कर रहे हैं, यहां पर आ जाओ, मेरे से यह सारे झमेले नहीं सम्भाले जाते। परन्तु गोपाल मियां! मेरी आदत-सी बन गई है, अमृतसर को छोड और कहीं पर मेरा मन ही नहीं लगता।"

इलमदीन सेजे के बेटे गनी की हुई थी। तुझे याद होगा, कितना रुपया था उसके पास! दरवाज़े पर मोटर-गाड़ियां खड़ी रहती थी। दिनों में ही सब सफाया हो गया। उस दिन 'टम्' के मेले पर अचानक मिल गया था। मेरी आदत है जब कोई मिल जाए तो उसका हाल-चाल पूरे विस्तार के साथ पूछता हूं। बड़ा बुरा हाल था उसका, फटी हुई जूती, चिथड़े हुए कपड़े—पहचाना ही नहीं जाता था। मैंने पूछा—सुना भई गनी तू कहां? बोला, "मैंने तो करीम! एक जूतों वाली दुकान पर नौकरी कर ली है···!"

तंग आकर गोपाल बोला, "करीम! एक तो तू बड़ा समय नष्ट कर देता है। तुझे कितनी बार समझा चुका हूं कि काम के समय व्यर्थ की बक-बक न किया कर। अगर हमने जल्दी ही कोई प्रबन्ध न किया तो सब हाथ से निकल जाएगा।"

वास्तव में मकान की बात करना तो करीम के आगे दाना डालना था। गोपालसिंह का इस समय तो असली और बड़ा निशाना शान्ति थी। इसीलिए गोपालसिंह ने करीम के आगे मकान की बात छेड़ी थी।

करीम के मुंह में लालच का पानी भर आया। वह पूछने लगा, "गोपालसिंह, मकान का रोना तो तू कई दिनों से रो रहा है, परन्तु कोई तरकीब भी सोची है।"

"हां, बहुत बढ़िया तरकीब सोची है। यदि भगवान ने चाहा तो आठ दिनों में ही सारा काम बन जाएगा।"

"परन्तु किस तरह?"

"बस, घर का भेदी बनकर।"

"घर का भेदी कैसे बना जाए?"

"मैं जो तुझे बताता हूं।"

"बता।"

"काम तो बड़ा सरल है, परन्तु इसके लिए मुझे कुछ दिनों के लिए गृहस्थी बनना होगा।"

"गृहस्थी! तेरा अभिप्राय विवाह करने से है?"

"ओ पगले! विवाह को फांसी देनी है? मेरा मतलब अस्थायी विवाह से है।"

"अस्थायी कैसे ?"

"जैसा कल किया था।"

"अच्छा, समझ गया तेरी बात। तेरा अभिप्राय जमना को कुछ दिनों के लिए पत्नी बनाने से है। ठीक है न ?"

"बस यही।"

"इसका लाभ क्या होगा ?"

"लाभ ? तू देखना तो सही। जिस समय प्रेम के घर में मेरा आना-जाना आम हो जाएगा, बस ऐसा चक्कर चलाऊंगा कि सब कुछ अपनी मुट्ठी में कर लूंगा।"

"बात तो ठीक है, परन्तु यदि प्रेम को पता चल गया, तब ?"

"पगले, यह काम प्रेम से कोई छिपाकर थोड़ा न करना है।"

"परन्तु वह कब चाहने लगा कि उसकी रखैल तेरी पत्नी बन जाए ?"

"इसका प्रबन्ध जमना को ही करना पड़ेगा, वह अपने-आप प्रेम को मना लेगी।"

"परन्तु प्रेम मान जाएगा ?"

"मान जाएगा, स्वयं इस काम के लिए मुझे आकर कहेगा।"

"वह कैसे ?"

"बस तू देखे जा। अभी केवल इतना काम कर कि जमना के पास जाकर सौदा पक्का कर ले कि एक मास तक रोज़ या दूसरे-तीसरे दिन पत्नी वाली वेश-भूषा पहनकर एक-दो घण्टों के लिए मेरे मकान पर आ जाया करे, शेष सब कुछ मैं अपने-आप सम्भाल लूंगा।"

"यह काम तो मैं अभी जाकर कर लेता हूं। मेरी आदत है कठिन से कठिन काम भी क्यों न हो, एक बार पीछे पड़ गया तो निपटाकर ही छोड़ता हूं। इसी तरह, एक बार हमारे गांव में एक साहूकार की चोरी हो गई। सारा गांव छान-बीन करते थककर चूर हो गया, परन्तु चोर का पता न चला। अन्त में साहूकार मुझे बुलाकर कहने लगा, 'मिर्ज़ा ! तेरे होते भाई चोर न पकड़ा गया तो बड़े शरम की बात होगी।' मेरी आदत है यदि घर पर चलकर शत्रु भी आ जाए तो उसकी सहायता भी अवश्य करता हूं। बस, भगवान की कृपा से रात होने से पूर्व ही चोर

का पता लगा लिया।"

गोपालसिंह बोला, "अच्छा तो फिर यह काम अवश्य करना है। एक बात जमना को और भी समझा देना। उसको कहना कि रुपये जितने चाहे ले ले, परन्तु प्रेम पर ऐसा जादू डाले कि वह इस बात से नाराज न हो जाए। उस सुसरी को प्रेम से मिलना-मिलाना कुछ नहीं, परन्तु मैं कुछ दिनों में ही जमना को माला-माल कर दूंगा। हां, वैसे वह प्रेम को भी अपने काबू में रखे, हाथ से न निकलने दे। मैं भी आज शाम को उससे मिलूंगा, परन्तु तू उसे अच्छी तरह समझा देना। सुना तूने?"

"इंशाल्लाह ताला, सब कुछ हुआ जान, यहां कौन-सी देर है? कमेटी के चुनाव के बारे में याद है न, किसी को यह आशा नहीं थी कि चौधरी गुलामहैदर सदस्य चुना जाएगा, परन्तु अकेला मैं था। बस, न रात देखी न दिन। अन्त में सफल बनाकर ही छोड़ा।"

गोपालसिंह बोला, "और हां भाई, एक काम और भी करना है, किसी अच्छी-सी गली में मेरे लिए एक मकान ढूंढ लेना। बेशक बीस-पचीस रुपये किराए का हो, परन्तु नल और बिजली अवश्य हों।"

"तेरे लिए या तेरी पत्नी के लिए?"

"दोनों के लिए ही समझ ले।"

हंसते हुए करीम बोला, "अच्छा भाई, भगवान की दया से तू पत्नी वाला तो कहलाएगा, चाहे तेरे बाप ने कभी पत्नी न देखी हो।"

उसके कन्धे पर हाथ मारकर गोपालसिंह कहने लगा, "पगले! मेरे बाप की बराबरी कोई कर सकता है? उसके पीछे तो पत्नियां ऐसे लगी रहती थीं जैसे बकरी के पीछे मेमनें।'

"पीछे नहीं, आगे-आगे होती होंगी और वह हाथ में छड़ी लिए उन्हें हांकता हुआ पीछे-पीछे होगा। क्यों ठीक है न?"

"उल्लू के पट्ठे! तू मुझे गड़रिए का बेटा समझता है?"

"तौबा! मेरी तौबा। गेहूं-मण्डी में गेहूं के बोरे उठाने वाले को मैं गड़रिया कह सकता हूं? ऐसी गल्ती करनेवाले की जबान न जल जाए।"

"अच्छा सुन, छोड़ इस बकवास को। तेरी जबान को तो हर समय

चाबी लगी रहती है। मकान का प्रबन्ध करेगा या मैं स्वयं कोशिश करूं ?"

"मकानों की कोई कमी है, अगर तू कहे तो रात होने से पहले ही पांच-सौ मकान ढूंढ़ लूं। नूरमोहम्मद ठेकेदार मेरा सम्बन्धी है। खटीकों की ढाब वाली सारी कतार इसीकी है। गुजरसिंह के किले में जो चुनीलाल बनिया रहता है, तू उसे जानता होगा। इस समय दो-अढ़ाई लाख की आसामी है। हम दोनों तो एक ही थाली पर बैठकर खाते हैं। अभी परसों ही बुलवा भेजा था उसने कि मिर्जा सभी काम छोड़कर मिल जा। करूं क्या, जाने-आने के लिए फुर्सत भी तो नहीं मिलती। मेरी आदत है अपनी चाहे जितनी बड़ी भी हानि क्यों न उठानी पड़े, दूसरों का काम अवश्य करता हूं। कल सारा दिन कचहरी में ही बीत गया। खान बहादुर करामत हुसैन की अदालत में मजीठे वाले खत्री मुनीलाल और सन्तू हलवाई का आपस में मुकदमा चल रहा था। खान बहादुर बुलाकर कहने लगा, 'मिर्जा, मैं तुझे इनका गवाह बनाता हूं। रिश्तेदारी जो ठहरी, फिर वह वक्त का हाकम हुआ, मना तो नहीं किया जा सकता न। आदमी कहां और किस समय जाए और मिले किस समय। हां तो मैं कौन-सी बात कर रहा था ? (सोचकर) हां याद आया, तूने जमना को कहने को कहा था न ? तुम बिलकुल चिन्ता न करना, मैं सब ठीक कर दूंगा।"

"ओ बुद्धू ! तेरी मां जमना की बात तो खतम हो गई थी, मैंने तो तुझे मकान के लिए कहा था, कहीं···अधिक तो नहीं पी गया।"

"आ गया याद। मकान की तू चिन्ता न करना। आज ही तुझे बहुत ही बढ़िया मकान ले दूंगा। (जेब में हाथ डालकर बोलते हुए) मेरा तो बटुआ ही घर पर रह गया है। तनिक देना चार-पांच रुपये। दिल्ली से मेरा एक वकील मित्र आ रहा है, बम्बई मेल द्वारा। कल तार मिला था। उसने लाहौर किसी मुकदमे की पैरवी के लिए जाना है। उसने लिखा था यदि स्टेशन पर मिलने न आया तो जीवन भर के लिए नाराज़ हो जाऊंगा। मेरा विचार है थोड़ा-सा फ्लूट (फल) लेता जाऊं।"

जेब से पांच का नोट निकालकर उसे देते हुए गोपालसिंह बोला,

"जितना मन करे, रुपयों की कोई कमी है? आज मिर्ज़ा साहिब का कुछ नशा भी टूटा हुआ लगता है, क्यों?" उसकी बात का जवाब न दे, जवाब में केवल 'ग्रदाब अर्ज़' कहकर करीम जब चलने लगा तो गोपालसिंह को एक और बात याद आ गई : 'मैं तो शान्ति को अपना मकान इसी मुनियारों की गली में बता चुका हूं।' उसने करीम को आवाज़ देकर कहा, "अच्छा, मकान वाली बात अभी रहने देना। मेरा विचार है अभी इस मकान में रख लूंगा और किराया किसलिए दिया जाए।"

"अच्छा, जैसी तेरी इच्छा" कहकर वह चला गया।

२६

इसी शाम को गोपालसिंह ने स्वयं जमना बाई के पास जाकर सारी बात ठीक कर ली, अर्थात् आज से ही जमना को गोपालसिंह ने पांच रुपये रोज़ किराए पर रख लिया। इसके अतिरिक्त जो कुछ भी प्रेम से प्राप्त होगा, उसका चौथाई भाग जमना का और उतना ही करीम का तथा शेष आधा भाग गोपाल का होगा।

लगभग घण्टे-डेढ़ घण्टे की बातचीत के पश्चात् गोपालसिंह वहां से विदा हुआ।

उसको गए अभी अधिक समय नहीं हुआ था कि प्रेम ने जमना के कोठे को आ सुशोभित किया। जमना पहले ही उसकी प्रतीक्षा में थी। उधर प्रेम भी मन ही मन क्रोध की आग से जल रहा था। जमना बाई, जो शायद उसके लिए प्रेम-दीवानी बनी बैठी होगी, पर वह आज अपने क्रोध और शिकायत का नजला गिराना चाहता था।

प्रेम सबसे पहले कौन-सा प्रश्न पूछेगा, जमना इसको जानती थी इसलिए उसके अन्दर आते ही बोली, "आपकी आयु बड़ी लम्बी है, मैं तुम्हें याद ही कर रही थी।"

प्रेम ने कोई जवाब न दिया—मानो वह अपने वियोग में मर रही पर अपना दबाव डालना चाहता हो।

जमना स्वयं ही बोली, "आज आपसे अलग में कुछ बातें करनी हैं।" फिर इधर-उधर नज़र घुमाकर, मानो कोई देख तो नहीं रहा, वह बोली, "यहां तो उस बूढ़ी मन्थरा का मुझे हर समय भय रहता है।"

प्रेम की भी आज यही इच्छा थी। वह भी आज अलग से बैठकर जमना को कुछ खरी-खरी बातें सुनाना चाहता था। वह बोला, "तब कम्पनी बाग को चलते हैं, सैर भी हो जाएगी और बातें भी कर लेंगे।"

"अच्छा फिर चलो" कहकर जमना अन्दर जाकर कपड़े बदलने लगी और प्रेम ने खिड़की में से झांककर एक टांगेवाले को आवाज़ दी।

इससे थोड़ी देर पश्चात दोनों ही कम्पनी बाग के एक बैंच पर एकांत में बैठे इस प्रकार बातें कर रहे थे:

"आजकल कचहरी बन्द हैं ?" जमना ने प्रश्न-सूचक आंखों से प्रेम की ओर देखकर पूछा। वह बोला, "बन्द हैं, शायद थोड़े दिनों तक खुल जाएं। पक्का पता नहीं कब खुलें—क्यों ?"

"कुछ नहीं, वैसे ही पूछा है।"

"तो भी, कोई बात तो होगी ही।"

"मैंने जाकर एक वसीयत करनी थी।"

"वसीयत ?" प्रेम ने आश्चर्य से पूछा, "काहे की वसीयत, जमना ?"

"अपनी जायदाद की।"

"किसके नाम ?"

जमना मुस्कराई, परन्तु मुंह से कुछ न बोली। प्रेम ने दोबारा पूछा, "हां तो, किसके नाम ?"

जमना ने बड़े अदा भरे लहजे में कहा, "अपने चांद के अतिरिक्त और किसके नाम करानी है, मैंने।"

प्रेम की धमनियों में बिजली दौड़ गई। खुशी से उसका चेहरा लाल हो उठा, वह बोला, "जमना, इसकी क्या आवश्यकता है ?"

"आपको आवश्यकता नहीं परन्तु मुझे तो है। मेरा आपके बिना और कौन है ? मेरे विवाह से पूर्व ही मेरे मायके वालों ने ससुराल वालों से एक मकान मेरे नाम करवा लिया था, उसका भी इस समय कोई उत्तराधिकारी नहीं है।"

'एक मकान भी है ?' यह सोचकर प्रेम की खुशी और बढ़ गई, परन्तु वह बाहर से भोला बनकर पूछने लगा, "नहीं जमना ! ऐसा विचार मन से निकाल दे। मेरे नाम पर वसीयत करवाने की कोई आवश्यकता नहीं। एक तो पहले भगवान की दया से मेरी दौलत का कोई अन्त नहीं, दूसरा तेरे और मेरे में अन्तर क्या है ?"

"आप ठीक कहते हैं, परन्तु मेरे जीवन का कोई भरोसा नहीं।"

"जीवन पर तो किसी का भी भरोसा नहीं होता।"

"परन्तु मेरी बात कुछ और है।"

"और, किस तरह ?"

"मेरा जीवन आजकल हर समय खतरे में रहता है। रात को सोती हूं, तो सोचती हूं कि शायद सुबह का सूर्य भी देखूंगी या नहीं।"

"हैं !" प्रेम ने आश्चर्य से पूछा, "ऐसी क्या बात है, जमना ?"

"बात, आपको क्या बताऊं।"

"जल्दी बता जमना, तुझे भगवान की कसम जल्दी बता, मेरे हृदय को कुछ होता जा रहा है। ऐसा कौन मा का बेटा पैदा हुआ है, जो तेरा बाल भी बांका कर जाए।"

बनावटी आह भरकर जमना बोली, "आप मेरे दुःख को नहीं सुन सकोगे।"

"नहीं सुन सकूंगा ? क्यों ?"

"क्योंकि वह आपका बड़ा गहरा मित्र है।"

"कौन ? गोपालसिंह ?"

"हां, वही।"

प्रेम की आंखों के आगे अन्धेरा छा गया। उसको पहले से ही गोपालसिंह पर क्रोध आ रहा था और उसीका ज़िकर वह जमना से करना चाहता था। जमना की बात सुनकर वह बोला, "जमना, जल्दी से सारी बात विस्तार से बता।"

उदासी के भाव से जमना बोली, "क्या बताऊं आपको, आपको चाहे बुरा ही लगे, गोपालसिंह बुरी तरह मेरे पीछे पड़ा हुआ है। यह मैं जानती हूं कि आपकी उससे मित्रता है और वैसे भी वह आपके पीछे जान देता है, परन्तु······।"

"हां, हां, बोल।"

"मेरी दौलत को देखकर, उस द्वारा चैन से नहीं रहा गया।"

"सच्च ?" प्रेम ने पूछा, "परन्तु तेरे पास इसका क्या प्रमाण है ?"

"प्रमाण के बारे में बाद में बताऊंगी, पहले वसीयत वाला काम पूरा कराओ, जिस दिन कचहरी खुले उसी दिन।"

प्रेम सोचने लगा, 'बेशक गोपालसिंह मेरा मित्र है, परन्तु मेरी जमना के बारे में उसके विचार शुद्ध नहीं, तो फिर ऐसे मित्र को मैंने बैठकर चाटना है ? फिर वह ऐसा जमना के साथ नहीं कर रहा, बल्कि मेरे साथ कर रहा है, क्योंकि जमना का सब कुछ मेरा है। चलो, कचहरी के खुलते ही वसीयत द्वारा सब कुछ मेरे हाथ में आ जाएगा, फिर वह कर भी क्या सकेगा।' ऐसा सोचकर वह बोला, "परन्तु जमना ! मुझे तो इस निर्दयी से ऐसी आशा न थी।"

"प्रिय, आप नहीं जानते संसार की हेरा-फेरियों को ! लाखों की दौलत देखकर किसका हृदय नहीं बदल जाता ?"

"तो फिर अब क्या करना चाहिए ?"

"बस वसीयत हो जाए, फिर कोई चिन्ता नहीं रहेगी। मकान को किसी दिन जाकर आप किराए पर चढ़ा आना और यदि कोई ग्राहक मिल जाए तो बेचकर रुपया वसूल कर लेना। फेंकना चाहो, तो भी पचीस-तीस हजार तो मिल ही जाएगा। मेरे गहने भी अपने पास रख लेना। शेष बैंक का रुपया, वह फिक्स डिपोजिट है, निर्धारित समय से पहले कोई उसे निकाल नहीं सकता, न मैं और न ही कोई और।"

'वाह, वाह ! बस पांचों अंगुलियां घी में' सोचते हुए प्रेम कहने लगा, "नकद रुपया कितना होगा ?"

" लगभग तीस-बत[illegible] हजार।"

[illegible]चने लगा फि[illegible] मजे ही मजे हैं।

[illegible], "[illegible] म में साथ दोगे ?"

[illegible] इस सोने की खान के बदले चाहे

[illegible] रना पड़े तो भी चिन्ता की कोई

[illegible], तू मेरी जान भी मांगे तो वह

"जमना बाई ! मैं दौलत का भूखा नहीं, मैं तो तेरे प्रेम का भूखा हूं, परन्तु जो तू कहेगी वही करूंगा।"

जमना तनिक गम्भीर मुद्रा बनाकर बोली, "मेरी यह शुरू से ही आदत है कि मेरे साथ जो अन्दर-बाहर से एक होकर व्यवहार करे, उसके लिए मुझे जान भी देनी पड़े तो मैं पीछे नहीं हटती, और जो चालाकी से पेश आए, उसको तो एक बार मजा चखाकर ही छोड़ती हूं। मेरा विचार है इस शैतान गोपालसिंह के साथ दो-दो हाथ करने का। यह तो मेरी दौलत के पीछे है परन्तु मैं उसकी सफाई करके ही दम लूंगी—उसकी सब जमा-पूंजी निकालकर आपको ला दूंगी। क्यों है यह आपको स्वीकार ?"

प्रेम सोचने लगा, 'आजकल तो ऐसे लगता है कि भगवान मेरे पर बड़ा खुश हो गया है, यदि गोपालसिंह का रुपया भी हाथ आ जाए तो क्या बुरा है ? परन्तु मित्र के साथ विश्वासघात करूंगा ? परन्तु कोई चिन्ता नहीं, पैसे के लिए आदमी को सब कुछ करना पड़ता है।' वह बोला, "स्वीकार है जमना, तू जो भी कहे, मुझे स्वीकार है।"

"अच्छा, तो फिर यूं करो, कुछ दिनों के लिए मुझे उसका भेद जानने दो।"

"भेद, वह किस तरह ?"

"वैसे ही जैसा कि मैं बनकर आपके घर गई थी, उसकी पत्नी बनकर। फिर देखना, दस दिन के भीतर ही मैं सारा उसका पैसा, मकान समेत, आपके चरणों में लाकर डाल दूंगी। दो-अढ़ाई लाख की जायदाद मेरी होगी और कुछ उसकी, बस सारी इकट्ठी कर लेना। जीवन भर बैठकर मौज उड़ाएंगे। न कमाने की आवश्यकता और न ही काम करने की।"

"परन्तु, फिर गोपालसिंह कहां जाएगा ?"

"पुराने कुएं में। इसकी मेरे चाद, आप तनिक भी चिन्ता न करो। मैं सब कुछ ठीक कर लूंगी।"

जमना को सुनाने के लिए प्रेम जितने शिकवे-शिकायतें हृदय में लेकर आया था, वे सब उसके भीतर ही कहीं लुप्त हो गए। कुछ भी कहने-सुनने की उसे जरूरत न पड़ी। उसको सबसे बड़ी शिकायत थी

कि जमना ने गोपालसिंह की पत्नी बनने का नाटक क्यों क्या था, परन्तु इसका उसे अपने-आप ही उचित जवाब मिल गया था। जमना ने तो सारा नक्शा ही बदल दिया।

अन्त में जमना कहने लगी, "परन्तु एक बात का ध्यान रखना, गोपालसिंह को इसका पता न चले। उसके साथ पहले की भांति ही मीठे और प्रिय बने रहना, बल्कि पहले से भी अधिक, और हां, जो जरूरी बात थी वह तो मैंने आप से कही ही नहीं। आप रोज़ समय पर घर पहुंच जाया करो। आठ बजे के पश्चात बाहर न रहा करो। आपकी पत्नी को इससे दुःख पहुंचता है।"

प्रेम खुशी से उछल पड़ा और बोला, "जमना बाई! तेरे आदेश से रत्ती भर भी मैं इधर-उधर नहीं होऊंगा।"

"तो फिर कल से मैं अपना काम शुरू कर दूं?"

"अवश्य।"

इसके पश्चात दोनों ही बैंच से उठकर, बांह में बांह डालकर, बाग में सैर करगे लगे।

२७

शान्ति को आजकल यह देखकर बड़ी प्रसन्नता हो रही थी कि उसका पति आजकल समय पर घर आ जाता है। अर्थात उसने पति को काफी कुछ सुधार लिया है। गोपालसिंह और उसकी कल्पित पत्नी के प्रति उसका बाल-बाल ऋण से झुक गया। शान्ति सोचती थी कि शायद यह उन दोनों,की कृपा का फल था। परन्तु बेचारी को क्या पता था कि आजकल दिन के सारे समय में प्रेम के लिए या गोपालसिंह की दुकान थी या फिर जमना बाई की बैठक, क्योंकि वह अपनी ओर दोनों का शिकार करने की ताक में था।

शेष रही उसकी अपनी दुकान, उस ओर तो देख पाना ही उसके लिए बड़ा कठिन था। हां, पैसों की आवश्यकता कभी-कभी उसे दो-घड़ी के लिए दुकान की ओर ले जाती थी, परन्तु लुके-छिपे, क्योंकि दुकान

का अखण्ड-पाठ तो लगभग हो ही चुका था और शेष जो कमी रही थी उसे हीरासिंह मुनीम ने पूरा कर दिया था। आलमारियां काटने को दौड़ती थीं। उनमें यदि थोड़ा बहुत सामान है भी तो वह पुराना और टूटा-फूटा।

हीरासिंह भी इन दिनों निराश हो गया था और भाग जाने के उपाय सोच रहा था, क्योंकि ग्राहकों के दर्शन दुर्लभ हो गए थे, परन्तु रुपया लेने वालों की भीड़ हर समय लगी रहती थी। फिर भी 'जो माया वही सही' सोचकर वह इस समय यहां रुका हुआ था।

इस प्रकार प्रेम आजकल बिलकुल खाली था। गोपालसिंह और जमना में बचा समय अवसर वह शराब के ठेके पर बिताता था। यह सोचता : 'और दस दिन की बात है, बस जमना का माल मिलते ही दुकान पर जाऊंगा, जुटकर काम करूंगा और खूब बढ़ा-चढ़ाकर व्यापार करूंगा। अनगिनत रुपया पास होगा, गाड़ी की गाड़ियां माल मंगवा लूंगा। बक्सों से गुदाम भर डालूंगा और दुकान को इस तरह सजाऊंगा कि लोग देख-देखकर दंग रह जाएंगे।'

समय पर घर आ जाने का एक और कारण भी था। वह सायंकाल को सुशीला और शान्ति को इकट्ठे बाजा सिखाता था। इसी तरह कुछ दिन बीत गए।

एक दिन सायंकाल को ठेके में बैठा वह सोचने लगा, "अब तो सीमा से बाहर हो गया है। जमना की प्रतीक्षा में इतना समय काटा, परन्तु अब तो और एक दिन काटना भी बड़ा कठिन हो गया है। हुण्डियों के भुगतान की तारीख भी आ गई है और बम्बई से जो चालान आए हुए हैं, उनका माल अलग से बैंकों के गोदामों में पड़ा सड़ रहा है। बाजार में लेना-देना वैसे ही बन्द है, मैं कहीं आ-जा भी नहीं सकता, दुकान में से तो किराया भी नहीं निकलता होगा, उधर लोग कचहरी में दावे पर दावा कर रहे हैं।'

वह सोच रहा था 'जमना को अभी भी मेरी हालत पर दया नहीं आएगी ? उसका पैसा और किस घड़ी के लिए है ? वसीयत को शायद उसे याद ही नहीं रही। कचहरी खुली को भी कई दिन हो गए हैं। परन्तु उस बेचारी का क्या दोष जबकि मैंने ही अभी तक अपनी दशा

को उसके सम्मुख प्रकट नहीं किया।

बस, आज ही जाकर उसे सब कुछ साफ बता दूंगा। और कुछ भी न सही, परन्तु अपना तीन-चार हज़ार का हार तो आज ले ही आऊं। उस दिन तो उसे रखती ही नहीं थी, परन्तु बाद में उसके बारे में कुछ कहा तक नहीं। शायद उसे लौटाने की याद ही न रही हो। उससे प्राप्त करते-करते अभी तो मैंने स्वयं का बेहिसाब धन ही उसको भेंट चढ़ा दिया है। यदि उसने तुरन्त कोई सहायता न की तो फिर मकान का कांटा ही खींचना पड़ेगा, या फिर गोपालसिंह द्वारा बताई हुई बात पर अमल करना पड़ेगा—'बीमा कराने के पश्चात दुकान को आग लगाने वाली बात।' मेज़ पर खाली गिलास रखकर वह यह बातें सोचते हुए उठा ही था कि ठेके के मालिक ने सामने आकर उसके विचारों में खलल डाल दी। वह कहने लगा, "लालाजी! क्षमा करना, आज के पैसे डालकर आपकी ओर अड़तालीस रुपये, बारह आने हो गए हैं।"

"अच्छा, मिल जाएंगे" कहकर प्रेम चल पड़ा।

ठेके वाले ने पीछे से आवाज़ देकर कहा, "कल आते समय पिछले सारे रुपये लेते आना, नहीं तो……।"

ठेके वाला पीछे से बड़बड़ा रहा था। इसकी ओर ध्यान न दे, प्रेम अपने रास्ते पर चलता गया। उसकी इच्छा जमना की ओर जाने की थी, क्योंकि आज उसने सारा दिन ठेके में बिता दिया था और जमना के पास नहीं जा सका था।

वह शराब की मस्ती में झूमता हुआ रामबाग की ओर चल पड़ा। चलते-चलते पता नहीं किस समय उसकी आंखों ने एक मनमोहक शकल पर घूमना शुरू कर दिया। वह दस-पंद्रह कदम आगे बढ़ा ही था कि रुक गया। कुछ देर खड़े रहने के पश्चात वह किसी आकर्षण-शक्ति द्वारा खिचकर लौट पड़ा।

कुछ दिनों से उसके हृदय में किसी चमकते हुए चेहरे की ज्वाला जल रही थी और अब उसने उसके हृदय को ही झुलसना शुरू कर दिया था। यह ज्वाला उसी दिन से उसके हृदय में जल रही थी, जब उसने पहली बार सुशीला को देखा था, परन्तु जबसे उसने शान्ति और सुशीला-दोनों को बाजा सिखाना आरम्भ किया था उसका ध्यान उस

ओर से हटता ही नही था।

इस समय उसकी एक बांह को लालच ने पकड़ रखा था और दूसरी को वासना ने। वह लालच की ओर खिंचा जा रहा था, परन्तु क्योंकि वासना अधिक बलवान थी इसलिए उसने एक ही झटके में उसे अपने पीछे लगा लिया।

इससे कुछ मिनट पश्चात प्रेम अपने दरवाजे के सामने था।

वह अपने घर के दरवाजे पर पहुंचा ही था कि उसकी आंखों के सामने से बिजली दौड़ गई। सुशीला दरवाजे पर ही खड़ी थी, जिसकी उन्नावी-रंग की चुनरी-सिर से फिसलकर कंधों पर मचल रही थी। सुशीला पर निगाह पड़ते, ही उसका हृदय बाहर आ गया—वह जख्मी हो गया। सुशीला को एकांत में मिलने के लिए वह कई दिनों से अवसर की ताक में था। क्योंकि दो-तीन दिनों तक सुशीला का विवाह हो जाना था।

"सुशीला! इस समय दरवाजे में खड़ी-खड़ी किसकी प्रतीक्षा कर रही है?" धड़कते हुए हृदय से उसने पूछा। जवाब में कुछ कहने की बजाए, उसको तिरछी नजर से घायल करती हुई अन्दर चली गई और अन्धेरे में से आवाज दी "तुझे।"

इस 'तुझे' शब्द ने जंजीर बनकर प्रेम के पैरों को जकड़ लिया। उसने सुशीला की दहलीज को पार किया, परन्तु ऐसे जैसे चोर दीवार में सन्न लगाकर जाता है।

कभी-कभी मनुष्य के पाप-मार्ग में भी प्रकृति सहायक होती है। हां, पाप-नदी में बहते हुए, गोते खाते हुए मनुष्य को भी नाव दिखाई दे जाती है, भले ही यह नाव पार पहुंचाने वाली न होकर डूबोने वाली होती है—क्योंकि यह कागजों की नाव होती है।

प्रेम की पाप-कामना को इस समय कुछ ऐसी ही साहायता मिली थी। सुशीला आज घर में अकेली ही थी। देवकी और शम्भूनाथ बाजार गए हुए थे—दहेज के लिए कपड़े, बर्तन आदि खरीदने के लिए।

"मैंने सोचा है, यदि बाबू शम्भूनाथ जी आ गए हैं तो उनसे मिलता जाऊं, उनके साथ एक आवश्यक काम था" सुशीला के पीछे-पीछे बैठक में जाते हुए प्रेम ने कहा। बिजली की रोशनी से कमरा

जगमगा रहा था।

"जीजाजी, क्या काम था ?" कहते हुए वह पलंग पर बैठ गई—बाजे (हरमोनियम) के पास। अपने प्रश्न के जवाब की प्रतीक्षा किए बिना ही वह बोली, "हां तो जीजाजी, मुझे उस दिन वाली तर्ज का अन्तरा नहीं सिखाना था ? अस्थाई तो मैंने कब की याद करली है—तुझे सुनाऊं ?" और वह बाजा खोलकर बजाने लगी।

"घर आएगी तो सिखा दूंगा, या शान्ति से सीख लेना, उसे तो सारी याद हो गई है।" कहते हुए वह लौटने के लिए तैयार हो गया परन्तु मन उसको लौटे जाने से रोक रहा था। वह रुकता नहीं, यदि उसके पास सुशीला की ज़बान बनकर 'जीजाजी, जा रहे हो बैठ जाओ तनिक' न कहते।

एक बार और कहलवाने की इच्छा से वह दो कदम और बाहर की ओर जाते हुए बोला, "नहीं, अब जाता हूं।" 'काम-शास्त्र' के 'नायक-भेद सम्बन्धी प्रेम ने सुन रखा था कि 'नायक ज्यों-ज्यों आगे बढ़ता है, नायका त्यों-त्यों पीछे हटती है। इसी प्रकार नायक उदासीनता प्रकट करे तो नायका तीव्रता प्रकट करती है।' प्रेम ने इसलिए, इस समय इस मन्त्र से काम लिया, जो सफल रहा।

उसके पश्चात, उसी तरह की एक और आवाज आई, जो पहले से भी अधिक प्रभावशील और खींचने वाली थी, "नहीं जीजा ! मुझे अन्तरा बता कर ही जा।"

वह लौट आया। पलंग पर बैठकर वह सुशीला को अन्तरा सिखाने लगा, परन्तु उसका हृदय अलाप रहा था वासना की स्थाई।

वह प्रयत्न करते हुए भी सिखा न सका और यदि सिखाता भी तो शायद सुशीला न सीख सकती।

जिस घर में आग लगी हुई हो, वहां कौन गा सकता है ?

"सुशीला ! तेरा ध्यान किस ओर है ? तू तो सरगम से बाहरी स्वर लगाए जा रही है" उसकी आंखों में आंखें डालकर प्रेम ने कहा।

तंग आकर बाजा छोड़ती हुई सुशील बोली, "तू तो स्वयं ही कुछ और सिखा रहा है" मैं सीखूं क्या ?"

प्रेम के लिए और अधिक समय को नष्ट करना कठिन हो गया।

उसने बाजे को बन्द करके परे धकेल दिया।

इसके पश्चात कुछ समय तक दोनों ही चुप बैठे रहे।

फिर प्रेम ने बाजे से हाथ को उठाकर पलग के बाजू पर रखे हुए सुशीला के हाथ पर धीरे से रख दिया। उसका विचार था कि हाथ के छूते ही नीचे से साबुन की टिकिया की तरह सुशीला का हाथ फिसल जाएगा, परन्तु ऐसा हुआ नही। सुशीला के हाथ ने कोई भी हरकत न की।

वहा से उठाकर, उसने सुशीला के हाथ को अपने हाथ मे तो ले लिया और कांपती हुई आवाज में बोला, "सुशीला! तेरा हृदय किस चीज का बना है?" कहते-कहते प्रेम को ऐसे लगा जैसे उसका हर एक अंग आग का बना हुआ हो।

कोई जवाब देने की बजाए सुशीला ने हाथ छुडा लिया और बाहर जाने की इच्छा से वह बोली, "मैंने तो दाल को देखना था चाहे जल भी गई हो।" परन्तु अपने कार्य मे वह सफल न हो सकी। हाथ की बजाय, अब उसका सारा शरीर ही दो मजबूत बांहो में था।

इसी समय बाहर कोई खटका-सा हुआ, जिसकी आवाज उनके कानों मे पड़ी, या पता नही उनके पाप ही आपस मे टकरा गए थे, जिसके कारण इस नाटक का यहीं अन्त हो गया।

पहले सुशीला ने और उसके पश्चात प्रेम ने बाहर आकर चारो ओर नजर दौड़ाई, परन्तु इस समय वहा मनुष्य तो क्या, किसी चिड़िया की परछाई भी नही थी।

प्रेम जल्दी से बाहर निकल गया। उसके पांव डगमगा रहे थे।

पहले उसकी इच्छा हुई घर जाकर खाना खाने की, परन्तु जमना की ओर जाना आज उसके लिए अवश्य था, वह ऊपर न गया और सीधा जमना के मकान की ओर चल पड़ा।

काफी देर तक सोचते रहने के पश्चात जमना बोली, "इस जूठन ने इस तरह तो पीछा नहीं छोड़ना। रोज़ ही हाथ लटकाए चला आता है। न पैसा न धेला, मैंने कोई उसके लिए यहां ख़ज़ाने दवा रखे हैं? आते ही यूं जमकर बैठता है कि सारा दिन जाने का नाम ही नहीं लेता। एक हार क्या दे दिया, समझता है जहान मोल ले लिया है। आज सारा दिन आया नहीं, आता तो हरामी की औलाद को जूती का पानी पिलाती, अच्छी तरह। पत्नी क्या मिल गई है, समझता है खुदा मिल गया है। सारी कमाई तो जाकर डालता है उसकी गोलक में और फर्श घसाने के लिए यहां आ मरता है। कुकड़ू-कुड़ कहीं और अण्डे कहीं। निठल्ले हरामियों को लिए मेरा ही घर रह गया है।"

बूढ़ी बोली, "तू तो बच्ची है, दफा क्यों नहीं करती उसे, यहां कोई उसने पशु बांध रखा है?"

"मैंने तो अब तक कबकी उसे पांव की ठोकर लगा बाज़ार में फेंक दिया होता, परन्तु उस बदमाश गोपाले के आश्वासनों ने अभी तक रोक रखा है।"

"वह क्या कहता है?"

"कहता है कि अभी इससे हमें बहुत कुछ मिलने की आशा है।"

"अगर बेटी, मिलने की कोई आशा है तो फिर इतनी जल्दी क्यों करती है? और चार दिन देख ले।"

"ठहरने को तो माई, मैं ठहर जाती, परन्तु यह आवारा तो यह आकर फिर जाता ही नहीं—लाश की तरह ज्यों टांग पसारकर पड़ जात है कि बस। यहां पर कितनों ने आना हुआ और कितनों ने जाना हुआ जिसने भी देखा कि यह बाप का घर बनाए बैठा है, तो फिर कौन आ लगा यहां पर। मैंने तो इससे कमाते-कमाते, बल्कि अभी तो अपनी कम को ही खतरे में डाल दिया है। फिर एक और भी बात है।"

"क्या?"

"मेरे को लगता है कि गोपाले हरामज़ादे ने भी मेरे को कुछ न देना। वह तो छंटा हुआ गुण्डा है। विवाह में उसने इसे थोड़ा लूटा है मेरे को क्या दिया है उसने? बल्कि कंजर का जब भी आता है, ड धमका कर कुछ न कुछ उलटा मेरे से ही ले जाता है।"

"फिर अब तेरा क्या विचार है ?"

"क्या बताऊं, गोपाले से मुझे बहुत डर लगता है, नहीं तो हराम के को यहां पांव भी न रखने दूं।"

"पर अब कुछ देता-लेता नहीं ?"

"खाक और मिट्टी। अगर थोड़ा-बहुत कभी कुछ लाया भी तो, क्या हुआ। उसीमें से खर्च भी तो करवाता रहता है। कभी शराब मंगवाकर और कभी मांस मंगवाकर। फिर वह तो इसी आशा पर मूंछों को ताव दिए हुए है कि जमना के पास लाखों का माल है, सारा मुझे दे देगी।"

"वह तो बच्ची, मूंछों को ताव देगा ही, तू जो अपने मुंह से कहती रहती है—सब कुछ देने को।"

"क्या करूं माई, उसी गोपाले का रोना रोती हूं। वह जो रोज कहलवा भेजता है कि अभी इसे हाथ से न निकलने देना। अब जबकि उसकी पत्नी आई हुई है, यदि मैं लालच न देती तो उसने कोई इधर देखना था ? बड़ा माया चालाक का बेटा, अपनी ओर से मार मारने के लिए आता है, नहीं तो उसका यहां काम क्या था ?"

"अच्छा तो जहां पहले इतने दिन काटे हैं, वहां कुछ और सही। अपने घर को पक्का रखो, और जितना हो सके उतना और खींचने की कोशिश कर।"

इसी समय नीचे से किसी के सीढ़ियां चढ़ने की आवाज आई। जमना होंठों में फुसफुसाई, "ले आ गया है मेरी जान का भूखा। मैंने तो सोचा था कि आज मुए से पीछा छूटा, परन्तु······।"

प्रेम को देखते ही दोनों बड़े आदर के साथ उठीं। बूढ़ी तो ऊपर चली गई और जमना उसका हाथ पकड़कर उसे बिठलाते हुए बोली, "आपके साथ बोलना तो नहीं था, परन्तु क्या करूं, यह प्रेम बुरी चीज है। आप जैसा भी कोई संगदिल होगा। जिस दिन न आना हो, बता तो जाया करो, आज प्रतीक्षा करते-करते आंखें भी दुखने लगी हैं।"

'वाह! कितना शानदार स्वागत ! कितनी मधुर वाणी ! एक दिन के विछोड़े में इतनी बेकरारी ! काश, शान्ति इससे चौथाई भाग भी प्रेम करना जानती होती।'

ऐसा सोचते हुए प्रेम शराब की लपटों को छोड़ते हुए अपने मुंह को जमना के पास ले जाकर, उसके गले में बांह डालकर बोला, "प्रिया, क्षमा मांगता हूं, आज सारा दिन दुकान से फ़ुर्सत ही नहीं मिली।"

"पहले रोज़ फ़ुर्सत कैसे मिल जाती थी ?" जमना ने बड़ी अदा के साथ उसको देखते हुए पूछा।

"पहले मुनीम दुकान पर रहता था, जिससे मैं आ जाता था। परन्तु आज सवेरे से वह लाहौर गया हुआ था। अभी आया है और उसे बैठाकर मैं दौड़ा आया हूं। जमना, तेरे बिना तो मेरे एक-एक क्षण, एक-एक वर्ष के समान बीतता है।"

"छोड़ो इन मनको बहलाने वाली बातों को। साफ क्यों नहीं कहते कि नई पत्नी से बिछुड़ने को मन नहीं करता।"

"तेरी कसम जमना! उस पागल जंगली स्त्री की मैं तो शकल भी नहीं देखना चाहता। परन्तु करूं क्या, गले में पड़ी ढोलक को बजाना ही पड़ता है।"

उसी रुलाने वाले रूमाल से आंखों को पोंछती हुई जमना सिसकियां भरने लगी। प्रेम ने देखा वास्तव में उसके आंसू बह रहे हैं। ऐसा स्वांग रचती हुई वह बोली, "यदि इस तरह बिछोड़े के बाणों से मेरे को तड़पाना है, तो अपने हाथों ज़हर देकर, मेरी जान ही ले लो। मैं इस दर्द को और अधिक सहन नहीं कर सकती।"

अपने प्रेम में जमना को इस प्रकार डूबा देखकर, प्रेम ने इस अवसर को अपनी लालची इच्छा को प्रकट करने के लिए उचित अवसर समझा। वह बोला, "प्रिय! तुझे क्या बताऊं। मैं तो उस बुरी घड़ी को लेकर पश्चाताप कर रहा हूं, जिस घड़ी मैं इस चुड़ैल को अपने घर ले आया था।"

जमना शान्ति को देख-भाल आई थी। शान्ति की सुन्दरता को देखकर वह प्रफुल्लित होती थी। उसको पूरा विश्वास था कि शान्ति जैसी स्त्री के रहते, कोई भी मनुष्य उस जैसी सारे संसार द्वारा मसली हुई स्त्री की ओर देख भी नहीं सकता, केवल सुन्दरता के कारण से ही नहीं, गुणों के कारण से भी। परन्तु प्रेम के मुंह से ऐसा सुनने के पश्चात वह बोली, "आपकी पत्नी तो हीरे के समान है, उसकी यूंही निन्दा

क्यों करते हो ?"

"खाली रूप को किसी ने क्या करना है, अगर स्त्री अपने मालिक के दुःख-सुख में साझी न बने तो।"

"परन्तु आपने उसमें ऐसा कौन-सा दोष देखा है ?"

अपने अभिप्राय: के और निकट पहुंचकर प्रेम कहने लगा, "ऐसी बेवफा स्त्री को तो वहां पर मारना चाहिए, जहां पानी भी न मिले।"

"हैं, ऐसी क्या बेवफाई हो गई, बेचारी से ?"

प्रेम ने कोई जवाब न दिया।

जमना फिर बोली, "बताते नहीं, कोई विशेष बात है क्या ?"

"नहीं, कोई खास बात तो नहीं, यूंही।"

"ऐसे ही क्या, बताओ तो सही ?"

"कुछ नहीं।"

"नहीं, मैं पूछकर ही छोड़ूंगी, आपको मेरे सिर की कसम।"

"जमना ! बस मैंने तुझे कह दिया है, और चाहे जो जी में आए कसम डाल दिया कर, परन्तु अपनी कसम मत डाला कर।"

"अच्छा, अब तो डाल दी है—बताओ ?"

कुछ देर तक चुप रहने के पश्चात वह बोला, "बात कोई इतनी बड़ी तो नहीं है, परन्तु जमना ! तू ही बता जो स्त्री दुःख-सुख के समय में काम न आई, उसको फिर फांसी ही देनी हुई ?"

"बात क्या हुई थी ?"

"बात तो मामूली-सी थी। तू तो जानती है कि वक्त आने पर राजाओं-महाराजाओं को भी आवश्यकता पड़ जाती है। ऐसे ही दो-तीन भुगतान करने थे और रुपया कुछ दिनों के लिए बाहर व्यापारियों के पास फंस गया था। आखिर तू जानती है कि हम व्यापारी लोग ठहरे, दूसरों को तंग नहीं करते। किसी समय पचासों हजार रुपये भीतर पड़े रहते हैं और कभी-कभी ऐसा भी होता है कि जब पैदल चलना पड़ जाता है। मैंने इतना कह दिया—तेरे पास इतना रुपया पड़ा है दो-चार दिन के लिए मुझे बरत लेने दे। अन्दर पड़ा दूध तो नहीं दे रहा। परन्तु स्त्रियों को भगवान का शाप होता है—चमड़ी जाए पर दमड़ी न जाए। बस बात बढ़ते-बढ़ते बढ़ गई। मैंने कहा—सा

खसमों को, मेरा कोई काम रुकने लगा है ? कहीं और से काम चला लूंगा। पचासों आदमी देनेवाले हैं। मुंह से कहने की देर है और लोग ढेरी लगाने को तैयार हैं। परन्तु मेरा अपना स्वभाव ही कुछ ऐसा है, बस चलते मैं किसी के आगे हाथ नहीं पसारता। रुपयों का क्या है आज न आए, दो-चार दिनों में आ जाएंगे, परन्तु मैं सोचता था कि बैंक का मामला तनिक नाजुक होता है। रुपया तो मेरा तेरह हज़ार ईम्पीरियल बैंक में जमा है, छः-सात हज़ार सैन्ट्रल बैंक में है, परन्तु सारा फिक्सड डिपोज़िट है, समय से पहले निकाला नहीं जा सकता।"

बात करने के पश्चात, आशा भरी नज़रों से, प्रेम जमना की ओर देखने लगा।

जमना ठण्डी आह भरकर बोली, "यह तो उसकी गलती है। भला घर के मालिक को यदि समय पर रुपये-पैसे की जरूरत पड़ जाए, तो अन्दर पड़े रुपयों के मना क्यों करे। (तनिक रुककर) अच्छा छोड़ो कोई बात नहीं। फिर भी आपको उससे नाराज़ नहीं होना चाहिए। तब तो आप आज खाना खाने भी घर पर नहीं गए होंगे ? घर अवश्य जाना, रुपयों का क्या है, आज नहीं तो कल दे देगी। उसने और कहां पर ले जाना है।"

जमना के मुंह से निकलने वाले प्रत्येक शब्द लपकने के लिए, पहले से ही उछल रहा था। वह सोचता था कि अभी जमना ने कोई आशा बंधाने वाली बात कही, अभी कही, परन्तु मूर्ख को क्या पता कि तेल तिलों में होता है, रेत में नहीं। जमना ने अपने पांवों पर पानी भी न पड़ने दिया और सरलता से बात का रुख किसी और तरफ बदल दिया।

प्रेम ने सोचा—शायद इसने सोचा है कि मेरी रुपयों की आवश्यकता कहीं और से पूरी हो जाएगी, इसीलिए इसने बात को दोबारा नहीं छेड़ा।

एक बार फिर दोहराने के विचार से वह बोला, "नहीं जमना, मैं इतना दीन नहीं कि उसके पास जाकर फिर मांगूं या उसकी शकल देखूं। मैंने तो फैसला कर लिया है कि कल ही उसे मायके भेज दूंगा और फिर जीवन भर उसकी शकल नहीं देखूंगा।" फिर वह शर्माते हुए बोला, "जमना ! यदि तेरे पास कुछ रुपये फालतू हों तो तनिक तू ही कष्ट

कर। एक ही सप्ताह की बात है, फिर सौ रुपया ही रुपया हो जाएगा, फिक्सड डिपॉजिट के निर्धारित समय में भी केवल आठ-नौ दिन बाकी हैं।"

जमना मन ही मन कह रही थी, 'मूर्ख, तू किन ख़ियालों में है, चीलों की चोंच में से मांस छीनना चाहता है।' फिर वह दूसरे भाव से बोली, "मेरी तो कौड़ी-कौड़ी आपकी है, यह जो घर देख रहे हो, मेरे जीते-जी भी तुम्हारा है और मेरे पीछे भी तुम्हारा होगा, परन्तु नकद रुपया तो आप जानते ही हैं कि हमारे पास रुकता ही नहीं। इधर से आया और उधर गया। और बैंक का रुपया मेरा भी फिक्सड डिपोजिट है। हां, आभूषण चाहिए तो बेशक ले जाओ। जाकर बेच दो, गिरवी रख दो, आपकी अपनी चीज़ है।"

रुपये में से चार आने निराश हो जाने पर भी प्रेम को जमना के इस त्याग की भावना ने प्रसन्न कर दिया। क्या आभूषण ही मांग लूं? नहीं, नहीं, ऐसा असम्भव है। मित्र यदि हाथ बढ़ाए तो क्या उसे ही काट लेना चाहिए? परन्तु फिर उसको ध्यान आया—'ऐसा आदर्श गया टूटे कुएं में, जो मिले लेने की कर।'

वह फिर बोला, "अच्छा तो फिर ऐसे कर, अभी बहुत नहीं, काम चलाने के लिए चार-पांच हजार जिससे मिल जाए, इतने आभूषण ही ला दे। कोशिश तो मैं करूंगा इन्हें परसों ही छुड़वाने की, यदि परसों न हुआ तो चौथ को तो हर हालत में छुड़ा लूंगा।"

जमना सोचने लगी, 'नीचे की मांगी, प्रभु ऊपर की दीनी' वाली बात हुई। वह तो सोच रही थी कि किसी तरह उसकी जेबों का भार हलका करेगी, परन्तु वह तो आज उसी को लूटने पर उतारू है।

प्रेम का विचार था कि जमना मिनटों-सैकिंडों में उसकी इस इच्छा को पूरा करके अपने आप को कृतार्थ समझेगी, परन्तु ऐसा हुआ नहीं। जमना बाई कितनी देर तक सोचती रही, फिर उदास होकर बोली, "आभूषण भी तो घर में नहीं हैं न। आप तो जानते ही हैं कि जोखम की चीज़ है और फिर मैं घर में हूं भी अकेली या फिर बुढ़िया। रात ही रात में हम दोनों का कोई गला दबाकर लूट ले तो, यहां कौन है हमारी चीख-चिल्लाहट सुननेवाला। इसलिए गहनों को घर में नहीं रखती।"

प्रेम को रुपये में से आठ आने निराशा हो गई। फिर भी एक वार वह हठ करके वोला, "कोई वात नहीं आजका दिन रुककर, कल हो जाए। मंगाने में लगभग कितनी देर लगेगी। कहीं निकट में ही हुए हैं कि······?"

वीच में ही जमना वोली, "रखे हुए तो यहीं पास में ही हैं, इसी बाज़ार के चौधरी के पास जमा कराए हुए हैं, परन्तु पता नहीं वह कितने दिनों से कहां गया हुआ है, पता नहीं कव तक लौटे।"

वह रुपये में से पन्द्रह आने निराश हो गया। एक आना मात्र भी जो उसे आशा थी, वह थी उसके अपने हार की, जो इस समय जमना के गले में चमक रहा था।

उसने ठण्डी सांस खींचते हुए कहा, "अच्छा, फिर अभी यह हार ही ले जाता हूं। जितना भी मिलेगा लेकर काम चला लूंगा, और शेष किसी और से ले लूंगा।"

हार के चौड़े जड़ाऊ नाम के नीचे जमना का हृदय धड़कने लगा। ऐसा कीमती गहना वह छाती से अलग कैसे कर सकती थी। वह चुप की चुप ही रह गई, कुछ भी न वोली। सारी वात प्रेम की समझ में आ गई अर्थात वह रुपये में से सोलह आने निराश हो गया। इसके साथ ही उसके भीतर क्रोध के भाव उपजने लगे। शान्ति द्वारा जमना के वारे में कही गई वातें आज उसे सच्च होती दिखाई देने लगीं कि कंजरी किसी की मीत नहीं होती, उसके हमेशा दो रूप होते हैं—भीतर से और, और वाहर से और।

थोड़ी देर तक प्रतीक्षा में बैठे रहने के पश्चात, वह क्रोध को कुछ हद तक रोकता हुआ वोला, "ला दे फिर जमना, देर हो रही है, सराफों की दुकानें वन्द हो जाएंगी।"

जमना का जव कोई वस न चला तो उसने नकली बुरका उतारकर उसे अपना असली रूप दिखाते हुए गरजकर वोली, "कौन से हार की वात कर रहे हैं आप?"

"इसीकी" आपे से वाहर होते हुए प्रेम ने उसकी छाती की ओर संकेत करते हुए कहा।

"तनिक होश से वात करो। आप इस हार के क्या लगते हैं

जमना ने आँखें दिखाते हुए कहा।

प्रेम ने क्रोध से कांपते हुए कहा, "हैं ! जमना तू किसके साथ बातें कर रही है, जानती है ?"

"एक रण्डीबाज के साथ, एक सट्टेबाज के साथ, एक शराबी के साथ। बस या कुछ और भी सुनने की इच्छा है ?" कहकर वह अपने तकिए से उठी और बाजार की ओर वाली खिड़की के पास जाती हुई बोली, "यदि बची-खुची इज़्ज़त और आबरू की आवश्यकता है, तो तुरन्त बैठक से नीचे उतर जा, नहीं तो......।"

'नहीं तो' का अर्थ प्रेम समझ गया कि जमना का यह संकेत बाजार में घूम रहे सिपाही की ओर है, इसलिए वह उठकर खड़ा हो गया और क्रोध से कांपते हुए बोला, "जमना ! तू इतनी धोखेबाज है, तू इतनी बेशर्म, मैं नहीं जानता था।"

प्रेम से भी दुगनी ऊंची आवाज में जमना बोली, "दगेबाज और बेशर्म की औलाद तो तू कंजर है, जो इतने दिनों से मेरी दौलत के पीछे लारें टपकाता फिरता है। तू समझता है कि मैं तेरी इस नीयत से परिचित नहीं ? तेरे जैसे कई बदमाशों को तो मैंने बाज़ार में खड़े होकर बेच दिया है। बस, उतर जा मेरे मकान से नहीं तो जूतों से निकलवाऊंगी ?"

जमना की बातें सुनकर प्रेम क्रोध से पागल हो उठा। इस इच्छा से कि वह जमना को दो-चार घूंसे जड़कर और अपना हार उसके गले से छीनकर वह नौ-दो ग्यारह हो जाए, आग-बबूला होकर आगे बढ़ा। परन्तु ज्यों ही उसकी दृष्टि दरवाजे की ओर गई, उसका सारा जोश ठण्डा हो गया। क्रोध भी उतरना शुरू हो गया।

सीढ़ियों में तीन-चार बदमाश आस्तीनों को चढ़ाए, घूंसों को तैयार किए खड़े थे और साथ ही बूढ़ी खड़ी हंस रही थी।

जब भी कोई जमना के मकान पर आता था, बूढ़ी छत पर जाने के बहाने सीढ़ियों में छिपकर सारी बातें सुनती रहती थी। इस बातचीत के आधार पर ही जिस समय जिस काम की आवश्यकता पड़ती, वह चुपचाप वैसा ही कर देती। आज जैसा प्रबन्ध भी अक्सर उसे कई बार करना पड़ता था। जैसे ही बूढ़ी ने देखा कि मामला बिगड़ने की सम्भा-

बना है, वह तुरन्त दबे पांव से नीचे उतर गई और बदमाशों को बुला लाई थी। वह इन्हीं कामों के लिए नौकर रखी गई थी और यह तीनों बदमाश भी ऐसे कामों की कमाई पर पलते थे।

अपने-आप को खतरे में घिरा हुआ देखकर, वहां से चले जाने में ही अपनी भलाई समझी। सीढ़ियों में खड़े हुओं ने रास्ता छोड़ दिया और वह जला-भुना नीचे उतर गया। वह अभी सीढ़ियों में ही था कि पीछे से सबने खिल्ली उड़ा दी।

प्रेम की आंखें खुल गईं, परन्तु उस समय जब उनके देखने के लिए बाकी कुछ न बचा था। पहले तो उसने चाहा कि गोपालसिंह के पास अभी जाकर इस आजकी घटना का सारा हाल जा सुनाए और धोखेबाज जमना को इस विश्वासघात का फल चखाने के लिए कोई उपाय करे, परन्तु नौ बज चुके थे, इसलिए इस काम को कल के लिए छोड़ वह घर की ओर चल पड़ा।

बाहर से मुंह की खाकर आए हुए 'बहादुर' के लिए अब घर के बिना और कौन-सा स्थान था।

२९

रात का अन्धेरा फैल रहा था। खिड़की में बैठी हुई शान्ति पति की प्रतीक्षा कर रही थी। उसका मन आज कुछ परेशान और चिन्ताग्रस्त था। एक तो उसे अपनी प्रिय सहेली सुशीला का दुःख था, जिसके विवाह की तैयारियां हो रही थीं और उसने जल्दी ही उससे बिछुड़ जाना था। और फिर वह आज सायंकाल की किसी और मोहल्ले में अपनी मौसी के घर गई हुई थी, जिससे आज शान्ति का मन बड़ा ही उदास था उसकी उदासी का एक कारण यह भी था कि प्रेम भले ही रोज़ समय से पहले घर पर आ जाता था, परन्तु आजकल वह शान्ति से कुछ घुटा-घुटा सा रहता था।

आजकल शान्ति जिस नये जीवन में प्रवेश कर रही है, ऐसी दशा में स्त्रियों का स्वभाव वैसे भी शीतल, शक्की और चिड़चिड़ा-सा हो जाता

है। शान्ति जननी-जीवन में प्रवेश कर रही है। पत्नी के साथ-साथ मां के कर्तव्य भी उसके हृदय में दिनों-दिन उपज रहे हैं। यहां तक कि मां के कर्तव्य, पत्नी के कर्तव्यों को दबाए जा रहे हैं, और यह सौदा उसको कुछ महंगा ही दिखाई दे रहा है।

किसी भविष्य की खुशी की कल्पना से उसका हृदय जहां उमंगों के सागर में तैरने लगता है, वहां कभी-कभी भविष्य में किसी खतरे का विचार उसे बेचैन भी कर देता है। कई बार उसके हृदय में शंका होने लगती कि कहीं वह पति को देकर, सन्तान तो नहीं ले रही?

अपने पति के आदेशों की अवहेलना और उपेक्षा करना शान्ति से छिपा हुआ नहीं, परन्तु वह विवश है। एक दुराचारी और पूर्णरूप से स्वार्थी पुरुष के लिए, जिसने पत्नी को केवल काम-वासना की तृप्ति का साधन समझ रखा हो, ऐसे समय में असन्तुष्ट रहना स्वाभाविक होता है।

शान्ति की सास आजकल उससे बड़ी प्रसन्न है। जो पहले कभी वह से सीधे मुंह बात भी नहीं करती थी, अब उसपर बलिहारी जाती है। मरने से पूर्व पोते को खिलाने की बुढ़िया को बड़ी चाह थी।

पहले तो कई दिनों तक शान्ति ने इस ओर ध्यान न दिया, परन्तु जब पति और अधिक निश्चिन्त होता गया, तो इसके साथ-साथ ही शान्ति की चिन्ता भी बढ़ने लगी।

इसके अतिरिक्त उसे कुछ चिन्ता अपने हार की भी थी। हार अभी तक वापिस नहीं आया था। उसने कई बार पति को इसकी याद दिलाई, परन्तु वह हमेशा यही कह देता, गोपालसिंह ने नमूने के रूप में किसी सुनार को दिया था और वह सुनार किसी विवाह के उपलक्ष्य में अपने गांव चला गया है, आज या कल आया समझो।"

इन्हीं दिनों शान्ति के हृदय में एक और शंका घर करती जा रही थी। यह थी सुशीला के बारे में। विशेषकर जिस दिन से सुशीला ने प्रेम से बाजा सीखना शुरू किया था, उसी दिन से शान्ति के हृदय में कुछ अजीब प्रकार के विचार उठने लगे थे, परन्तु ऐसे व्यर्थ की शंका उत्पन्न करनेवाले विचारों को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं थी, क्योंकि सुशीला पर उसे पूरा विश्वास था। वह जानती थी कि बेशक

सुशीला अल्हड़ और शरारती लड़की है, परन्तु चरित्रहीन नहीं। यह जानते हुए भी पिछले कुछ दिनों से, उसे सुशीला से डर-सा लगने लगा था। भले ही उसने आजतक अपने पति और सुशीला के बीच हंसी-मज़ाक के अतिरिक्त कभी कोई ऐसी-वैसी बात नहीं देखी थी, परन्तु फिर भी उसका हृदय डरता था। जब भी प्रेम के रहते सुशीला वहां होती, शान्ति का हृदय जासूस बनकर, दोनों की बातचीत, हंसी-मज़ाक, यहां तक कि उनकी निगाहों और चेहरों के उतार-चढ़ाव के भावों को पढ़ने में लगा रहता था।

कई बार उसे अपने इन हीन विचारों पर क्रोध भी आने लगता। वह हृदय से उन्हें निकालना भी चाहती, परन्तु वे निकलते न थे, बल्कि बढ़ते ही जाते थे।

कभी-कभी खतरे वाले स्थान पर भी जाने को हमारा मन करता है। हमें अपने घर के किसी कोने में सांप होने का भ्रम पड़ जाए तो हम अवश्य ही वहां छान-बीन करते हैं, भले ही मन ही मन हम डरते भी रहते हैं। ऐसी ही दशा शान्ति की थी। वह सुशीला से जरूर डरती थी, परन्तु फिर भी उससे मिलना चाहती थी।

इस समय खिड़की में बैठी शान्ति इन्हीं विचारों की माला गूंथ रही थी कि दूर से उसे अपना पति आता दिखाई दिया। वह उठकर रसोई में चली गई। कई दिनों से वह पति के लिए खाना स्वयं ही बनाती थी। उसकी सास अक्सर अस्वस्थ रहती थी।

आटा गूंधा पड़ा था। अंगीठी भी जल रही थी। उसने रसोई में जाकर लकड़ियां अंगीठी में डाल दीं और तवे को उसपर रख दिया, परन्तु कई मिनटों के बीत जाने पर कोई अन्दर न आया।

नीचे से ऊपर आने में केवल एक-आध मिनट ही लगाना चाहिए था, परन्तु शान्ति द्वारा कई मिनटों तक प्रतीक्षा करते रहने पर भी किसीके जूतों की आवाज़ न आई।

शायद किसीके साथ बातचीत करने के लिए रुक गए हों, ऐसा सोचकर उसने बेली हुई रोटी को चकले पर ही रहने दिया, सब्ज़ी वाली पतीली को गर्म करने के लिए अंगीठी पर रख दिया और स्वयं खिडकी की ओर गई, परन्तु वहां प्रेम का कोई निशान न था।

"है, दरवाजे तक आकर फिर किधर चले गए?" सोचते-सोचते नीचे उतरी। उसके कान सुशीला की ओर गए। भीतर से बाजे की आवाज आ रही थी। बाजे के स्वरों पर जो हाथ चल रहा था, वह उसका पहचाना हुआ था—उसके पति का हाथ।

और अधिक ध्यान से सुनने के लिए जब वह सुशीला के दरवाजे की ओर बढ़ी तो इतनी देर में वह आवाज मन्द हो चुकी थी। वह कुछ देर तक उसी प्रकार खड़ी रही, परन्तु फिर आवाज न आई।

उसके हृदय में दबी हुई शंका उभरने लगी। उसके हृदय में थोड़ी-सी धड़कन हुई और वह दबे पांव सुशीला के घर के अन्दर चली गई।

वह बैठक के दरवाजे तक पहुंची। सबसे पहले उसकी नजर, सामने वाली दीवार पर लगे हुए बड़े शीशे पर पड़ी। वह जो कुछ देखने के लिए भीतर आई थी, उसकी अब शेष आवश्यकता न थी। शीशे ने आंख के झपकते ही सब कुछ बता दिया।

शान्ति को शीशे में से दो परछाईयां दिखाई दीं, परन्तु वास्तव में एक ही।

देखते ही उसकी आंखों के आगे अन्धेरा छा गया, उसके सारे शरीर का रक्त मानो जम गया।

इसके पश्चात शान्ति वहां नहीं रुकी और किसी तरह अपने घर तक पहुंच ही गई। यह उसकी बहादुरी थी कि वह मूर्छित होकर रास्ते में गिरी नहीं।

ऊपर जाकर वह चारपाई पर लेट गई और माथे को दोनों हाथों से पकड़कर, जो कुछ वह देखकर आई थी, उसके बारे में सोचने लगी, 'क्या जो मैंने देखा है वह ठीक है?' उसको अपना सारा शरीर भिन-भिनाता हुआ-सा लगा। उसका हृदय छाती को चीरकर बाहर आ रहा था।

लेटे रहना उसके लिए कठिन हो गया, कमरे में टहलना भी कठिन था और खड़े रहना भी असह। उसका एक-एक क्षण वर्षों के समान बन गया। वह दीवार को इतने जोर से टक्कर मारना चाहती थी कि जिससे दिवार फट जाए और वह उसमें से होकर आकाश में उड़ जाए।

उसने सोचा था कि पति की प्रतीक्षा में दस-पन्द्रह या अधिक से अधिक बीस मिनट लगेंगे, परन्तु पता नहीं यह मिनट लम्बे हो गए या समय का चक्कर रुक गया, प्रेम के पांव की आवाज़ न हुई।

लगभग एक घन्टा प्रतीक्षा करने के पश्चात वह फिर रसोई में गई। पतीली में जली हुई सब्ज़ी की दुर्गन्ध फैली हुई थी, आग बुझ चुकी थी, बेली हुई रोटी पर पपड़ी जम चुकी थी और आटे में चूहों ने मुंह मारे हुए थे। सास बेचारी तो रसोई को बहू को सौंपकर भीतर पड़ी रहती थी।

रसोई की उसने ऐसी दशा देखी, परन्तु इसका उसके हृदय पर कोई असर न पड़ा। शायद उसके हृदय में और अधिक असर ग्रहण करने का स्थान ही न बचा था।

धीरे-धीरे उसके सोचने-विचारने की शक्ति लौटी। इस घटना पर अच्छी प्रकार सोच-विचार करने के लिए वह फिर चारपाई पर ज लेटी। सोचने लगी, 'सुशीला का मेरे साथ इतना बड़ा विश्वासघात क्या जीवन-भर मित्रता निभाने की डींगें हांकने वाली सुशीला इत गिर गई है? पाप की आंधी के पहले झोंके ने उसके स्त्री-धर्म को जड़ उखाड़ फेंका है? आह सुशीला! मुझे आज पता चला कि तू मेरे स मित्रता स्थापित करके मेरे से मेरा संसार छीनना चाहती थी। मैं पहले ही एक रंडी को लेकर रो-पीट रही थी।'

वह फिर सोचने लगी, 'मेरी ओर से हटकर पति का सुशील ओर गिरना—इसका क्या कारण है? क्या वह मेरे से अधिक है?' उसने मन ही मन अपने और सुशीला के अंग-अंग की आ तुलना की। उसकी कसौटी पर सुशीला हर तरफ से घटिया प्र हुई। रंग, रूप, चेहरा, सूरत, सीरत और विद्या आदि ह गुण को लेकर उसने अपनी सुशीला से तुलना की, परन्तु उस आपको उससे कहीं ऊंचा पाया। केवल एक बात में उसे सुश पलड़ा भारी दिखाई दिया और वह था चंचलता तथा आंखों पर उतरने-चढ़ने वाले हाव-भाव। इसको छोड़, उसे ऐसा भ हुआ कि सुशीला के अंगों में तीखापन और कुछ चटकीलापन आंखों में मादकता का रस, और उसके शरीर में वह सब कु

के असर से कोई भी युवक जख्मी हो जाता है, और उसके भीतर आग-सी जल उठती है। इसके अतिरिक्त उसे अपने-आप में एक और कमी भी अनुभव हो रही थी—शर्मा होने की।

इस समय उसे इतना क्रोध पति पर नहीं आ रहा था, जितना सुशीला पर। सुशीला के पिछले सारे व्यवहार को लेकर उसने फिर से सोचा। उसको पिछली हर एक बात में से, हर एक मुलाकात में से शान्ति को विश्वासघात की बू आने लगी। उसको ध्यान आया कि सुशीला सौ में नब्बे बातें उसके पति के बारे में ही किया करती थी। अधिकतर प्रेम की सुन्दरता पर ही टीका-टिप्पणी किया करती थी।'

वह बार-बार सोचती, 'एक अविवाहित लड़की को भला ऐसी बातों से क्या वास्ता। फिर उसको यह भी याद आया कि सुशीला अक्सर रोज उस समय आती है, जब प्रेम के आने का समय होता है। फिर जब भी वह यहां होती थी, पति किसी न किसी काम से मुझे अन्दर-बाहर भेज देता था।

इन बातों में कोई सार था या नहीं, परन्तु शान्ति को इस समय ये सब पिछली बातें किसी गहरे भेद को सुलझाने वाली लगीं। इसके पश्चात उसे पति की गिरावट का ध्यान आया। इसके आते ही उसका हृदय भर आया। उसका हृदय रोने के लिए उछला, परन्तु सुशीला की काली करतूतों को याद कर उसके भीतर जो क्रोध की ज्वाला भभक रही थी, वह शायद आंसुओं को आंतों में ही सुखा देती थी। वह चाहते हुए भी रो न सकी।

फिर उसे ध्यान आया इतनी देर? क्या अभी इस प्रेम-नाटक का परदा नहीं गिरा?

उसने चाहा कि एक बार फिर सुशीला के घर की ओर जाए। वह उठी, चारपाई के नीचे उतरी परन्तु तुरन्त ही किसी के पांव की आवाज़ ने उसे रोक दिया। यह आवाज़ बूटों की नहीं, बल्कि चप्पलों की थी। वह फिर चारपाई पर बैठ गई।

सुशीला ने आते ही शान्ति को बाहों में भर लिया और सीढ़ियां चढ़ने से आ गई थकावट से लम्बे-लम्बे सांस खींचती हुई बोली, "मैं तो अपनी बहन के लिए बड़ी उदास हो गई थी! तूने चाहे मुझे एक बार

याद न किया हो।"

सुशीला की बांहों का स्पर्श, शान्ति को सर्पणी के कुन्डल के समान था, और उसके शब्द ज़हर में डूबे हुए वाणों के समान। परन्तु वह इतनी जल्दी अपने हृदय को उसके आगे नंगा नहीं करना चाहती थी। सारी शक्ति को लगाकर वह मुस्कराने की कोशिश करती हुई बोली, "जा परे, मैं तेरे साथ नहीं बोलूंगी। प्रतीक्षा करते-करते आंखें भी थक गई हैं, बीबी रानी ज्यूं सैर को जाती है, लौटने का नाम ही नहीं लेती।"

सिर से चुनरी उतारकर, एक ओर फेंकती हुई सुशीला बोली, "अरी फिर क्या करती, रोज़ संदेशे आते थे। मौसी तो अभी भी आने नहीं दे रही थी, ज़बरदस्ती चली आई हूं। तेरे बिना मेरा मन ही नहीं लगता था।"

"अभी आने की क्या आवश्यकता थी। मैं तो सुबह से पता नहीं तेरे घर के कितने चक्कर लगा चुकी हूं। अभी फिर जाने को थी। थोडी देर पहले नीचे गई थी, मथुरादई कड़ाई मांग कर ले गई थी, वही लेने जा रही थी। तेरे घर से बाजा बजने की आवाज़ आ रही थी। पहले तो मैं तेरी ओर आने लगी, परन्तु फिर सोचा खाना आदि बना-कर, एक ही बार जाऊंगी, और वह भी (पति) अभी तक नहीं आए, पता नहीं क्या बात है ?"

शान्ति की इन सभी बातों में से केवल एक ही धुंध बनकर सुशीला के मस्तिष्क पर छा गई, 'बाजे की आवाज़ आ रही थी।' उसके हृदय में कम्प-कम्पी-सी छूट गई। उसने भाव जानने के लिए चोर-निगाह से शान्ति के चेहरे और आंखों की ओर देखा, परन्तु शान्ति अपने पांव प[र] अटल थी।

सुशीला की जान में जान आई। फिर कहने लगी, "अच्छा, मे[री] अच्छी बहन ! गलती हो गई, अब क्षमा कर दे। फिर कभी इत[नी] देर नहीं करूंगी।"

यह वही सुशीला थी जिसे देखते ही शान्ति का हृदय खिल उ[ठता] था, परन्तु आज हालत कुछ दूसरी ही थी। उसकी ओर देखते ही श[ान्ति] का भरा हुआ हृदय उछल पड़ता और वह पूरी कोशिश से उसे रो[कती]

थी।

सुशीला फिर बोली, "और आज इस तरह चुपचाप क्यों है? उदास हो गई है जीजे के लिए? देर हो गई है इसलिए?"

जो कुछ शान्ति सुनना नहीं चाहती थी, वह उसको सुनना पड़ा। उसके हृदय में कुछ तपस-सी होने लगी, जिसे ठण्डी आह भरकर, उसने ठण्डे करने की कोशिश की। उसकी आंखों के आगे का दृश्य बदल गया। सुशीला की बातों का उसने कोई जवाब न दिया।

इस चुप ने एक बार फिर सुशीला के हृदय में भ्रम को जन्म दिया। शान्ति की आंखों से उसे ऐसे डर लगने लगा जैसे अपराधी को पुलिस से। आंख झपकते ही उसके भीतर तेजी के साथ कोई रुह घूम गई, परन्तु उसे यह सब अपने दिल का भ्रम-सा लगा।

अपने हृदय पर काबू पाकर सुशीला बोली, "हैं! क्या बात है आज? (कंधा हिलाकर) बहन! आज तेरा ध्यान किस ओर पहुंचा हुआ है?"

शान्ति का हृदय इस निर्णय पर पहुंचा था कि पति से मिले बिना, यह भेद वह किसीको भी नहीं बताएगी। झट ही उसको अपने इस निर्णय का ध्यान आया, और इसके साथ ही यह सोचकर कि सुशीला उसके मन की हालत कुछ भांप रही है, वह पैंतरा बदलकर बोली, "कुछ नहीं······" इससे आगे वह भूल ही गई कि सुशीला ने उससे क्या पूछा था।

उसकी इस तरह की भाव-मुद्रा को देखकर सुशीला फिर डरी। उसका हृदय धड़कने लगा। शान्ति के सामने बैठना उसके लिए कठिन हो गया।

वास्तव में दोनों ही इस समय यही चाहती थीं कि वह हवा बनकर, एक-दूसरे के सामने से उड़ जाएं।

सुशीला ने फिर अपने डूबते हुए हृदय को ढाढस बंधाई—'तू क्यों घबराता है, शायद कोई और बात हो।' वह फिर तनिक मन पर काबू पाकर बोली, "बात क्या है? बताती क्यों नहीं? आज क्यों इस तरह······" उसके कहते-कहते शान्ति ने एक और ठण्डी आह भरी। सुशीला के बचे-खुचे होश भी गुम होने लगे। उसने आंखों को ऊपर

उठाकर शान्ति की आंखों में झांका। शान्ति इतनी देर में सम्भल चुकी थी। उसकी आंखों में पहले के समान भयानकता नहीं थी। सुशीला का डर कुछ हद तक जाता रहा।

शान्ति वोली, "सुशीला! आज मेरी वड़ी बुरी हालत है, तेरी ही प्रतीक्षा कर रही थी। तेरे विना हृदय का दुःख और किसे सुनाती, पर तूने भी देर लगा दी। किसीने सच कहा है कि दुःख में कोई किसी का नहीं होता।" कहते-कहते शान्ति के आंसू वह निकले और इसी वहाने उसने उठे हुए तूफान को निकल जाने दिया। परन्तु उसका रोना, एकवार शुरू होकर फिर वन्द होनेवाला नहीं था।

उधर सुशील का भ्रम मिट गया। शान्ति के पहले वाक्य—'मेरा बुरा हाल है' ने तो उसे डराया, परन्तु जव उसने इसके अन्त का भाग सुना तो उसके हृदय को शान्ति मिली।

उसने शान्ति को और भी कसकर भुजाओं में ले लिया।

वातचीत की भूमिका तो शान्ति ने वांध ली, परन्तु आगे की वात को वह तुरन्त न सोच सकी। इसीलिए उसे जवाव देने में काफी देर लगी।

अन्त में उसने अपने कवि-हृदय से ही काम लिया और कहने लगी, "आज दोपहर को सोते हुए मैंने एक वड़ा भयानक स्वप्न देखा था।"

उसकी वात को सुनकर सुशीला को अपने डरपोक हृदय पर शर्म आने लगी, वह सोचने लगी—'खोदा पहाड़ और निकली चूहिया।' मैं यूंही डरती रही। किसीने सच कहा है 'चोर के पांव नहीं होते।'

उसने शान्ति के कपोल को धीरे-से थपथपाते हुए कहा, "तू भी विलकुल वहम की मारी हुई है। मुझे तो तूने डरा ही दिया था। मैंने सोचा पता नहीं क्या वात है—भला ही हो। पता नहीं क्यों बुरा-बुरा कह रही है। अभी तक मेरा हृदय धड़क रहा है, देख तो सही?" कहते हुए शान्ति ने सुशीला का हाथ पकड़कर अपने हृदय पर रख लिया। वास्तव में उसका दिल वड़ी तेज़ी से धड़क रहा था।

उसके वात करते-करते, इतनी देर में शान्ति ने भी स्वप्न की कहानी गढ़ ली। कहने लगी, "मुझे स्वप्न में ऐसे लगा, जैसे कोई

विवाह हो रहा हो······।"

बीच में ही सुशीला बोल उठी, "विवाह का स्वप्न तो वास्तव में बुरा है। अच्छा फिर ?"

"फिर जब डोला आया तो मैं भी नववधू को देखने गई।"

"अच्छा ?"

"वह बड़ी ही सुन्दर थी, पर······"

"हां, पर क्या ?"

"मैंने डोले में झांका। ज्योंही मैं उसका घूंघट उठाकर उसकी सूरत देखने लगी, उसने कटार निकालकर मेरे हृदय में घोंप दी। कटार मेरे हृदय के आर-पार हो गई।"

सुशीला, शान्ति को अपने हृदय के साथ लगाकर गुस्से से बोली, "हाय···हाय, मर जाए ऐसी बहू। भगवान करे वह कभी सुहागिन ही न हो, खसम को खानी।"

शान्ति ने उसके मुंह के आगे हाथ देकर, उसे और कुछ कहने से रोक लिया और बोली, "न बहन! गाली न देना, फिर मेरी सहेली को।"

"वह कौन-सी है, मां-बाप को खानेवाली, तेरी सहेली ?"

"पहले सारा स्वप्न सुन तो ले।"

"अच्छा सुना।"

"फिर मैं खून से लथपथ वहीं हृदय को पकड़कर गिर पड़ी। इतने में उसका पति आ गया।"

"अच्छा फिर ?"

"उसको जब मैंने अपना सारा हाल बताया तो उसने मेरी पीठ की ओर से निकलती हुई कटार को हाथ से पकड़कर खींचना शुरू कर दिया। मैं बहुत रोई-तड़पी कि इस तरह न करो, मुझे बड़ी पीड़ा पहुंचती है, परन्तु वह कटार को उसी तरह खींचते हुए कहे जाता था, "ऐसी कटारें, इसी तरह निकाली जाती हैं। अन्त में उसने पूरा जोर लगाकर कटार को खींच लिया। मैंने देखा कटार की मूठ के साथ मेरे हृदय की कई बोटियां चिपकी हुई थीं।"

सुशीला, शान्ति के सिर को अपने कन्धे पर रखकर बोली, "हाय

मर जाए ऐसा······।"

शान्ति ने फिर पहले की तरह ही उसके मुंह के आगे हाथ रखकर उसकी बात को रोक दिया और कहने लगी, "बस री बस ! खबरदार, यदि फिर से उसे गाली दी। वह मेरी सहेली का पति था।"

सुशीला क्रोध से बोली, "खसमों को खाए, ऐसी सहेली और साथ ही उसका पति। परन्तु वह तेरी सहेली कौन-सी थी ? बता तो सही।"

शान्ति ने सुशीला के चेहरे को अपने हाथ से छूकर कहा, "यह थी मेरी सहेली।"

शान्ति का पक्का निर्णय था कि वह अभी इस भेद को नहीं खोलेगी, परन्तु उसका कोमल हृदय इतनी देर तक रुक न सका। रोकते-रोकते भी उसके मुंह से यह बात निकल ही गई।

सुनते ही सुशीला का रंग पीला पड़ गया। उसने आश्चर्य से आंखों को खोलकर कहा, "मैं ?" और इसके साथ ही उसके भीतर से आवाज़ आई, "हां तू।"

इस समय दोनों ही सहेलियों की दशा कुछ अजीब-सी थी। कहने को शान्ति कह तो गई, परन्तु उसे बड़ा पश्चाताप लगा। वह तो पति के सामने ही सुशीला को इस बात का भेद बताना चाहती थी।

इसके पश्चात काफी देर तक दोनों चुप रहीं। किसीके मुंह से कुछ न निकला। सुशीला धरती में समा जाना चाहती थी, और शान्ति उस पर बिजली बनकर गिरना, परन्तु दोनों ही अपने-अपने मनोरथ में सफल रहीं।

लज्जा की भंवर में डूबता हुआ मनुष्य तिनके का सहारा ढूंढ़ता है। सुशीला भी सोचने लगी, '"क्या मालूम यह केवल स्वप्न ही हो। हो सकता है, मेरा मन ज़बरदस्ती ही इसे अपनी बात समझ रहा हो। अगर यह स्वप्न ही है, फिर तो भय की कोई बात नहीं, परन्तु यदि इसे कोई राह मिल गई है तो समझो मलिया-मेट हुआ कि हुआ।' "

उसको याद आया कि, 'उसको लगा था जैसे कोई बाहर है, और पांव की आवाज़ भी हुई थी, शान्ति ने भी तो कहा है कि वह नीचे गई थी, बाजा बजने की आवाज़ आ रही थी। आह ! सर्वनाश।'

इस शंका को मिटाने के लिए उसने शान्ति के चेहरे की ओर देखा और अपने सूखे गले को थूक निगलकर गीला करती हुई, वह बोली, "और वह 'पति' कौन था ?"

शान्ति के जवाब देने से पूर्व ही नीचे से किसीके सीढ़ियां चढ़ने की आवाज आई और खांसने की भी।

शान्ति ने सुशीला की ओर देखे बिना, केवल सीढ़ियों की ओर अंगुली से इशारा करके बोली, "यही था।"

इस समय सुशीला वहां से तुरन्त भाग जाना चाहती थी। वहां अब एक मिनट भी बैठे रहना, उसके लिए दम घुटने के समान था। शान्ति भी यही चाहती थी कि सुशीला उठकर चली जाए। वह अब अकेले में पति से जूझना चाहती थी—शायद सुशीला के रहते वह ऐसा न कर सके।

प्रेम अभी ऊपर पहुंचा ही नहीं था कि सुशीला को जाने का अवसर देने के लिए शान्ति उठकर पिछले कमरे में चली गई। उसका वहां से जाना था कि सुशीला दूसरे दरवाज़े से निकलकर सीढ़ियों की ओर बढ़ी।

जाते ही उसका प्रेम से सामना हुआ। केवल क्षणभर के लिए दोनों की आंखें चार हुईं। प्रेम डरकर सहम गया कि एक ही सांस में कई-कई ताने और नखरे दिखाने वाली सुशीला, आज भीगी बिल्ली की तरह नीचे उतर गई है। उसके दो मुस्कराते हुए होठों में से कुछ निकलता-निकलता रह गया। सुशीला नीचे का दरवाज़ा खोलती हुई बाहर निकल गई।

इस समय साढ़े-नौ बज चुके थे। प्रेम कपड़े उतारकर कुर्सी पर बैठा ही था कि शान्ति ने आकर खाना खाने को कहा।

प्रेम अपने हृदय की घबराहट को मिटाने के लिए पूछने लगा, "क्या बात है, आज तेरी सहेली मेरे आते ही भाग गई है? क्या किसीने बुलाया था उसको?"

इस बात का जवाब देने की बजाए, शान्ति ने कहा, "हाथ धो लो, खाना ठण्डा हो रहा है।"

प्रेम जानता था कि शान्ति सबसे पहले खाने का रोना रोएगी, इसका क्या जवाब देना होगा, वह रास्ते में सोचता हुआ आया था।

ाए ऐसा……।"

शान्ति ने फिर पहले की तरह ही उसके मुंह के आगे हाथ रखकर ी वात को रोक दिया और कहने लगी, "वस री वस ! खबरदार, फिर से उसे गाली दी। वह मेरी सहेली का पति था।"

सुशीला क्रोध से बोली, "खसमों को खाए, ऐसी सहेली और साथ उसका पति। परन्तु वह तेरी सहेली कौन-सी थी? वता तो ही।"

शान्ति ने सुशीला के चेहरे को अपने हाथ से छूकर कहा, "यह थी री सहेली।"

शान्ति का पक्का निर्णय था कि वह अभी इस भेद को नहीं खोलेगी, परन्तु उसका कोमल हृदय इतनी देर तक रुक न सका। रोकते-रोकते भी उसके मुंह से यह वात निकल ही गई।

सुनते ही सुशीला का रंग पीला पड़ गया। उसने आश्चर्य से आंखों को खोलकर कहा, "मैं ?" और इसके साथ ही उसके भीतर से आवाज़ आई, "हां तू।"

इस समय दोनों ही सहेलियों की दशा कुछ अजीब-सी थी। कहने को शान्ति कह तो गई, परन्तु उसे वड़ा पश्चाताप लगा। वह तो पति के सामने ही सुशीला को इस वात का भेद वताना चाहती थी।

इसके पश्चात काफी देर तक दोनों चुप रहीं। किसीके मुंह से कुछ न निकला। सुशीला धरती में समा जाना चाहती थी, और शान्ति उस पर विजली वनकर गिरना, परन्तु दोनों ही अपने-अपने मनोरथ में सफल रहीं।

लज्जा की भंवर में डूवता हुआ मनुष्य तिनके का सहारा ढूंढ़ता है। सुशीला भी सोचने लगी, '"क्या मालूम यह केवल स्वप्न ही हो। हो सकता है, मेरा मन ज़वरदस्ती ही इसे अपनी वात समझ रहा हो। अगर यह स्वप्न ही है, फिर तो भय की कोई वात नहीं, परन्तु यदि इसे कोई राह मिल गई है तो समझो मलिया-मेट हुआ कि हुआ।'"

उसको याद आया कि, 'उसको लगा था जैसे कोई वाहर है, औ पांव की आवाज़ भी हुई थी, शान्ति ने भी तो कहा है कि वह नीचे थी, वाजा वजने की आवाज़ आ रही थी। आह ! सर्वनाश।'

इस शंका को मिटाने के लिए उसने शान्ति के चेहरे की ओर देखा और अपने सूखे गले को थूक निगलकर गीला करती हुई, वह बोली, "और यह 'पति' कौन था ?"

शान्ति के जवाब देने से पूर्व ही नीचे से किसीके सीढ़ियां चढ़ने की आवाज आई और खांसने की भी।

शान्ति ने सुशीला की ओर देखे बिना, केवल सीढ़ियों की ओर अंगुली से इशारा करके बोली, "यही था।"

इस समय सुशीला वहां से तुरन्त भाग जाना चाहती थी। वहां अब एक मिनट भी बैठे रहना, उसके लिए दम घुटने के समान था। शान्ति भी यही चाहती थी कि सुशीला उठकर चली जाए। वह अब अकेले में पति से जूझना चाहती थी—शायद सुशीला के रहते वह ऐसा न कर सके।

प्रेम अभी ऊपर पहुंचा ही नहीं था कि सुशीला को जाने का अवसर देने के लिए शान्ति उठकर पिछले कमरे में चली गई। उसका वहां से जाना था कि सुशीला दूसरे दरवाज़े से निकलकर सीढ़ियों की ओर बढ़ी।

जाते ही उसका प्रेम से सामना हुआ। केवल क्षणभर के लिए दोनों की आंखें चार हुई। प्रेम डरकर सहम गया कि एक ही सांस में कई-कई खाने और नखरे दिखाने वाली सुशीला, आज भीगी बिल्ली की तरह नीचे उतर गई है। उसके दो मुस्कराते हुए होंठो में से कुछ निकलता-निकलता रह गया। सुशीला नीचे का दरवाजा खोलती हुई बाहर निकल गई।

इस समय साढ़े-नौ बज चुके थे। प्रेम कपड़े उतारकर कुर्सी पर बैठा ही था कि शान्ति ने आकर खाना खाने को कहा।

प्रेम अपने हृदय की घबराहट को मिटाने के लिए पूछने लगा, "क्या बात है, आज तेरी सहेली मेरे आने ही भाग गई है? क्या किसीने बुलाया था उसको ?"

इस बात का जवाब देने की बजाए, शान्ति ने कहा, "हाथ धो लो, खाना ठण्डा हो रहा है।"

प्रेम जानता था कि शान्ति सबसे पहले खाने का रोना रोएगी, इसका क्या जवाब देना होगा, वह रास्ते में सोचता हुआ आया था।

रुमाल के साथ माथे का पसीना पोंछता हुआ वह कहने लगा, "खाने के लिए तो आज बिलकुल भूख नहीं है। सुबह से पेट में दर्द हो रहा है और एक मित्र ने थोड़ा खिला दिया था।"

शान्ति जानती थी कि पेट दर्द के इस रोगी को जिस हकीम ने 'कुछ खिला दिया' है उसने 'कुछ पिला' भी दिया होगा—शायद ठर्रा। ठर्रा···।

परन्तु आज उसने कोई शिकायत नहीं की, कोई नाराज़गी भी प्रकट नहीं की—न देरी से आने के बारे में और न ही खा-पीकर आने के बारे में।

उसने कोई जवाब न दिया चुप-चाप वापिस चली गई। प्रेम ने सोचा, 'चलो बला टली', परन्तु अपने प्रश्न का जवाब न पाकर, उसके मन को चिन्ता खाने लगी। यह चिन्ता इतनी बढ़ गई कि उसके लिए बैठे रहना कठिन हो गया। वह उठकर रसोई की ओर गया। वहां जाकर, देखते ही वह हक्का-बक्का रह गया। सब्ज़ी वाली पतीली, शान्ति के हृदय के समान भीतर से जलकर काली हुई पड़ी थी।

वहां से हटकर प्रेम मां के कमरे में गया। रसम निभाने के ढंग से उसने मां से उसका हाल-चाल पूछा और फिर सोने के कमरे में चला गया। शान्ति चारपाई पर लेटी हुई थी। प्रेम ने उसके कन्धे को हिलाते हुए कहा, "आज क्या बात है?" परन्तु शान्ति बोली नहीं।

"जाओ जाकर अपनी नई बीबी को ले आओ और मज़े उड़ाओ।" कहते-कहते शान्ति का गला फूल गया। उसके चेहरे पर इतना रक्त चढ़ आया कि उसकी आंखें फटने को हो आईं।

बोलते-बोलते उसका सांस फूल गया। पति से क्या जवाब मिलता है, इस आशा से उसने उसके चेहरे की ओर देखा।

प्रेम की आंखें एक दोषी के समान नीचे धरती की ओर झुकी हुई थीं। कुछ तो उसे जमना वाली घटना ने मार दिया था और इसपर भी एक और चहेती पकड़ी गई। उसके होश-हवास उड़ते जाते थे।

बात बढ़ गई तो पता नहीं इसका परिणाम कैसा निकले, ऐसा सोच-कर प्रेम अपनी चारपाई पर जा लेटा।

शान्ति का हृदय भी इस समय थक चुका था। इस घटना के बारे में और खींचा-तानी करने से उसके हृदय को और अधिक धक्के लगते

थे। इसलिए अपने हृदय के बोझ को हल्का किए बिना ही वह मुंह सिर को ढककर लेट गई।

लेट गई, परन्तु लेट न सकी। भले ही वह इस समय, इस विषय में और कोई बात नही छेड़ना चाहती थी, परन्तु उसकी यह इच्छा थी कि पति उसको बुलाए, मनाए और गिड़गिड़ा कर क्षमा मांगे।

इस प्रतीक्षा मे वह कितनी देर तक करवटें बदलती रही। वह सोच रही थी अभी पति उठा, अभी उसने आकर पाव पकड़े। परन्तु न कोई उठा और न ही आकर किसीने शान्ति के पाव पकड़े। कौन उठता और कौन मनाता? प्रेम का हृदय डूबने लगा। अपनी ही ठडक से वह मरा जाता था। उसने फिर पूछा, "बोलती नही, नाराज हो गई है? एक जरूरी काम के कारण से आज खाना खाने नही आ सका, दुकान से ही चला गया था, एक आसामी के साथ हिसाब चुकता करना था, वह दो-तीन भुगतानों को भुलाए जा रहा था। मैंने सोचा कि आज घटा-दो घटे लगाकर काम निपटा ही आऊं। वहां अधिक समय लग गया। वहां से उठकर······।"

'एक चोरी और इसपर भी मक्कारी' यह सोचकर शान्ति बात काटकर बोली, "मुझे पता है जिन आसामियो के साथ हिसाब-किताब हो रहे थे। जिस समय आप बही-खाता खोलकर नई आसामी के साथ हिसाब-किताब कर रहे थे, उस समय मैं सुशीला के दरवाजे के बाहर खड़ी सब कुछ देख रही थी।"

प्रेम के हवास उड़ गए। उसके मुह से कुछ न निकला। मौके पर पकडा गया चोर, क्या बहाना बना सकता है।

शान्ति के हृदय में जिन विचारों की बाढ को उसके संयम के बांध ने अब तक रोक रखा था, उसे प्रेम की चुप्पी ने तोड़ डाला।

शान्त और गम्भीर बदली मे से भी कभी-कभी रगड़ खाकर तेज और चमकीली बदली चमक उठती है।

क्रोध से शान्ति के होंठ कांपने लगे, उसकी आखो में से चिनगारियां निकलने लगी। वह धरती को कम्पा देनेवाली आवाज के साथ बोली, "अभी भी आने की क्या आवश्यकता थी। उस आसामी ने आपको रात के लिए ठहरने न दिया? दुकान से ही आप बाहर चले गए थे, यं क्यों?

कहते कि दरवाज़े पर से होकर पड़ोसिन आसामी के पास चले गए थे। मैं तो कई दिनों से साली और जीजे के रंग देख रही थी, परन्तु मुझे उस रंडी से यह आशा न थी। एक घर तो डायन भी छोड़ देती है। मेरा अब इस घर में क्या रह गया है। प्रेम के ऊपर तो जैसे आसमान ही आ गिरा था। वह आज तक जिस आशा के वल पर समय को धकेलता आ रहा था, आज न केवल उस आशा का अन्त हो गया था, वल्कि पिछले और आज के मक्कार जमना के व्यवहार को याद कर-कर उसकी छाती फटी जा रही थी। भले ही यह अब की घटना कोई मामूली न थी, परन्तु 'कल क्या वनेगा' इस चिन्ता की तुलना में उसे आजकी घटना तुच्छ लगी। आनेवाले दुःखों से उसे वचने का कोई भी मार्ग दिखाई नहीं दे रहा था। मकान वेचकर, सारा ऋण चुका पाने की भी उसे आशा न थी। उसके सामने दो चीज़ें मुंह फाड़े खड़ी थीं—एक जेल और दूसरी मौत। दोनों में से एक के मुंह में उसे जाना ही पड़ेगा।

ज्यों-ज्यों रात वीतती जा रही थी, त्यों-त्यों शान्ति के स्वाभिमान को ठेस पहुंच रही थी। प्रेम की चारपाई का तनिक-सा हिलना था उसके कपड़ों का सरकना, शान्ति को चौकन्ना वना देता था, परन्तु प्रेम ज्यों का त्यों पड़ा रहा।

क्या प्रेम उससे अपनी गलती के लिए क्षमा मांगना नहीं चाहता था? अवश्य चाहता था, परन्तु उसकी यह भूल कोई मामूली भूल न थी, जिसके लिए उसकी क्षमा याचना सफल होती। इसलिए वह चाहते हुए भी, उठ न सका और न ही शान्ति को कुछ कहने के लिए उसकी ज़वान पर कोई शव्द आया।

लोग कहते हैं—समय एक ऐसी दवा है जो हृदय के हर एक घाव को भर देती है, परन्तु कभी-कभी स्थिति विलकुल इससे विपरीत हो जाती है। यह दवा कभी-कभी घाव को गलाकर विगाड़ भी देती है। रात्री का समय ज्यों-ज्यों वीतता जाता था, शान्ति के हृदय के घाव त्यों-त्यों विगड़ते जा रहे थे, और इसके साथ ही उसका स्त्री-स्वाभिमान वाणों की वौछार से छलनी होता जा रहा था। शान्ति जो वास्तव में शान्ति ही थी, इन कुछ घन्टों के प्रभाव से भयानक और हिंसक सिंहनी वनती जा रही थी। अन्त में न जाने किस समय उसकी आंख लग गई।

प्रभात के समय जब वह जागी तो प्रेम की चारपाई खाली पड़ी थी। दोपहर को वह खाना-खाने के लिए भी न आया। जब उसकी मा ने नौकर को दुकान पर भेजा तो उसने लौटकर बताया कि दुकान बन्द थी और तालों को लाख की मोहरें लगी हुई थीं। सुनते ही शान्ति और उसकी सास अवाक रह गई। शान्ति आसमान से गिरी और खजूर में अटक गई।

३०

जिस जमना बाई को प्रेम आज तक सत्यवादी समझता रहा था, उसके विश्वासघात के विचारों ने, सारी रात उसकी आंखों में नींद न आने दी। अगर उसका हृदय इस एक घेरे से भी घिरा होता तो शायद क्षण भर के लिए उसे नींद आ जाती, परन्तु सुशीला वाली घटना तो उसके लिए प्रलय ही ले आई थी। वह लेटा-लेटा सोच रहा था, मुझे अपने कर्मों का ही फल मिला है, मैंने शान्ति के साथ विश्वासघात किया तो प्रकृति ने मुझे इसका दण्ड देना ही था।' उसकी कई बार इच्छा हुई कि वह अभी उठकर शान्ति के पांव पकड़ ले परन्तु उसका हृदय कहता, 'शान्ति इतने पर भी क्षमा नहीं करेगी।'

इससे भी बड़ी चिन्ता, जो उसका रक्त चूस रही थी, रुपयों के बारे में थी। और वह बार-बार यही सोचता जा रहा था, 'बस अब तो मौत या जेल इन दोनों को छोड़ और कोई रास्ता मेरे लिए नहीं बचा।'

रात भर जागने के पश्चात वह चारपाई पर बैठा सोच रहा था, 'बैंक के भुगतान करने में शायद दो ही दिन शेष हैं और दूसरे लेनेवाले भी यमदूत बनकर पीछे लगे हुए हैं। जहर खाने को भी पैसा नहीं। बस एक-दो दिन में ही यदि कोई बचाव का उपाय हो सके तो शायद बच जाऊं, नहीं तो......।'

सोचते-सोचते वह इस निर्णय पर पहुंचा कि मकान को बेचकर आधा या चौथाई ऋण चुकता हो सकता है। परन्तु इस काम के लिए भी कुछ दिन चाहिएं। पहले दलालों को मिलकर सौदा तय करना, फिर

ा-पढ़ी करनी और फिर रजिस्ट्री करवानी, तब कहीं जाकर रुपया
आएगा। परन्तु इतनी देर में तो वह अन्धेरी में तिनके के समान
कर कहीं का कहीं जा गिरेगा।

तब फिर क्या किया जाए ?

अनेकों सोचों-विचारों के पश्चात उसे एक तरकीब सूझी, 'य
ान्ति के सारे आभूषणों को आज ही बेच दिया जाए तो लगभग अ
ुगतानों के लिए रुपया मिल सकता है और शेष को बाद में मकान
बेचकर या गिरवी रखकर चुका दूंगा। परन्तु इसके पश्चात क्या होग
इतना कुछ करने पर भी केवल ऋण से छुटकारा मिलेगा, पास में तो
फूटी कौड़ी भी नहीं बचेगी। चलो, फिर क्या हुआ। दुःख की घड़ी तो
राजाओं-रानियों पर भी आती है। किराए के मकानों में भी तो लोग
रहते हैं। नौकरी-चाकरी करके, मेहनत-मज़दूरी करके भी तो लोग पेट
को पालते हैं। परन्तु बेचारी शान्ति घर से बेघर हो जाएगी, केवल
मेरी करतूतों की वजह से।

उसने खोई हुई शान्ति के चेहरे को एक नज़र भर कर देखा।
उसका हृदय भर आया। आज उसको यह भोली सुन्दरता और सभी
दिनों की तुलना में अधिक प्रिय लग रही थी। परन्तु प्रेम ने सम्भलने
में देर कर दी थी। अब वह ऐसी भंवर में फंस चुका था, जहां से दोनों
किनारों की दूरी एक समान थी, न वह पीछे को लौट सकता था, न ही
आगे को बढ़ सकता था। उसकी नाव अपने ही बोझ से डोलती और
डूबती जा रही थी और उसके साथ-साथ उसकी एक साथिन को गहरे
पानी की गोद में लिए जा रही थी।

वह मन को पक्का करके चारपाई से उठा। चारपाई की बाजू
शोर किया और वह डर गया कि कहीं शान्ति जाग न जाए, पर
शान्ति बेहोश पड़ी थी।

दबे पांव वह भीतर गया और बक्से में से चाबियां निकाल
पेटी को जा लगाईं। सारे अभूषणों को निकालकर उसने रूमाल में ब
लिए, इसके अतिरिक्त शान्ति द्वारा कंजूसी बरतकर जोड़ी हुई
की दो-तीन पोटलियां भी उसके हाथ लगीं, उनको भी उसने अपने
के हवाले कर दिया और पेटी को फिर उसी तरह बन्द कर दिया।

चाबियों को जहां से निकाला था, ज्यों की त्यों रखकर, सांस को रोकते हुए वह बाहर निकला।

जाती बार एक बार फिर उसने शान्ति के सुन्दर, परन्तु मुरझाए हुए चेहरे की ओर देखा, जो शायद इस समय किसी भयानक नाटक का भयानक स्वप्न देख रही होगी। कांपती हुई टांगों को सम्भालता हुआ वह चला गया।

३९

घर से निकलकर प्रेम मार्ग में सोचता जाता था, 'इतने गहनों से क्या बनेगा? एक तो वास्तव में गहना है थोड़ा, जो भारी था, वह तो उस चुड़ैल जमना के कफन पर डाल दिया, दूसरा यह भी जड़ाऊ। नगों पर ही अधिक लागत आई थी, परन्तु देखते समय तो सराफों ने इन कांच की चूड़ियों के आधे दाम भी नहीं लगाने। जिस गहने में एक तोला नग होंगे, उसकी बजाए वह दो-अढ़ाई तोले काट, काट लेंगे। इस तरह तो ऊंठ के मुंह में जीरे वाली बात ही बनेगी।"

सोचते-सोचते उसको ध्यान आया, 'गोपाल जो कहता था मेरा मकान गिरवी रखकर, लगभग पांच हजार रुपया ले लेना। यदि वह भी इस समय कृपा कर दे, फिर तो समझो काम बन गया। भले ही कपटी जमना ने मुझे साथ मिलाकर गोपालसिंह के साथ कपट करना चाहा था, परन्तु फिर भी गोपालसिंह को मेरे पर पूरा विश्वास और मेरे से सच्चा स्नेह है। इसके साथ मुझे चाहिए कि मैं गोपालसिंह को बदचलन औरत की चालों से सावधान कर दूं। जो मेरी नहीं बनी, उसकी कब बनेगी। ऐसा न हो कि पत्नी बनते-बनते मेरे प्रिय को कोई धोखा ही दे जाए।'

दिन होते ही प्रेम ने गोपालसिंह को उसके घर जा जगाया। प्रेम का मुरझाया हुआ चेहरा और उड़ा हुआ रंग देखकर गोपालसिंह समझ गया कि आज जरूर ही कोई गुल खिला है। वह जानता था कि प्रेम की माली हालत, अब बस टिमटिमाते हुए दीपक के समान है। इसीलिए वह

कई दिनों से सोच रहा था कि भले ही मैंने प्रेम का घर उजाड़ने में कोई कसर नहीं छोड़ी, परन्तु अब आखरी लूट में से भी तो कुछ न कुछ हाथ लगना ही चाहिए, चाहे यह जाते चोर की लंगोटी के समान ही क्यों न हो।' परन्तु अभी तक गोपालसिंह का दाव नहीं लगा था। गहनों और मकान इन दोनों पर उसकी नजरें थीं।

हाल-चाल पूछे जाने पर प्रेम ने कल वाली सारी घटना उसको विस्तार के साथ सुना दी। परन्तु हार की बात नहीं बताई, क्योंकि वह उसने गोपालसिंह से चोरी दिया था। वह डरता था कि यदि गोपालसिंह को बता दिया तो वह अवश्य डांटेगा।

बात सुनकर गोपालसिंह को कोई बहुत हैरानी नहीं हुई, क्योंकि दोनों ओर से इतने दिनों तक कुछ न मिलने से वह बिगड़ी-बिगड़ी-सी दिखाई देती थी, परन्तु इतनी जल्दी आंख फेर लेगी, अभी उसको आशा न थी।

"हैं, यह बात?" बड़ा क्रोध और हैरानी दिखाते हुए गोपालसिंह कहने लगा, "मेरे भाई के साथ धोखा! उस फ़रेबन का कुछ न रहे। अगर मैं आज ही जाकर उसकी बोटी-बोटी न कर दूं, तो मुझे मां ने नहीं किसी कुतिया ने जन्मा समझो।"

मन ही मन गोपालसिंह कहने लगा, 'बेटा! तू भीतर ही भीतर सांझीदारी कर सोने की लंका सम्भालना चाहता था परन्तु तू नहीं जानता था कि सब कुछ खो देने के पश्चात तुझे मेरी ही शरण में आना पड़ेगा।'

उसको ढांढस बंधाते हुए वह कहने लगा, "तू तनिक भी चिन्ता मत कर। अगर वह इस तरह करने लगी है, तो मेरा भी नाम गोपालसिंह है। एक के दो-दो न दिलवाऊं तो मेरा जन्म लेना भी फिर किस काम का। आज सायंकाल तक या अधिक से अधिक कल तक तुझे पता चल जाएगा। जब तक कौड़ी-कौड़ी तेरी जेब में वापिस न लाकर डालूं, मेरे लिए खाना (थूक फेंककर) हराम हो।"

प्रेम की जान में जान आई। उसके निराश हृदय में आशा की लहर दौड़ गई और धमनियों में जमे हुए रक्त में गर्मी आ गई।

वह दर्दभरी आवाज़ में बोला, "गोपाल मियां! भैय्या! अब तो

तेरा या भगवान का ही आसरा है। मैं तो इस समय मृत्यु के मुंह में हूं। कल बैंकों के भुगतान करने हैं।"

यह बात प्रेम ने यह सोचकर कही थी कि उस दिन की तरह आज भी गोपालसिंह तुरन्त कह देगा कि मेरा मकान जाकर गिरवी रख दे। और एक-दो बार मना करने के पश्चात वह धन्यवाद करते हुए उसकी सहायता को स्वीकार कर लेगा, परन्तु उसकी यह इच्छा पूरी न हुई। गोपालसिंह ने कुछ मुनी-अनमुनी करके जवाब दिया, "फिर तूने भुगतानों के बारे में क्या सोचा है?"

"कुछ नहीं, सोचना क्या है। अभी जो कुछ गहने थे ले आया हूं, परन्तु इसके साथ क्या बनना है, यूंही मुह पर कालख लगाने वाली बात है।"

गोपालसिंह कई दिनों से हीरासिंह से सुनता आ रहा था कि आज उसने प्रेम पर दावा कर दिया है, उसने कुड़की के आदेश ले लिए हैं। आज तो उसको यह सूचना भी मिल गई थी कि प्रेम की दुकान की कुड़की होनेवाली है।

प्रेम के बारे आज की सूचना पाकर प्रातःकाल से ही गोपालसिंह चिन्ताग्रस्त था कि हम शायद सब ओर से सूखे ही रह जाएं। परन्तु यह सुनकर कि प्रेम की जेब में इस समय गहने हैं, उसका सेर भर खून बढ़ गया। वह सोचने लगा, 'भागे जाते चोर की लंगोटी ही सही।' मकान तो गया सो गया। परन्तु गहने तो अब कहीं नहीं जा सकते—रात होने से पहले ही मेरी जेब में होंगे।' उसको क्या ज़रूरत पड़ी थी जो यह बातें वह प्रेम को बताता, परन्तु यह बातें उसे इस समय 'छू-मन्त्र' का काम देने वाली लगीं। तुरन्त ही वह मन में कोई खास निर्णय लेकर, निश्चिन्ताभाव से प्रेम को कहने लगा, "यही बात ठीक, और इसके अतिरिक्त इस समय हो भी क्या सकता है। मैंने उस दिन तुझे कहा भी था कि मेरा मकान गिरवी रखकर रुपये ले ले। अगर तू उस दिन मेरी बात मान लेता तो मेरा दस हज़ार का मकान सट्टे में तो न चला जाता।"

गोपालसिंह ने यह झूठ ही बोला था क्योंकि न ही उसका कोई मकान था और न सट्टे में गया था, परन्तु प्रेम ने इसको सच मान

लिया और वोला, ''सट्टे में, तूने मकान को सट्टे पर लगा दिया ?''

''किस्मत जो फूटी थी। अपनी ओर से तो कमाने के लिए काम किया था, परन्तु दाव उलटा पड़ गया। अच्छा, जैसे भगवान की इच्छा, चिन्ता किए क्या होता है।''

'चलो इधर से भी जवाव' ऐसा सोचकर प्रेम वोला, ''फिर मैं क्या करूं ? अपना मकान वेच दूं ? परन्तु वह भी तो इतनी जल्दी नहीं न विक सकता।''

गोपालसिंह मन में कहने लगा 'वेटा, मकान अव कुड़की वालों का या तेरा ?'

उसने जवावा दिया, ''प्रेम मकान इतनी जल्दी नहीं विक सकता। और मैंने तो सुना है तेरे मकान की कुड़की हो चुकी है। अभी-अभी तेरा मुनीम हीरासिंह वताकर गया है। तुझे ही ढूंढने आया था। साथ में कह रहा था, ''प्रेम मिले तो कह देना, कहीं इधर-उधर हो जाए गिरफ्तारी के वारंट भी निकल चुके हैं।''

सुनकर प्रेम को मूर्छा-सी आने लगी। उसकी सभी योजनाएं मि में मिल गई। वह घवराकर वोला, ''तो अव मैं क्या करूं ?''

गोपालसिंह वोला, ''मेरा तो यही विचार है कि गहनों को वेच जो मिलता है ले ले। वैंक वालों को थोड़ा वहुत दे-दिला कर फैस करवा दूंगा। मैं एक-दो वड़े आदमियों को साथ ले चलूंगा।''

''और कुड़की-वारंटों का क्या होगा ?''

''उनकी तू चिन्ता मत कर, झट रद्द करवा लूंगा।''

सुनकर, एकवार फिर गोपालसिंह के एहसान से प्रेम का सिर गया। उसने गोपालसिंह से पूछा, ''फिर तेरा क्या विचार है गह वेच दूं जाकर ?''

थोड़ी देर सोचने के पश्चात गोपालसिंह वोला, ''हां। औ हो सकता है। परन्तु मैंने तो यह भी सुना है कि एक-दो जनें तेरे वारंट लिए घूम रहे हैं, यदि उन्होंने तुझे गहनें वेचते हुए या लिया, तो काम विगड़ जाएगा।''

सिर से पांव तक संकटों में फंसे हुए प्रेम को एक ओर सं

'ऐसी हालत में तो मेरा घर से वाहर

खतरे से खाली नहीं। अगर बेगाने बेटों ने आज जेल भिजवा दिया तो मैं क्या कर सकता हूं।' उसका बाल-बाल गोपालसिंह की भलाई की कामना करने लगा। जिसने समय पर उसे आनेवाले खतरे से सावधान कर दिया है।

यह बोला, "फिर अब क्या किया जाए?"

गोपालसिंह, "मेरा विचार है यदि तूने गहना बेचना ही है तो यहां अमृतसर में मत बेचना। ऐसे कर, आजका दिन कहीं छिपकर बिता ले और रात साढ़े-दस की गाड़ी से लाहौर चले जाना। सुबह वहां गहना बेचकर ग्यारह बजे घर लौट आना। बस न किसी की है-है और न किसी की खैं-खैं।"

"तब तेरा विचार है कि रात की गाड़ी से लाहौर चला जाऊं। यही ठीक है। अच्छा, तो फिर दिन कहां बिताऊं?"

"अपने घर, और कहां?"

"और यदि जाते ही, किसीने रास्ते······।"

"यह भी तेरा कहना ठीक है। अच्छा फिर यूं कर कम्पनी बाग से पार होकर 'दो मुंही' की ओर चला जा। वहीं आस-पास के बागों में कहीं लेट जाना और अन्धेरा होते ही नौ के लगभग स्टेशन पर चले जाना। वैसे तो तू यहीं ठहर जाता, परन्तु इस स्थान के बारे में तो सभी को पता है। क्या पता कोई यहीं पर चला आए।"

"तेरी यह बात ठीक है। अच्छा तो मैं फिर चलता हूं, फिर दिन चढ़ आने पर शायद किसी की आखों पड़ जाऊं, सुबह-सुबह ही निकल जाता हूं।"

"अच्छा। परन्तु ध्यान से रहना, जोखम तेरे पास है।"

"तू इसकी कोई चिन्ता न कर।"

"कल किस समय मिलेगा?"

"लाहौर से होकर सीधे यहीं चला आऊंगा, फिर यहां से जिसको लेना होगा, साथ लेकर बैंक की ओर चले जाएंगे।"

"अच्छा, खाना फिर इकट्ठे ही खाएंगे।"

"ठीक है।" कहकर प्रेम खड़ा हो गया। जाते समय गोपालसिंह ने व्हिस्की का अधा उसकी जेब में डाल दिया, जिसे उसने धन्यवाद

सहित स्वीकार किया। खास करके इसलिए भी कि आज पीने के लिए उसके पास कुछ नहीं था। और ठेके ने तो एक तरह से उसे कल ही जवाब दे दिया था।

३२

आज जीवन में पहली बार प्रेम को अपनी बेबसी का अनुभव हुआ। बार-बार उसके मस्तिष्क में एक ही प्रश्न उठता कि 'मैंने जीवन में ऐसा भी दिन देखना था कि आज चोरों की भांति छिपता फिर रहा हूं? क्या मेरे जीवन की नाव इतनी बोझिल हो चुकी है कि उसके तैरते रहने की कोई आशा शेष नहीं रही? जीवन का वह कौन-सा मोड़ था, जिसपर से मुड़ते हुए मैं अपने असली मार्ग को छोड़, कुमार्ग पर आ गया था?'

वह सारा दिन बागों में घूमता-फिरा। दोपहर को जब उसे भूख ने सताया, तो उसने बड़े अस्पताल के समीप वाले तन्दूर से खाना खाया। उसके पास केवल एक ही रुपया था, जिसमें से उसने लाहौर जाने का किराया रख लिया और शेष पैसे तन्दूर वाले को दे दिए।

छः बजे के लगभग, उसका मन अधिक उचाट होने लगा। आगे और पीछे की चिन्ताओं ने उसे आ घेरा। उसने जेब में से बोतल निकाली, उसमें नदी का पानी मिलाया और सारी बोतल को चढ़ा गया।

कोट के भीतर रखी हुई भारी गांठ को हाथ से दबाकर, बोतल को तकिया बनाकर, नदी के किनारे नाशपाती के बाग में वह सो गया। स्टेशन पर जाने में अभी काफी समय था।

वह गहरी नींद सो रहा था, जबकि अचानक टांग पर लगी हुई ठोकर ने उसे जगा दिया। काफी अंधेरा हो चुका था। उसकी नशे में डूबी हुई आंखें अभी भी खुलना नहीं चाहती थीं, परन्तु एक घड़कती हुई आवाज ने उसमें चेतना ला दी, "उठ बे कौन है तू, चोरों की तरह छिपा हुआ है?"

प्रेम ने आंखों को पूरी तरह से खोलकर उस बोलने वाले की ओर देखा और उसको सिपाही की वेश-भूषा में देखकर वह डर गया। सिपाही के साथ दो आदमी सादे कपड़ों में भी थे।

प्रेम कुछ पूछने वाला ही था कि सिपाही का साथी उसको पहचानते हुए बोला, "यह भी उन्हीका साथी लगता है (गिर के नीचे रखी हुई बोतल को देखकर) तभी तो शराब की बोतलों को साथ लिए फिर रहा है, नहीं तो इस समय यहां पर आकर छिपने का क्या मतलब था? हवालदार साहिब! इसकी तलाशी लो। मेरा विचार है इसकी जेब में से चोरी का माल निकलेगा और चोरों का पता भी लग जाएगा।"

प्रेम की समझ में कुछ न आया। वह उठकर खड़ा हो गया। तीन आदमियों से अपने-आपको घिरा देखकर, उसका हाथ तुरन्त कोट की जेब की ओर गया। जेब पहले की तरह ही भारी थी। वह पूछने लगा, "क्या…क्या बात है? …आप किसको ढूंढते हैं? मैं तो…।"

उसकी पूरी बात को सुनने से पूर्व ही वर्दी वाला उसके कोट को कंधे से पकड़कर जोर से खींचते हुए कहने लगा, "बस खड़ा रह यहीं। सच-सच बता, तू इस समय कहां से आ रहा है?" (उसकी भारी जेब को हाथ से परखकर) और यह तेरे पास क्या है?"

दूसरा बोला, "हवालदार साहिब! जल्दी से देखो, यह चोरी के माल यहां दबाने के लिए ही आया है।" कहते हुए उसने जबरदस्ती प्रेम की जेब में से वह पोटली खींचली।

प्रेम की जबान खुश्क हो गई। उसका सिर चकराने लगा। उसने काफी कुछ कहा-सुना, अपने-आपको निर्दोष बताने के लिए उसने काफी हाथ-पांव मारे, परन्तु उसकी किसीने न सुनी। पोटली को खोलकर तीनों ही उसमें बन्धे गहनों की देख-भाल करने लगे।

अन्त में वर्दी वाले ने प्रेम की बाजू को कसकर पकड़ लिया और पोटली को उसी तरह बांधकर अपने साथी को देते हुए बोला, "ले इसे सम्भाल के रख ले। इन्स्पैक्टर साहिब अभी आते होंगे। उनके आने तक मैं इसको यहीं रखता हूं, तुम दोनों। (एक ओर इशारा करके उन पेड़ों के आस-पास जाकर देखो, इसके दूसरे साथी भी अवश्य यहीं कहीं छिपे हुए होंगे।"

"वहुत अच्छा" कहकर दोनों ही तुरन्त उधर दौड़ गए।

प्रेम चुप का चुप ही रह गया। यह सारी घटना उसे जादू के खेल के समान लगती थी। उसके लिए खड़ा रह पाना कठिन हो गया और वह वहीं बैठ गया।

वह कुछ कहने वाला ही था कि वर्दी वाला एक ओर को देखकर अपने-आप से कहने लगा, "वह आ गए इन्स्पैक्टर साहिव।" फिर उसको धमकाते हुए बोला, "यहीं बैठे रहना, तनिक भी हिला-डुला तो देखना फिर" और आप ऊंची-ऊंची आवाज़ देते हुए नदी के किनारे-किनारे जाने लगा, "खां जी, खान साहिव, इधर आ जाओ, नदी के किनारे—उधर दाईं ओर से होकर। एक मुज़रिम पकड़ा गया है।" कहते-कहते वह अन्धेरे में लुप्त हो गया। प्रेम हक्का-बक्का वहीं का वहीं बैठा रह गया।

ज्यों-ज्यों समय वीतने लगा, उसको अपनी सारी स्थिति का ध्यान आने लगा। लौटकर न ही कोई सिपाही आया और न हो कोई इन्स्पैक्टर।

"ओह! वे सब कुछ ले गए।" इसका ध्यान आते ही वह इधर-उधर भाग—दूर तक निगाह दौड़ाई, परन्तु वहां तो किसीका नाम-निशान तक नहीं था। सब ओर अन्धेरा या फिर कभी-कभी हवा के झोंके से पेड़ों के हिलने की आवाज़ आती थी।

वह वार-बार सोचता, 'क्या था और क्या हो गया? दुर्भाग्य मेरा कहीं भी पीछा नहीं छोड़ता। आह, अव मैं कहां जाऊं? क्या करूं?'

दोनों रास्तों में से उसने पूर्णरूप से दूसरा ही रास्ता चुन लिया—जेल नहीं, मौत, केवल मौत।

उसके सिर को चक्कर आने लगे और अन्त में वह अधमरा होकर वहीं लेट गया।

३३

"सांप को सांप काटे तो विष किसको चढ़े', गोपालसिंह और जमना के वीच यही कहावत काम कर रही थी। गोपालसिंह तो प्रेम को

लूटने और विशेषकर शान्ति को किसी तरह पा लेने के लिए जमना को अपने साधन के रूप में प्रयोग करना चाहता था, परन्तु जमना उसकी भी गुरु थी। जिस शिकार को फांसने के लिए उसने तरह-तरह के जाल बिछाए थे, भले ही गोपालसिंह के कहने पर ही सही, परन्तु ऐसे कैसे हो सकता था कि शिकार को पकड़े वह, और सम्भाल ले गोपालसिंह।

अगर प्रेम पहले की भांति ही कुछ न कुछ देता रहता तो जमना भी अपना प्रेम-नाटक पहले की तरह ही उसके साथ खेलती रहती परन्तु जब उसने देखा कि प्रेम के हाथ में 'ठन-ठन गोपाल' है तो वह 'रामोपियों अपना, गुण गाओ हमारा' वाली लीला से तंग आ गई। इतना ही नहीं प्रेम जब अपनी खाली जेबों को उलटे उसके पैसों से भरने की इच्छा करने लगा तो जमना, गोपालसिंह के साथ किए गए अपने सौदे को भूल गई, जिसके परिणामस्वरूप उसने कल प्रेम को फटकार सुनाई।

जमना ने प्रेम के साथ अनबन तो कर ली, परन्तु एक बात से वह बहुत डर रही थी, उसको विश्वास था कि प्रेम सबसे पहले गोपालसिंह के पास जाकर रोया होगा और इसके साथ-साथ उसने हार के बारे में भी बता दिया होगा। गोपालसिंह को जब पता चलेगा कि मैंने अकेले ही उससे हार उड़ा लिया है तो वह अवश्य ही मेरे पर लाल-पीला होगा। परन्तु देखा जाएगा, गोपालसिंह मुझे मुंह में तो नहीं डाल लेगा। वह अब मुझे कुछ नहीं कह सकता, क्योंकि अभी भी मेरी उसे बहुत आवश्यकता है—शान्ति को हथियाने की, इसीलिए तो उसने मुझे पत्नी बनाने का स्वांग रचा है।

रोज सायंकाल लगभग पांच बजे गोपालसिंह का नौकर मनोहरी, जमना को लेने आया करता था। जमना गृहणी की वेश-भूषा पहनकर दो घण्टों के लिए गोपालसिंह के मकान पर जाकर पत्नी का पार्ट अदा कर आती थी, परन्तु आज रात के आठ बजे तक कोई नहीं आया था।

जमना सोचने लगी, 'आज अवश्य ही किसी शिकार को पकड़ने के लिए चला गया होगा, जिससे मनोहरी फुर्सत न पाकर, आ नहीं सका।'

इन्हीं विचारों में वह बैठी थी कि उसके कानों में सीढ़ियों की ओर

से यह शब्द पड़े, "सईयां भए कोतवाल अब डर काहे का।"

इसके पश्चात गोपालसिंह हाथी के समान झूमता हुआ, उसके निकट आ खड़ा हुआ। इतनी देर से आने का कारण जमना पूछने ही वाली थी कि इससे पूर्व ही गोपालसिंह बैठक में नाचते हुए ऊंची-ऊंची आवाज़ से गाने लगा, "सईयां भए कोतवाल, अब डर काहे का।"

उसने इस समय भर-पेट शराब पी हुई थी और वह लगातार इसी एक पंक्ति को गाता जाता था।

जमना ने उत्तेजित होकर पूछा, "आज क्या मिल गया है, रांझे, बड़ा नाच रहा है?"

टांगे मारता हुआ गोपालसिंह उसके सामने आकर खड़ा हो गया और जेब में से कुछ निकालकर उसने जमना की ओर हाथ बढ़ाया। लैम्प की रोशनी में यह चीज़ झिलमिल-झिलमिल करती हुई जमना की आंखों को अंधियाने लगी।

जमना ने इस भेंट को बड़े आदर के साथ स्वीकार किया। यह एक जड़ाऊ गहना था—'गुलबन्द'। गोपालसिंह की इतनी खुला-दिली! एकदम चार-पांच सौ की चीज़! जमना ने आश्चर्य और खुशी के साथ उसे देखा।

नशे में डूबे हुए, गोपालसिंह ने उसकी ओर देखते हुए कहा, "देखती क्या है? यह तेरे काम की पेशगी है।"

"मेरे काम की?" उसने खुश होकर पूछा, "कौन से काम की? क्या मैं तेरा काम मज़दूरी लेकर किया करती हूं? गोली किसकी और गहनें किसके? तेरी तो मैं गुलाम हूं।"

लज्जित होकर गोपालसिंह कहने लगा, "नहीं, मैं भूल गया था। मज़दूरी नहीं, अपनी जमना बाई को भेंट।"

"और मेरे योग्य काम कौन-सा है?"

"काम? क्या तुझे भूल गया? सुसरी! शान्ति वाला काम और कौन-सा?"

"अच्छा, मैंने सोचा पता नहीं कौन-सा काम था। वह तो हुआ समझो, मेरे बाएं हाथ का काम है।"

"परन्तु जमना बाई! यदि तू कल उसे मेरे मकान पर न लाई, तो

बस तेरी-मेरी खत्म। मैं, तुझे मालूम है, उसके पीछे मरा जाता हूं। सुन्दरता की देवी, पता नहीं कहा से आ गई है। पहले···पहले कभी [illegible]

शराब क्यों न पी लू, बेहोश कभी नही होता। तू मेरी बात को मजाक समझती है?"

'आज यह कितना माल लाया होगा, जिसमें से इसने तुरन्त मेरे को एक कीमती हार दे दिया है?" उसकी बकवास की ओर ध्यान न देकर जमना यही सोच रही थी। उसकी इच्छा हुई कि इससे पूछा जाए। वह बोली, "तेरी बातें तो हैं पत्थर पर लकीर, परन्तु आज किसे घेरा है? पहले यह तो बता?"

इस बात का जवाब न देकर, वह बोला, "देख तो जमना बाई! आज तूने मेरे मकान पर नही चलना? मुझे आज तनिक-सी देरी हो गई थी। मनोहरी को भी फुर्सत नहीं मिली थी। चल उठ कपड़े बदल और चलें। फिर आज शान्ति को भी बुलावा भेज देता। हैं, अवश्य, परन्तु भूल जाना मेरी बात को।"

जमना बोली, "अब तेरे घर को जाने का कौन-सा समय है, फिर शांति भी पहुंचने तक सो गई होगी, मेरा विचार है कल आऊंगी और सारा काम तेरी इच्छा अनुसार हो जाएगा।"

कुछ सोचकर गोपालसिंह बोला, "अच्छा कल ही सही, आज मुझे भी एक काम है। माल को ठिकाने···माल···मा···" कहते-कहते वह रुक गया, परन्तु जमना ने उसकी बात का शेष भाग समझ लिया— 'माल को ठिकाने लगाना' वह सोचने लगी—'शराब के नशे में हृदय की बात अपने-आप बाहर निकल रही है, परन्तु जब तक यह पूर्ण रूप से उल्लू नहीं बन जाता, अपने पाव पर पानी नही पड़ने देगा।'

उसने तुरन्त ही बुढ़िया को इशारा किया। ठेका तो दूर था, परन्तु इस बाजार में तो हर एक दुकान और हर एक घर, एक ठेका था। पाच

मिनटों में ही बोतल आ गई।

गोपालसिंह को प्यार से बिठाकर, उसे पिलानी शुरू कर दी। वह पिए भी जा रहा था और गाए भी, "संईयां भए कोतवाल, अब डर काहे का।"

जब वह गले तक शराब से भर गया, तो जमना उसे कहने लगी, "शान्ति को यदि चौबीस घन्टों के भीतर तेरी बना दूं तो कैसी बात होगी ?"

शान्ति का नाम सुनते ही गोपालसिंह की आंखों में एक तेज चमक पैदा हो गई। वह जमना की बांह पकड़कर कहने लगा, "शान्ति को··· अग···अगर जमना, तूने मेरा काम पूरा कर दिया···तो फिर मैं तेरा जीवन भर···ज···अमना बाई का···ग···गुलाम बना रहूंगा। तू बस···समझ ले तेरे को नवाबज़ादी ब···अना दूंगा··नवाबज़ादी, मेरे को किस ब···आत की कमी है ? इस स···समय मैं (मूछों पर ताव देकर) राजा हूं···राजा। उस डायन के को···हां चला था घर से बेचने···मित्रों ने बस···एक, दो, तीन। सईयां भए कोतवाल अब डर काहे का। मोरे सईयां, सोरे सईयां, मोरे सईयां। हां···आं···आं सईयां···।"

जमना पूछने लगी, "कौन था ? क्या बेचने जा रहा था ?"

"कुछ नहीं। मैं तो···मैं तो तुझे कह रहा था···अच्छा (स्वयं से) सारा मा···सारा माल होगा···बांका चूड़ियां, चूड़ियां त···ड़ा···गी, शृंगार पट्टी ओर···र···र। और कितना···कितना हिस्से···में··· आएगा···तीनों के दो-दो आने···और शेष बारह आने···न-नहीं··· द···दस आने रुपये में से···मेरे। हां दस···दस आने। अच्छा··· तो···सौ तोला माल हो त···तब। प···परन्तु वह बड़ा···हार कहां गया ? उनमें तो नहीं था, जो मैं स्वयं बनवा···कहीं उन्हों···उन्होंने रास्ते में ही न निक···निकाल···लिया हो···(जमना से) अच्छा ! जमना बाई ! तू···तू प्रसन्न है न मेरे से ? ग···गुस्से तो न··· नहीं ? तुझे···तुझे···की मार···अ···अगर तू मेरे से गुस्से हो··· मैं···मैं···मैं शान्ति को तेरी···तेरी···बात···जमना बाई मैं··· ने कभी ठु···ठुकराई है ? मैं···तुझे और···भी दू···दूंगा···अभी

थो···सारा प्र······अमानत है मेरे पास······अभी तो बांटा नहीं न माल। मैं···उसको ऐसी इसी जगह···ऐसी स्थान···दब···दबाया है, जहां···जहा···से पुलिस का बाप भी नहीं ढूढ़ सकता। (उठते हुए) अच्छा मैं चलता हू घ···घर। कल···कल अवश्य है, देखना कहीं भूल न जाना शान्ति··· शान्ति···वाला काम। सईयां भए कोतवाल, अब डर काहे का (उठकर डगमगाते हुए) अच्छा···आज दुकान पर ही जाकर सो रहता हूं···नहीं···घ···घर जाऊंगा। धीरे···धी···रे जा··· पहुंचाया। माल की र···रखा (रक्षा)···रखा···और हां सच्च जमना बाई। क्या···बात थी···और वह भी बड़ा पाजी का पाजी है··· पर···पर···अच्छा···अच्छा कल बातें करेंगे···अभी।"

गोपालसिंह की उपरोक्त बातचीत में हार का नाम सुनकर जमना बाई समझ गई कि इसने प्रेम को ही लूटा है। उसको बड़ी प्रसन्नता हुई कि प्रेम ने गोपालसिंह को हार के बारे में नहीं बताया, नहीं तो वह उसपर बरस पड़ता, साथ ही वह भी जान गई कि यह जो नई मार गोपालसिंह ने मारी है, यह भी शान्ति की जड़ें उखाड़ी हैं। गोपालसिंह को हाथ से पकड़कर उसने नीचे तक पहुचाया और उसके बाहर जाते ही दरवाजा बन्द कर वह ऊपर लौट आई।

ऊपर आकर वह फिर शुरू से सोचने लगी। सोचते-सोचते अभागी शान्ति का भोला, निष्कपट चेहरा उसकी आंखों में घूमने लगा। उसको चार ओर से बरबादी से घिरा देखकर, जमना का पत्थर हृदय में भी एक बार दहल उठा, परन्तु लोभ और स्वार्थ के स्वभाव ने उसके इस विचार को आधे-मिनट से अधिक देर तक न टिकने दिया। वह सोचने लगी—'चलो खसमो का खाए, मुझे क्या। ऐसी कई बरबाद हुई,और होवेंगी। अपने हृदय में दया को लाकर, अपनी रोजी को धक्का दू ? क्या, इतनी कमजोरी ? मुझे क्या, कोई मरे कोई जीए, सुथरा घोल बताशे पीए। मैं कल गोपालसिंह के घर जाऊंगी, और उसकी लूट में से अपना भाग बटाऊंगी। मुझे क्या जरूरत है ऐसी व्यर्थ की बातें सोचने की ? शान्ति मेरी क्या लगती है ?'

३४

गोपालसिंह ने बड़ी सफलता और सफाई के साथ प्रेम के गहनों को हथिया लिया, इतनी सफाई से कि किसी को कानों-कान खबर तक न हुई।

जब प्रेम सवेरे उसके पास गहनों की पोटली लेकर आया था तो उसने अमृतसर गहना न बेचने की उसे सलाह देकर कम्पनी बाग भेज दिया था और मनोहरी को गुप्तचर बनाकर उसके पीछे लगा दिया था।

इधर तुरन्त ही उसने अपने दो-तीन साथियों को इकट्ठा किया और किस तरह और किस समय प्रेम का माल उड़ाना था, वह सब कुछ उसने उन्हें समझा दिया।

वे सायंकाल के समय एक सिपाही की वर्दी ले आए। तीनों में से एक वर्दी पहने हुए और दो बिना वर्दी के सिपाही बन गए। गोपालसिंह उनको साथ लेकर मनोहरी द्वारा बताए गए स्थान पर जा पहुंचा। गोपालसिंह स्वयं पीछे छिपा रहा और उनको आगे भेज दिया।

यह काम तो सफलता के साथ हो गया, परन्तु गोपालसिंह ने एक गलती, शायद जानबूझकर या अनजाने में की, कि उसने करीम को इसमें सम्मिलित नहीं किया। उससे चोरी ही सारा काम कर लिया।

चोरों के भेदी चोर ही होते हैं। करीम को भी रात होने से पूर्व ही इसकी सूचना मिल गई। उसकी छाती पर सांप लोटने लगे, लारे किसीके साथ और न्यारे किसीके, शुरू की सारी स्कीमें तो उसीके साथ बनती रहीं परन्तु जब कमाने का समय आया तो उसकी पूछ तक नहीं।

उसको इस बात से इतनी जलन हुई कि उसके लिए खाना हराम हो गया। वह उसी समय गोपालसिंह की खोज में निकल पड़ा, परन्तु वह उसे कहीं न मिला।

उसकी इच्छा तो थी कि पहले गोपालसिंह को मिले और फिर जमना की ओर जाए, परन्तु जब वह न मिला तो वह जमना की बैठक की ओर ही चल पड़ा। लगभग रात के दस बजे का समय था। पहुंचते ही बाजार में उसे जमना की बूढ़ी आया मिली। वह करीम की पुरानी जाननेवाली थी, इसलिए वह उससे कई गुप्त बातें भी पूछ लेता था। आज भी उस

द्वारा पूछे जाने पर बूढ़ी ने बता दिया कि अभी उसके आने से थोड़ी देर पहले गोपालसिंह वहां से गया है और जमना को एक जड़ाऊ-गुलूबन्द दे गया है—प्रेम से लूटे गए माल में से।

करीम इतना ही जानना चाहता था। वह तुरन्त ऊपर चढ़ गया।

जमना इस समय अपने बिस्तर में लेटी हुई कुछ सोच रही थी। अभागी शान्ति का मासूम चेहरा, उसकी आंखों के आगे से हटता ही नहीं था। शान्ति को उसने केवल एक ही बार देखा था, परन्तु उस द्वारा कही गई यह बातें अभी तक उसके कानों में गूंज रही थीं;—भगवान करे कुछ न रहे उस परी का, उसने तो मेरा कुछ नहीं छोड़ा।

इस समय जमना यही सोच रही थी—'इस बेचारी को बरबाद करने में मेरे से जो कमी रह गई थी, उसे गोपालसिंह ने पूरा कर दिया है। बस अब तो बेचारी रास्ते के तिनकों से भी गई-गुजरी हो गई है। उसका पति मेरा शिकार हो गया, परन्तु घर सुना है कर्जदारों ने कुड़क करवा लिया है और शेष दो-चार गहनें बचे थे बेचारी के पास जो गोपालसिंह ने सम्भाल लिए हैं। क्या अब शान्ति के जीवित रहने में कोई कसर शेष है?'

उसके विचारों की लड़ी अभी यहां तक ही पहुंची थी अर्थात वह इस बारे में अभी और भी सोचना चाहती थी कि करीम ने आकर सलाम बजाई। मुस्कराकर वह बोली, "सुना उस्ताद! तू तो आजकल ईद का चांद हो गया है, कभी आता ही नहीं।"

व्यंग्य कसते हुए करीम बोला, "बाई! अब हमारी किसीको क्या आवश्यकता है। अब तो कुछ वैसी ही बात है कि 'मियां बीबी राजी और क्या करेगा काजी।' हमें तो आप लोगों ने दूध में से मक्खी की तरह निकाल फेंका है, फिर हमारा क्या काम।"

वास्तव में वह गोपालसिंह से रुष्ट था परन्तु वह जमना का रुख देखकर बात करना चाहता था अर्थात अगर जमना, गोपालसिंह के हाथों की कठपुतली बनकर उसके हक में बोली फिर तो वह दबा रहेगा और यदि जमना भी उसीकी तरह किसी कारणवश गोपालसिंह से बिगड़ी हुई रही, तो फिर दोनों एक ही रोग से पीड़ित होने के कारण खूब स्पष्ट बातें करेंगे।

करीम की बात सुनकर जमना बोली, "यह तो तेरे मन का भ्रम है करीम, मैं तो तुझे रोज़ ही याद करती हूं।"

करीम बोला, "मुझे या गोपाल को ?"

उसके और निकट होकर वह बोली, "भगवान उसका बेड़ा डूबोए। मैं तो उसका नाम तक लेना पाप समझती हूं, परन्तु पिंजरे में बन्द फड़फड़ाने वाली बात के समान है मेरी दशा।"

करीम को मनचाही मुराद मिली। बात को और स्पष्ट करने के विचार से वह बोला, "यह तो बाई ! तेरी ज़्यादती है। जो आदमी रात ही रात में हज़ारों रुपये के आभूषण तेरी गोद में ला डाले, उसका तो तुझे कृतज्ञ होना चाहिए।"

"गोपाल अभी तेरे आगे-आगे ही गया है।"

"अच्छा ! और तुझे क्या दे गया है ?"

जमना ने छाती से पल्ला हटाकर जड़ाऊ-गुलूबन्द करीम को दिखा दिया। देखते ही करीम की आंखों का रंग जाता रहा। मन ही मन जलते हुए, परन्तु बाहर से हंसते-हंसते उसने कहा, "बस इतना ही ?"

"तो और क्या।"

"चलो इतना ही सही, मेरे अन्दाजे में तीन-चार सौ का माल तो होगा ही।"

"चाहे चार सौ का हो या आठ सौ का, मुझे इससे क्या ?"

"तुझे नहीं तो और किसको ?"

"जिसकी चीज़ है।"

"चीज़ अब तेरी है जिसके पास है, और किसकी है ?"

"नहीं करीम, यह प्रेम की पत्नी की है।"

"सुभान अल्ला, और यह तू उसको लौटा देगी ?"

"हां।"

"तो लगता है जैसे प्रेम के साथ गहरी मित्रता हो गई है ?"

"प्रेम के साथ नहीं परन्तु उसकी पत्नी के साथ अवश्य हो गई है।"

"बाई जान ! ऐसा असम्भव है। गंगा को गई हड्डियां भला कब वापिस आती हैं ?"

"परन्तु कबर में गई हुई तो लौट सकती हैं।"

"इस कबर को खोदेगा कौन ?"

"खोदने वालों ने खोद ली है।"

"किसने ?"

"प्रेम की पत्नी ने।"

"तू उसकी सहेली बन गई है, जमना बाई ?"

"कुछ समझ ले।"

"परन्तु ऐसा क्या पाया तूने उसमें।"

"करीम ! बता नहीं सकती, वह एक पवित्र देवी है।"

"सच, वह उसको लौटा देगी ?"

"अवश्य ही ! हो सका तो उसके बाकी के आभूषण भी लौटाने की कोशिश करूंगी।"

"माशा अल्ला।"

"करीम, तू भी इस बुरे गोपाले का साथ छोड़ दे। इससे तुझे कोई लाभ नहीं होने का।"

करीम मुंह फुलाकर बोला, "मैं तो पहले ही उसे नमस्ते कर चुका हूं। इस पाजी का बाल-बाल धोखेबाज है। इसीलिए तो मेरी उससे बनती नहीं। मेरी आदत है मैं शकल देखते ही मन की बात जान जाता हूं। मैं तो कई दिनों से तुझे कहने की सोच रहा था। फिर सोचा यूंही कौन शत्रुता को मोल ले, औरतों के पेट में तो बात पचती ही नहीं। उस हरामी की तुझे एक-एक बात बताऊं तो तू तोबा-तोबा कर उठे। और बाई ! तेरे इस खाकसार की हिम्मत का प्रताप है कि आज वह बैठा हुआ है, नहीं तो कब का जेल की हवा खा रहा होता ? ऐसे-ऐसे संगीन जुर्मों से बचाया है कि वकील भी क्या बचाता ? एक बार उसने आगरा के एक सेठ को धतूरा पिलाकर उसका चौदह-सौ रुपया ऐंठ लिया। बीच में से ही इसके किसी साथी ने पुलिस को खबर कर दी। बस पकड़े गए सरदारजी। तपनपाती धूप में नंगे पांव भागे आए मेरी बैठक पर, रगड़ने लगे नाक—मिर्जा ! पहले भी दुःख की घड़ी में तू साथ देता है, अब भी बचाए तो जानूं। बाई ! भगवान की कसम, कहीं जाने की आवश्यकता ही नहीं पड़ी। पत्र लिखकर भेज दिया राय-बहादुर बलवन्तराय मजिस्ट्रेट को। उन्हीं के पास मुकदमा

पहेली पेशी में ही छुड़ा लिया उसको। रुपया भी सारा पच . इसकी तुझे कौन-कौन-सी बात बताऊं, यह तो पहले नम्बर का : हराम है।"

इसके पश्चात एक-दो जमहाईयां लेकर जमना ने नींद आने संकेत दिया। वह जानती थी कि करीम की बक-बक जल्दी समाप्त वाली नहीं।

दो-चार और इधर-उधर की हांकने के पश्चात अन्त में क को उठना ही पड़ा, परन्तु बड़ा दुःखी होकर। उसकी इच्छा थी ज से बीड़ी-पान के लिए कुछ ऐंठने की, परन्तु इसका कोई चारा ही न क्योंकि जमना को गोपालसिंह से जो कुछ मिला था, उसको शान्ति लौटा देने के लिए कह चुकी थी।

वह मन में सोच रहा था कि शायद मुझे कुछ न देने की नीयत ही शान्ति ने ऐसा कह दिया हो। अन्त में वह जला-भुना बैठक से न उतर गया।

३५

मन का बोझ हलका हो जाता तो शायद बात वहीं समाप्त जाती, परन्तु ऐसा हुआ नहीं। न तो शान्ति के दिल का गुबार निक और न ही प्रेम ने हृदय की बात उससे कही। वह स्वाभिमान से चिप रही और वह लज्जा के कीचड़ में फंसा रहा।

सुशीला ने फिर शान्ति के घर में पांव ही नहीं रखा और f उसका विवाह निकट आ जाने के कारण वैसे ही उसके घर से निकल लगभग बन्द-सा हो गया—दूसरे दिन ही उसे मेंहदी लग गई।

सुबह उठकर जब शान्ति ने पति की चारपाई को खाली पाया उसका क्रोध और भी बढ़ गया। वह सोचने लगी, 'मेरी उन्हें त भी चिन्ता नहीं, तो मुझे क्या पड़ी है जो व्यर्थ में उनकी चिन्ता में म रहूं, जो मन में आए करते फिरें, मुझे क्या? जैसा करेगा वैसा भरेगा।'

उपरोक्त विचार को मन मे लाकर उसने इस चिन्ता से इस ग्रस-परिस्थिति से छुटकारा पाना चाहा, परन्तु पा न सकी। उसकी वेग्रारामी बढ़ती ही गई।

दोपहर को जब नोकर ने ग्राकर दुकान वन्द होने ग्रौर ताले की ... लग जाने की सूचना दी तो रही-सही जान भी जाती रही। ... सास पर तो इस खबर का इतना बड़ा प्रभाव पड़ा कि उन्हें मूर्छा ... लगी।

उसी समय उसे दुकान की ग्रोर भगाया गया, हीरासिंह को बुलाने के लिए, परन्तु उसके लौटने के पूर्व ही हीरासिंह ग्रा गया।

'सत श्री ग्रकाल' कहने के पश्चात, मा की ग्राज्ञा से मूढ़े पर बैठे हुए, हीरासिंह पूछने लगा, "वावूजी कहा हैं ?"

उसका जल्दी मे पूछा हुग्रा यह प्रश्न सुनकर दोनो ही सहम गई। ...रुक्मणी ने पूछा, "प्रेम दुकान पर नही गया ? घर से तो प्रभात में ही ...गया था।"

"नहीं मां जी, दुकान पर ग्राए तो ग्राज उन्हें कई दिन हो गए हैं।"

"कई दिन ?" दोनों सास ग्रौर वहू के मुह से इकट्ठे ही प्रश्न निकला।

शान्ति की ग्रोर देखकर मुनीम वोला, "हां वीवीजी ! परन्तु एक ...र ग्रच्छा ही हुग्रा, जो दुकान पर नही थे, नही तो…।"

"नही तो क्या ?" शान्ति ने घवराकर पूछा। खिसयाना-सा मुंह ...कर हीरासिंह वोला, "वैंक वालों ने कुड़की लाकर दुकान वन्द ...करवा दी है। ताले लगाकर सील कर गए हैं। इस मकान के भी ग्रादेश ... ले लिए हैं। शायद ग्रभी इधर भी ग्राएंगे।"

"हैं ! यहा भी ? इस मकान को…?" कहते-कहते वुढ़िया वहीं ...र के साथ पीठ लगाकर हाफने लगी। ग्रौर कुछ पूछने की उसमें ...स ही न रही। वेचारी पहले ही वीमार थी। परन्तु शान्ति इतनी ...हीं घवराई। उसको तो पहले से पता था कि एक दिन ऐसा भी होकर ...रहेगा, परन्तु वह भी वैठी नहीं रह सकी, खड़ी होकर वोली, "क्या कहा है, इस मकान की भी कुड़की हो गई है ?"

वूढ़ी कापती हुई ग्रावाज़ से वोली, "ग्रौर दूसरे वह दो मकान ?"

"कौन से दूसरे दो मकान, मां जी ?" हीरासिंह ने आश्चर्य से पूछा, "गुजरों की गली वाले मकान की बात कह रही हैं, आप ?"

सिर हिलाकर बूढ़ी ने कहा, "हां।"

"वह तो कब के बिक चुके हैं—आपको पता ही नहीं ?"

बूढ़ी की आवाज़ भीतर ही भीतर खो गई। वह और एक शब्द भी न बोल सकी और वहीं निढाल होकर पड़ गई।

शान्ति और हीरासिंह ने उसे उठाकर चारपाई पर लिटाया। शान्ति को सास के मुंह में पानी डालने की भी सुध नहीं थी और हीरासिंह से उखड़ी हुई सांस में पूछने लगी, "और उनका पता नहीं चला, कहां हैं ?"

"पता चलता तो मुझे यहां आने की क्या आवश्यकता थी। मुझे तो और ही चिन्ता है।"

"क्या ?"

"उनके वारंट भी निकले हुए हैं। सभी स्थानों पर से उन्हें ढूंढ़ आया हूं।"

अन्त की बात सुनकर, शान्ति के प्राण खुश्क होने लगे। वह जल्दी से बोली, "तो जल्दी जा मेरे अच्छे भाई, जहां भी मिलें ढूंढ़कर ले आ। जा पता कर कहां पर हैं। गोपालसिंह की दुकान पर गया था, तू ?"

"दो बार हो आया हूं, मिला ही नहीं। अच्छा मैं फिर जाता हूं।" कहकर वह तुरन्त ही जूते पहनकर सीढ़ियों की ओर चल पड़ा।

शान्ति ने पीछे से आवाज़ देकर कहा, "जैसी भी खबर मिले मुझे तुरन्त ही आकर बता जाना।"

"अच्छा" कहकर वह नीचे उतर गया और शान्ति सास के सिर की ओर जा बैठी। नारायणी अभी तक बेहोश थी।

थोड़ी देर के यत्न से नारायणी को होश आ गई, परन्तु उसकी दशा मिनटों-सैकण्डों में बिगड़ती जा रही थी।

यह खबर सारे मोहल्ले में धूएं की तरह फैल गई। पास-पड़ौस की कई स्त्रियां आ इकट्ठी हुई।

कहां तो शान्ति वह सोचे फिर रही थी कि आज न आए तो रात

की गाड़ी से कलकत्ता भाई के पास चली जाऊंगी और किसी के हजार बार कहने पर भी नहीं लौटूंगी, और कहां यह दशा कि अपना सब कुछ खोकर भी पति के दर्शनों के लिए वह तड़पने लगी।

वाह री अभागी नारी, प्रकृति ने तेरा हृदय कितना विशाल और सुकोमल बनाया है।

उसने सर्वप्रथम अपने भाई को तार भिजवाया, जिसमें तुरन्त ही चले आने के लिए ज़ोर दिया, और इसके पश्चात पति को छुड़ाने के लिए उपाय सोचने लगी। वह सारा दिन इस भाग-दौड़ में बीता। प्रेम का कहीं पता न चला। सायंकाल को जब शान्ति को और कोई चारा दिखाई न दिया तो उसने सोचा कि अपना सारा गहना बेचकर रुपया इकट्ठा किया जाए और पति को जेल से छुड़ाने के लिए कोई उपाय किया जाए।

बातों-बातों में ही हमदर्दी प्रकट करनेवाली पड़ोसिनों से वह पीछा छुड़ाकर पिछले कमरे में चली गई। बक्से में से चाबियों का गुच्छा निकालकर वह पेटी खोलने लगी और मन ही मन हिसाब लगा रही थी कि उसका सारा गहना कितने का होगा। परन्तु उसका हाथ जहां धरा था वहीं धरा रह गया। जब उसने पेटी का ढकना खोला, उसके मन की गिनती मन में ही बिसर गई। खाली डिब्बों के अलावा उसमें और कुछ भी नहीं था—न कोई गहना और नहीं कोई रुपया।

पेटी के ऊपर सिर रखकर वह कितनी देर तक अपने दुर्भाग्य को कोसती रही।

अन्त में वह ढकने को उसी तरह खुला छोड़कर और चाबियों के गुच्छे को वहीं छोड़कर, बाहर आई, ठोडी के नीचे हाथ रखकर चारपाई पर बैठ गई और गहरी सोचों में खो गई। जा, तेरा सब कुछ राख हो गया। पति भी गया, घर-बार भी उजड़ा और शेष बचा था गहना, वह भी गया। यह गहना भी शायद उस डायन जमना के पेट में ही उतर गया हो।

उसने काफी सोचा, बार-बार दिमाग लड़ाया, परन्तु इस भयानक मुसीबत में से बचने का उसे कोई रास्ता न मिला। अन्त में काफी कुछ सोचने के पश्चात, उसे एक तरकीब सूझी, परन्तु तुच्छ सी जिससे रुपये में से पैसे जितनी सफलता मिलने की आशा थी।

'क्यों न मैं उसी जमना के पास जाऊं ? हो सकता है मेरी दशा पर उसे कुछ दया आ जाए और शायद मैं पति को जेल जाने से बचा लूं।' इसके साथ उसके मन में एक और शंका उत्पन्न हो रही थी कि जिस तरह उसका पति इतनी कठिनाईयों में फंसा हुआ है और फिर इसपर भी कल वाली सुशीला की घटना ने उनके दुःखों को और भी असहाय बना दिया होगा, कहीं ऐसा न हो कि जेल जाने से पूर्व ही वह मौत का दरवाज़ा जा खटखटाए।

'तो क्या मैं जमना बाई की बैठक में जाऊं ? परन्तु कैसे जा सकती हूं ? उसके घर का पता किसीसे क्या कहकर पूछूंगी ? फिर एक शरीफ घर की स्त्री होकर, उस बाज़ार में जाऊं, जिसमें एक शरीफ पुरुष भी जाते हुए शर्माता है। फिर क्या किया जाए ?' वह सोचे जा रही थी।

अन्त में उसने यही निर्णय किया कि 'जमना बाई के पास जाने से पूर्व मुझे अपनी नई और सहृदय सहेली (सरनकौर) के पास जाना चाहिए और फिर उसका पति (गोपालसिंह) तो पहले ही हमारे अपने घर का ही सदस्य है और हमारा सच्चा शुभचिन्तक है। अपने पति की सलाह से सरनकौर अवश्य ही कोई ऐसा उपाय सोचेगी, जिससे शायद मेरा पति और गहना मुझे वापिस मिल जाए।'

'तो बस सबसे पहले मुझे गोपालसिंह के घर ही जाना चाहिए।' ऐसा सोचकर वह अपनी सास को एक स्त्री और नौकर को सौंपकर सायंकाल को सुनियारों वाली गली की ओर चल पड़ी। चिन्ता और भय से इस समय शान्ति का हृदय डूबा जा रहा था। उसको बुखार और पेट में थोड़ा-थोड़ा सा दर्द होने लगा। एक गर्भा के लिए जो दिन आराम और बेफिक्री के होने चाहिए थे, वही शान्ति के लिए दौड़-धूप और चिन्ताओं से भरपूर थे।

३६

अपने दिए हुए वचन के अनुसार जमना दूसरे दिन प्रातःकाल ही मनोहरी के साथ गोपालसिंह के घर पहुंच गई। गोपालसिंह ने कहलवा

भेजा था कि वह आज रात से पहले नहीं आएगा और जमना भाई लड़के को भेजकर शान्ति को बुलवा ले।

गोपालसिंह ने आज सारे दिन के लिए कहीं जाना था ? कहीं भी नहीं, केवल इतना ही कि वह आजका दिन प्रेम से छिपे रहना चाहता था, ताकि उसे उसपर शक न हो जाए और वह कोई अड़चन न खड़ी कर दे। बेशक उसे प्रेम के शोरगुल से कोई डर नहीं था, परन्तु वह इतने में एक और काम भी कर लेना चाहता था। उसका विश्वास था कि प्रेम की इस समय जैसी हालत है, उसके अनुसार वह बच नहीं सकता था, वह जेल में जाएगा या जहन्नम में या फिर वह कहीं भाग जाएगा। इसलिए ऐसे अवसर पर शान्ति को तुरन्त ही कहीं और रात ही रात में कहीं उड़ा ले जाना चाहिए। कल या परसों तक उसका भाई यदि कलकत्ता से आ गया तो फिर यह मनोरथ पूरा नहीं हो सकेगा। वह जानता था कि इस कठिन घड़ी में शान्ति ने अवश्य ही अपने भाई को तार दिया होगा।

इधर जमना के जिम्मे शान्ति को उसके घर से बुलवाने का काम था, परन्तु कई प्रकार के सोचों-विचारों में उलझी हुई थी। रात से ही जमना को बार-बार शान्ति की दयनीय दशा का ध्यान हो आता था, जिसके कारण वह शान्ति को, जो पहले ही बरबाद हो चुकी है, और अधिक दुःखी नहीं देखना चाहती थी।

इसके अतिरिक्त उसे एक और भी डर था कि यदि गोपालसिंह ने शान्ति को ले जाकर कहीं छिपा दिया तो फिर पुलिस की कड़ी निगाह से वह भी नहीं बच सकेगी। अन्त में उसके हृदय ने यही निर्णय लिया कि वह शान्ति को नहीं बुलवाएगी। परन्तु वह किसी न किसी तरह गोपालसिंह से शान्ति को गहने वापिस दिलवाने के लिए कोई चाल अवश्य खेलना चाहती थी। यही एक इच्छा थी जो आज विशेष रूप से जमना को गोपालसिंह के मकान पर ले आई।

सायंकाल के सात बजे का समय था जब जमना गोपालसिंह के सुनियारों वाले मकान पर बैठी थी। उसको नीचे से आवाज आई जैसे कोई स्त्री पूछ रही है, 'गोपालसिंह का घर कौन-सा है ?' उसने खिड़की में से नीचे की ओर झांका, निचले भाग में रहनेवाली एक ... से

शान्ति उपरोक्त प्रश्न पूछ रही थी।

शान्ति का इस समय आना जमना की इच्छा के प्रतिकूल था, परन्तु अब जबकि वह आ ही गई थी तो वह क्या करती।

इस समय जमना की इच्छा शान्ति से मिलने की हुई। शान्ति के दुःखों और कठिनाईयों का आधे से अधिक कारण जमना ही थी, परन्तु न जाने जमना का मन उसकी ओर क्यों खिचता जाता था।

वह जल्दी से नीचे उतरी, शान्ति को गले मिली और आदर के साथ ऊपर ले आई। उसको आराम कुर्सी पर बैठाते हुए बोली, "बहन! तेरी काफी लम्बी आयु होगी! अभी-अभी तुम्हें याद कर रही थी। मनोहरी को तुम्हारी ओर ही भेजने वाली थी। मिलने को बड़ा मन कर रहा था।"

शान्ति जल्दी से जल्दी अपनी दुःख-गाथा सरनकौर (जमना) को सुनाना चाहती थी। इस विषय की भूमिका बांधने के लिए वह बोली, "बहन! तू बिलकुल पास में ही रहती है। मैं सोच रही थी पता नहीं कितनी दूर तेरा घर होगा। यदि मैं यह जानती होती तो अब तक मैं कई चक्कर काट चुकी होती।"

जमना, "मैं तो स्वयं ही कल-परसों से तेरी ओर जाने के लिए सोच रही थी, परन्तु तेरे देवर के काम ही समाप्त नहीं होते। आज प्रातःकाल में भी कहा था कि मुझे जाकर छोड़ आओ। कहने लगे आज एक ज़रूरी काम से कचहरी में जा रहा हूं, सायंकाल को छोड़ आऊंगा।"

शान्ति जल्दी में बोली, "तो कब तक लौट आएंगे? मुझे तो उनसे एक और भी आवश्यक काम था।"

"बस आए ही जानो। लड़का अभी दुकान से आया है। कहता था—लगभग एक घण्टे तक आ जाएंगे, अच्छा तो इतना ज़रूरी कौन-सा काम है?"

शान्ति ने गहरी सांस लेते हुए कहा, "काम का तुझे क्या बताऊं बहन। मेरा तो जीना ही कठिन हो गया है। मृत्यु आ जाए तो सभी दुःखों से छूट जाऊं।" कहते-कहते शान्ति की आंखें भर आईं।

चिकने घड़े पर पानी का असर नहीं होता, परन्तु एक खुश्क और प्रेम-रहित हृदय पर शान्ति के आंसुओं ने अवश्य ही असर किया। जमना

शान्ति के दुःख को जानती भी थी। उसे ऐसी स्त्रियों की क्या परवाह थी, जबकि सैंकड़ो नही तो हजारों शान्तियो के दिलों को वह अपने पावों के नीचे कुचल चुकी थी। परन्तु आज और दिनों के उलट, उसके हृदय पर कुछ प्रभाव पड़ा। शान्ति के भोले, निर्दोष और अत्याचारों द्वारा सताए हुए चेहरे ने जमना के हृदय को हिला दिया।

वह शान्ति को बाहों मे भरकर बोली, "रो नहीं मेरी अच्छी बहन। ऐसी कौन-सी बात है जो तू मुझे बताना नही चाहती। बताने में कोई हानि नही है?"

"बहन, मुझे बताने के लिए ही तो आई हूं। केवल बताने के लिए ही नहीं, बल्कि इस इच्छा से कि तू अवश्य ही मुझे कोई नेक सलाह देकर मेरे संकट मिटाएगी।"

उसकी दशा को जानते हुए भी जमना बोली, "तो बता बहन! जल्दी बता। मैं तन, मन से तेरी सहायता करूंगी।"

चाहे जमना यह सब कुछ बनावटीपन में ही कह रही थी, परन्तु कहते-कहते उसे ऐसा अनुभव हुआ कि जैसे यह शब्द उसकी जबान से नहीं, बल्कि आत्मा से निकले हों।

शान्ति बोली, "बहन! उनको (पति) छोड़ संसार में मेरा और कोई नहीं। मां-बाप का साया सिर पर नहीं। भगवान उसकी आयु लम्बी करे, अकेला भाई है, वह बेचारा भी देश-प्रदेश मे रहता है। यदि सिर का मालिक मेरे पास से बिछुड़ गया तो बता कि मेरा जीना किस काम का रह जाएगा? मैं किधर जाऊंगी? बहन! कोई पेश जाती है तो मुझे बचा लो। मेरा सब कुछ लुटा जा रहा है।" कहते-कहते शान्ति के हृदय में से दुःखों के फुव्वारे उछल-उछल कर उसकी आंखों मे से बहने लगे। जमना की बाहों मे वह सिर छिपाकर फूट-फूट कर रोने लगी। उसकी दर्दभरी चीखों ने जमना के रक्त को भी पिघला दिया। जमना, जिसे पता ही नहीं था कि असली आंसू किस चीज का नाम है, ने आज पहली बार इन अनमोल मोतियो को अपनी आंखों में और हृदय मे अनुभव किया।

सबसे पहले शान्ति ने सुशीला वाली सारी घटना सुनाई और इसके साथ ही दुकान बन्द होने और गहनों के बारे मे। फिर थोड़ी देर

रुक कर कहने लगी, "बहन ! मैं तेरे सामने अपने दुःखों की कौन-कौन गठरी खोलूं । कल के वह घर पर ही नहीं आए । मुझे क्या पता था कि वह इस तरह नाराज़ हो जाएंगे । मैंने जो कुछ भी उन्हें कहा था, न कहती । कहा तो उनके भले के लिए ही था । परन्तु ठीक है वह अपनी स्वयं निपटें, एक बार घर पर आ जाएं मुझे क्षमा कर दें, फिर जो उनके मन में आए करें, मैं मुंह तक नहीं खोलूंगी । मुझे धन-दौलत की चिन्ता नहीं । चाहे सब कुछ बिक जाए, परन्तु एक बार किसी तरह उनकी जान और इज़्ज़त बच जाए । मैं मेहनत-मज़दूरी करके अपना और उनका पेट पाल लूंगी, परन्तु वह मेरी आंखों से दूर न हों । बस बहन ! जिस समय भी भाई साहिब आएं, उन्हें कहना जैसा भी हो, जहां भी मिलें, उन्हें एक बार मेरे पास ले आएं । भगवान उससे भी बदला ले, जिसने मेरा सुहाग लूटा है । भगवान करे उस चालबाज़ जमना का भी सब कुछ लुट जाए । मुझ बेचारी ने उसको क्या हानि पहुंचाई थी, जो वह मेरे रक्त से अपने हाथ रंग रही है । बहन, मैं लुटी जा रही हूं, मुझे बचा ले ।" और इससे आगे शान्ति कुछ न बोल सकी ।

पत्थर का बुत बनी जमना उसका रोना सुन रही थी और आंखों से आंसू भी बहा रही थी । उसका सारा जीवन पाप की दुनियां में बीता था । मक्कार, फरेब, धोखेबाज़ी, बनावट और विश्वासघात उसके लिए यही सुखी-जीवन की कुंजियां थीं । उसके विचार में इन कुंजियों द्वारा दुराचारी दिलों के तालों को खोलकर जितना अधिक लूटा जाए, सफलता के लिए यह उतनी ही अधिक सफल साधना थी । परन्तु आज जमना को पता चला कि जिस दुनिया को वह दुनिया समझे बैठी थी, वास्तव में वह दुनिया न होकर उसका एक काला और भयानक रूप था । वास्तविक दुनिया और वास्तविक जीवन की सुनहरी किरण आज पहली बार उसके गन्दे और बदबूदार जीवन पर पड़ी ।

त्याग या बलिदान क्या होता है, जमना इन शब्दों से भी परिचित न थी । परन्तु आज जब उसने अपने सामने एक त्याग की मूर्ति और अपनी साधना के द्वारा अपने साहस तक पहुंची हुई एक देवी को देखा तो उसके हृदय के सभी तार, जो आजतक एक तेंदूए की तारों के समान रक्त पीने वाले थे, एक मधुर संगीत की तरंगे बन गए और उनमें एक

घबराहट पैदा हुई—शीतल और मृत भावों में किसी स्वादिष्ट जीवन का रस उत्पन्न करनेवाली घबराहट।

शान्ति की दुःख-भरी कहानी सुनकर जमना की गर्दन किसी असहाय बोझ से टूटने लगी। जल्दी से जल्दी अपने सिर से पाप की गठरी को उतार फेंकने के लिए उसका हृदय उतावला होने लगा।

अपने अत्याचारों के विरोध में, अपने ही आगे होनेवाली प्रार्थना को वह और अधिक न सुन सकी और न ही सहन कर सकी। उसके हृदय के प्रत्येक कोने को शान्ति के प्यार और उसके प्रति उपजी हम-दर्दी ने घेर लिया, जिससे उसका भेद अपने-आप ही उसके मुंह से निकलने लगा, परन्तु जमना ने उसे रोक लिया।

उसने शान्ति से पूछा, "और बहन! तूने पहले मुझे क्यों नहीं बताया?"

शान्ति बोली, "क्या बताती बहन! कुछ थोड़ा-बहुत तो आपको बताया था जब आप हमारे घर आए थे। कल ही मैंने तेरे पास आना था, परन्तु लज्जा आ गई। मैंने सोचा, तू मन में क्या सोचेगी कि किन बदमाशों के साथ पाला पड़ा है। और फिर बहन! तेरे जैसी भाग्यवान बड़े घर की बहू-बेटी को ऐसी बातें बताई जाती हैं? अब भी बताने को मेरी इच्छा न थी, परन्तु अब तो हद हो गई थी। घर भी गया और अभी तक तो घर का मालिक भी गया। पता नहीं अब मेरे साथ क्या बीते। कल से घर ही नहीं आए और जब से कुड़कीवाली बात सुनी है मन का चैन ही चला गया है। सोचती हूं, कहीं कोई गलत काम ही न कर बैठें। मरता क्या नहीं करता। और मैं एक और बात भी तेरे से पूछना चाहती थी। उस दिन पूछने की सोच रही थी, फिर सोचा, पता नहीं तू क्या कहेगी कि इसे कितना अविश्वास हो आया है। मेरा हार तूने मंगवाया था?"

जमना समझ गई कि यह इशारा उसी हार की ओर है जिसे प्रेम ने लाकर उसे भेंट में दिया था। परन्तु फिर भी पूछने लगी, "कौन-सा हार बहन?"

शान्ति, "उस दिन आए, बोले भाई गोपालसिंह की पत्नी ने ऐसा हार बनवाना है और उन्होंने सुनियारे को नमूना दिखाना है। मैंने

निकाल कर दे दिया, परन्तु मुझे पूरा विश्वास है कि वह हार तेरे तक नहीं पहुंचा होगा। वह अवश्य ही उस डायन के पेट में पहुंच गया होगा। यह उस दिन की बात है, जिस रात को तूने साड़ी भिजवाई थी।"

कहकर शान्ति ने उसकी ओर प्रश्न सूचक आंखों से देखा।

जमना के लिए भेद को छिपाए रखना और भी कठिन हो गया वह जल्दी से जल्दी शान्ति का भ्रम दूर कर देना चाहती थी, परन्तु अपने भावों को और थोड़ी देर तक छिपाकर बोली, "मैंने तो बहन हार के लिए कभी भी नहीं कहा। तब तो तेरा हार भी उस रण्डी ने उड़ा लिय होगा। क्या पता उस पापिन ने और भी काफी-कुछ लूटा हो।"

ठंडी सांस भरते हुए शान्ति बोली, "क्या पूछती है बहन! जड़ से उखड़े वह, उसने तो हमारी सोने की लंका उजाड़ दी है। उसने हमारे पास रहने क्या दिया है? यह कुडकी और वारंट न निकलते, यदि वह न होती। मां बेचारी ने तो तब से आंख ही नहीं खोली, जबसे उसने ऐसा सुना है। मैंने सोचा, जो समय पर काम न आए, उसे बाद में चाटना है। मेरे गहनें और किस घड़ी के लिए हैं। क्यों न इनको बेच कर कोई उपाय किया जाए। जब मैंने अन्दर जाकर पेटी को खोला तो पेटी काटने को दौड़ी। कहां तो वह भरी-पूरी थी और कहां उसमें कांच का एक छल्ला भी ढूंढ़े नहीं मिलता था। मेरे तो प्राण खुश्क हो गए मैंने सोचा शायद कोई लूटकर ही ले गया हो। परन्तु फिर ध्यान आया, पेटी ज्यों की त्यों बन्द, चाबियां जहां की तहां पड़ी हैं, फिर चोर क्या आकाश से आया था? बस मैं समझ गई कि यह भी उसी मेरी सोकन के पेट में चले गए हैं। कल प्रभात की वेला को घर से निकले थे, नहीं तो और दिनों दिन निकलने पर उठा करते थे। मुझे सोया हुआ देखकर, दाव लगाकर चलते बने। उधर भैय्या को तार दिया और इधर तेरी ओर दौड़ी आई। लुट भी गई और बेघर भी हो गई। मेरा कुछ भी न बचा…।" कहते-कहते शान्ति फिर रोने लगी।

जमना ने शान्ति से पूछा, "तू उसका घर जानती है?"

"नहीं बहन! नहीं जानती, परन्तु जानकर करना भी क्या है। कंजरी भला कब किसकी मित्र होती है? मैं तो इसीलिए आई थी कि

यदि भाई साहिब चाहें तो डरा-धमका कर उस छटी हुई से कुछ वापिस ले सकते हैं। और नहीं तो कम से कम भविष्य के लिए मेरे पति का पीछा तो छोड़ दे। इतने में ही समझ लूंगी कि मुझे लाख मिल गया है।

जमना के मन में आया कि अपने-आप को शान्ति के चरणों पर गिराकर सबकुछ बता दूं, फिर सोचने लगी, 'शान्ति से जो मुझे श्रद्धा-मिश्रित स्नेह इस समय मिल रहा है, क्या फिर मिल सकेगा ? नहीं। शान्ति उसी समय मेरे से घृणा करने लगेगी, मेरी परछाईं से भी डरने लगेगी। मेरा यह स्वर्ग का सुख क्षणभर में मिट्टी में मिल जाएगा। शान्ति जैसी पवित्र सहपाठी को पाकर, मैं इसे खो बैठूंगी। मेरी हृदय को शान्त करनेवाली यह दुनिया मिट जाएगी। शान्ति तुरन्त ही मेरे को छोड़ जाएगी और उसके साथ ही मेरे हृदय की शान्ति सदा के लिए चली जाएगी। बस, मैं इस अमूल्य वस्तु को कभी नहीं खोऊंगी। जो कुछ यह मुझे समझ रही है, इसकी निगाहों में हमेशा ऐसी ही बनी रहूंगी।'

यह शान्ति से फिर पूछने लगी, "बहन, कौन-कौन-सा गहना था ?"

शान्ति गिनकर बताने लगी, "बारह तोले की बांकां, बत्तीस चूड़ियां, एक अनन्त—यह गहने तो सादे थे। बाकी जड़ाउ थे—शृंगार-पट्टी, गुलूबन्द, कंठी, रतनचौक, सहागी और इनके अतिरिक्त क्लिप, सूइयां, बुन्दे अंगूठियां आदि, आदि।"

जमना को याद आया, 'इनमें से ही कईयों का उसने रात नाम लिया था।' वह बोली, "गहने तो बहुत थे बहन ! परन्तु क्या पता शायद ऋण चुकाने के लिए ले गए हों।"

शान्ति बोली, "यदि उन्हें देने-लेने की चिन्ता होती तो हमें यह दिन क्यों देखने पड़ते ? मेरा तो पूरा विश्वास है, उसी डायन के घर सब कुछ पहुंच गया होगा। पता नहीं मरी ने क्या टोना कर लिया है।"

जमना कहने लगी, "अच्छा बहन ! तू चिन्ता न कर। मैं कल उसकी बैठक पर स्वयं जाऊंगी। मुझे आशा है मैं किसी न किसी तरह उसे रास्ते पर ले आऊंगी।"

यह सुनकर शान्ति के डोलते हुए मन को तनिक विश्राम मिला। उसने कृतज्ञता के भाव से उसे कहा, "यदि तू कहे तो मैं भी तेरे साथ

चली चलूंगी।"

कुछ सोचकर जमना बोली, "जैसी तेरी इच्छा।"

"ठीक है, परन्तु बहन! तू तो कहती थी, भाई साहिब आ जाएंगे, अभी तक तो नहीं आए।"

जमना जानती थी कि गोपालसिंह की लम्पट निगाहें शान्ति पर हैं, इसलिए वह नहीं चाहती थी कि शान्ति के रहते वह यहां आए। फिर वह यह भी जानती थी कि गोपालसिंह शराब पीकर आएगा, जिससे एक तो भेद खुल जाने का डर था और दूसरा वह शान्ति के हृदय में अपने प्रति हीन भाव नहीं लाना चाहती थी कि उसका (सरनकौर) का पति शराबी है।

इन सभी बातों को सम्मुख रखकर जमना ने जवाब दिया, "शायद कोई आवश्यक काम पड़ गया हो, परन्तु अब तू बहन चिन्ता न करना, मैं अपने-आप सबकुछ ठीक कर लूंगी। लोहे को लोहा ही काट सकता है और औरतों को औरतें ही ठीक कर सकती हैं।"

जमना की बातों से शान्ति का दुःख आधा हो गया। उसे हीरासिंह मुनीम के लौटने की प्रतीक्षा थी। इसलिए यह सोचकर कि शायद वह कोई खबर लाया हो या लाए, और फिर उसकी सास की हालत कुछ खस्ता थी, उसने घर जाना चाहा। जमना से बोली, "अच्छा, बहन, मैं चलती हूं। भाई साहब जिस समय आएं, उन्हें सब कुछ बता देना, साथ में यह भी कहना कि जैसे भी हो उनको जाकर कहीं से ढूंढ़ लाएं, कष्ट तो उन्हें अवश्य होगा, परन्तु इस समय और किससे कहूं? तुम्हारे बिना मेरा कौन है?"

प्यार से जमना ने उसे गले के साथ लगा लिया जौर सभी बातों के लिए 'हां' कहकर उसे आदर के साथ विदा किया।

जितनी देर शान्ति जमना के पास बैठी रही उसकी चिन्ता कुछ कम हो गई थी, परन्तु ज्योंही वह दरवाजे के बाहर हुई, फिर कई प्रकार के विचारों से उसका रक्त सूखने लगा।

शान्ति के चले जाने के लगभग पौन घन्टा पश्चात् गोपालसिंह आ पहुंचा। जमना प्रतीक्षा में बैठी थी। गोपालसिंह की प्रतीक्षा में नहीं, बल्कि घर जाने की प्रतीक्षा में।

आते ही गोपालसिंह ने कमरे में चारों ओर निगाह दौड़ाई, परन्तु उसकी आंखों की प्यास बुझाने वाली वहां कोई वस्तु न थी।

उसके आने के पूर्व ही जमना अपने हृदय में कोई निर्णय कर चुकी थी।

घर आते ही गोपालसिंह ने सबसे पहले उससे पूछा, "शान्ति आई कि नहीं?"

जमना ने मन में कहा—तेरे जैसे दुराचारियों को शान्ति कहां मिल सकती है। जिस भट्टी में व्यभिचार की लपटें उठ रही हों, वहां शान्ति कैसे आ सकती है?

वह बोली, "आई थी, परन्तु चली गई है।"

"चली गई?" गोपालसिंह ने उत्तेजित होकर पूछा, "क्यों? इतनी जल्दी तूने उसे क्यों जाने दिया?"

व्यंग कसते हुए जमना बोली, "मुझे तू रस्सी तो नहीं देकर गया था जिससे उसे बांधकर रखती।"

और भी तेजी साथ वह कहने लगा, "मजाक को छोड़, सीधी तरह बता, वह चली क्यों गई है?"

"चली गई उसको घर पर काम था। गृहणी ठहरी, मेरी तरह बाजारू औरत थोड़ी थी कि जहां मन करे चली जाए और जब मन करे लौट आए।"

जमना द्वारा इस तरह की बातचीत करने पर गोपालसिंह का हृदय झुंझला उठा। वह कहने लगा, "और तू अपना वचन भूल गई थी? मैं सारे दिन की मेहनत से कहीं प्रबन्ध करके आ रहा हूं, और तूने आते ही अच्छी सुनाई है मुझे।"

"वचन उसे बुला लाने का था, बुला लाई। उसको बांधकर रखने का वचन थोड़ा न था।"

"जमना, मुझे तेरे पर क्रोध आ रहा है।"

"वह किस बात पर?"

"इस बात पर कि तूने मज़दूरी लेकर भी मेरा काम नहीं किया?"

"मज़दूरी कोई तूने मुझे अपनी मां के बक्से में से लाकर थोड़ी न दी थी।"

"तो और क्या तेरी मां के बक्से में से लाया था?"

"मेरी मां के ही सही, शान्ति के बक्से में से ही सही।"

"शान्ति के बक्से में से लाया हूं तो तुझे क्या?" कहने के पश्चात वह सोचने लगा, 'शान्ति इसे अवश्य ही अपने गहने चोरी हो जाने की बात कर गई होगी।' वह नहीं जानता था कि उस दिन नशे में वह स्वयं ही सबकुछ बक गया था।

जमना बोली, "क्यों उस माल में मेरा हक नहीं था? प्रेम से मैं जो कुछ भी प्राप्त करूं, उसमें से तू तो पैसा-पैसा गिनाकर अपना हिस्सा ले ले, और तेरी इस दिल्ली की लूट में मेरा कोई भी हक नहीं था?"

गोपालसिंह निरुत्तर हो गया। वास्तव में जमना भी उसकी साझीदार थी। वह अपने भावों को बदलकर बोला, "परन्तु मैंने कहीं तेरा हिस्सा देने से मना किया है? पहले दूसरे साथियों से तो बटवारा हो जाने दे, जिनकी सहायता से यह मैदान मारा है।"

"भाड़ में जाएं तेरे साथी, पहले मेरा हिस्सा मेरे को दे।"

"अच्छा, दे दूंगा, इतनी नाराज़ क्यों होती है, पहले मेरा काम तो कर।"

"मैंने तुझे कह जो दिया है कि मैं अपना वचन निभा चुकी हूं। अभी उसे यहां से गए आधा घन्टा भी नहीं हुआ—तेरी प्रतीक्षा में दो-घन्टे बैठी रही थी।"

"परन्तु घन्टा-आधा घन्टा तू उसे और नहीं रोक सकती थी?"

"नहीं रोक सकती थी। घर उसकी मां मृत्यू के निकट है। पति उसका अलग से भागा फिरता है, और लूटी भी जा चुकी है वह। वह कैसे रुक सकती थी? यह भी उसकी कृपा समझो जो आ गई।"

"बड़ी शुभचिन्तक बन गई है तू उसकी।"

"मुझे उसकी शुभचिन्तक बनने की क्या आवश्यकता है, परन्तु उसकी दशा को तो मैं ही जानती हूं न, जैसी मैंने देखी है। फिर ऐसी हालत में मैं उसे कैसे रोक सकती थी ?"

"तब फिर मेरी मेहनत यूंही गई ?"

"यूंही क्यों गई, मेरे होते हुए, तेरी मेहनत यूही जा सकती है ?"

"फिर ?"

"फिर अब कल सही।"

"अच्छा, जैसी तेरी इच्छा, परन्तु कल मेरा काम अवश्य हो जाए।"

"हो जाएगा, यदि तू समय पर आ गया।"

"मैं समय से पहले ही आऊंगा।"

"अच्छा तो फिर सारा काम ठीक हो जाएगा, ला अब मेरा हिस्सा।"

"आजका दिन क्षमा कर दे, कल अवश्य दे दूंगा।"

"पहले देगा तो काम होगा।"

"पहले दूंगा पहले, तुझे जमना ! मेरे पर इतना भी विश्वास नहीं है ?"

"अच्छा मनोहरी को बुला, मुझे छोड़ आए।"

"अभी आ रहा है।"

इतने में मनोहरी आ गया और जमना तुरन्त ही उसके साथ चल पड़ी। गोपालसिंह ने थोड़ी देर और रुकने को कहा परन्तु वह रुके नहीं।

आज गोपालसिंह को बड़ी गहरी नींद आई। एक तो उसे [illegible] माल हाथ लगा था, दूसरा शान्ति को प्राप्त कर लेने में केवल कुछ घड़ियों की देरी थी। उसने सोचा था कि बस शान्ति के [illegible] पर पहुंचने की देरी है कि उसे रात-रात में ही [illegible] दूंगा जहां से फरिश्ते भी उसे नहीं ढूंढ सकेंगे। फिर [illegible] और मैं। माल खूब सारा हाथ लग गया है, [illegible] बहुत बात हुई तो एक-दो दिन तक चीखे-चिल्लाएगी, [illegible] मेरी अधीनता उसे स्वीकार करनी ही पड़ेगी। [illegible] भूखे-नंगे के पास रहकर अब [illegible] रात के खाने के लिए भी कुछ नहीं, न [illegible]

सकता है। वेगानों ने उसे कल ही अन्दर भिजवा देना है।

ऐसे विचारों में डूवा, कल के सुनहरे दिन की प्रतीक्षा में वह लम्वी तानकर सो गया।

सुबह मनोहरी ने, जो दुकान पर सोता था, आकर उसे वताया कि प्रेम सुवह से दुकान में सोया हुआ उसकी प्रतीक्षा कर रहा है। गोपालसिंह ने वड़ी लापरवाही से कहा, "कह देना उसे गुजरांवाला गया हुआ है।" मनोहरी लौट गया।

३८

सव कुछ खो-खाकर प्रेम रात भर वहीं नदी के किनारे पड़ा रहा। उसकी दुःखी आत्मा कभी होश में, कभी वेहोशी में, कभी करवटें वदल-वदलकर और कभी नींद में भटकती रही।

सुवह जव उठा तो उसके कपड़े गीले थे, परन्तु उसे कोई पता नहीं था कि वह ओस से गीले हुए थे या वर्षा से। उसके प्रत्येक जोड़ में पीड़ा हो रही थी, पता नहीं ठंड लग जाने या अनिद्रा से। उसके सिर को चक्कर आ रहे थे, परन्तु वह नहीं जानता था कि यह शराव के नशे के कारण से या कल की घटनाओं के कारण से।

भूली हुई घटना उसे फिर याद हो आई। उसके भीतर शोर मच रहा था—'मैं लुट गया हूं, वरवाद हो गया हूं। परन्तु क्या यह ठीक है ? क्या मैं विलकुल ही मिट्टी में मिल गया हूं ?'

कुछ वातें अभी तक मस्तिष्क की हलचल के नीचे छिपी रही थी जो धीरे-धीरे आवाज़ें कसने लगीं—हुण्डियों के भुगतान, कुड़की, वारंट, जेल अथवा मौत। ज्यों-ज्यों उसके मस्तिष्क में यह विचार घूमने लगे, उसके माथ पर पसीना आने लगा और उसकी जीभ उसके हलक के साथ चिपकने लगी।

उसके लिए उठकर खड़ा होना कठिन हो गया। 'अव किधर जाऊं ? फिर आज भुगतान का दिन है। गहनें भी गए और वह मिनटों-सेकिन्टों में।' उसे यह सारी घटना एक स्वप्न की तरह लग

रही थी।

धीरे-धीरे उसकी समझ में आया कि वह ठगों द्वारा लूट लिया गया है। वह दोनों हाथों से माथे को पीट कर रह गया।

अब उसके लिए कोई ठिकाना शेष नहीं बचा था अगर था तो गोपालसिंह की दुकान। वह उधर ही चल पड़ा कि शायद गोपालसिंह की सहायता से सिपाहियों के भेस में उन ठगों का कुछ पता लग जाए, परन्तु दुकान पर पहुंचने पर उसे गोपालसिंह का ही पता न चला। मनोहरी ने बताया कि सरदारजी आज किसी जरूरी काम से बाहर गए हुए हैं।

वह गोपालसिंह की दुकान के भीतर जाकर सो गया और उसने सारा दिन वहीं बिताया। दोपहर का खाना मनोहरी तन्दूर से ले आया, परन्तु उसने खाया नहीं। न जाने उसकी भूख-प्यास कहां उड़ गई थी।

रात भी उसने वहीं बिताई और दूसरे दिन की दोपहर भी। परन्तु गोपालसिंह नहीं मिला। सायंकाल को वह उठकर बाजार की ओर चल पड़ा। गोपालसिंह पर उसे बड़ा क्रोध आ रहा था, जो न कल उसे मिला था और न ही आज।

अब किधर जाऊं ? इन्हीं विचारों में डूबा वह बाजारों में भटक रहा था कि उसे करीम दिखाई दे गया। करीम बड़े तपाक से उसे मिला। जानता जो था कि आज बाबूजी दिन में ही लूट लिए गए हैं। कुशल-मंगल पूछने के पश्चात बोला, "सुनाओ बाबूजी, आजकल कहां रहते हो ? कभी दर्शन ही नहीं हुए, पहले तो कभी-कभी सरदार गोपालसिंह जी की दुकान पर मेल-मिलाप हो जाया करता था, अब तो आप ईद के चांद हो गए हैं।"

प्रेम को इस समय करीम का मिलना 'डूबने को तिनके का सहारा' लगा। वह इतना ज़रूर जानता था कि करीम भी गोपालसिंह का साथी —क्यों न इसे अपनी सारी कहानी सुनाकर कोई मतलब हल किया जाए।

वह बोला, "मियां करीम बख्श ! मैं तो स्वयं ही कई बार गोपाल-सिंह से तेरे बारे में पूछ चुका हूं, सुना आजकल क्या काम-धन्धा कर रहा है ?"

"काम ? आपकी कृपा से आजकल ठेके का काम अच्छा चल रहा है। लोग कहते हैं कि आजकल काम मन्दा है परन्तु हमारा काम तो सरकारी है न। फिर मेरी आदत है मैं काम करता हूं मेहनत और ईमानदारी के साथ। वाहर जो 'रीगोब्रिज, पुल है न, वह मैंने ही वनाया था। तुम्हें तो शायद याद नहीं होगा—यहां का डिप्टी कमिश्नर किंग साहिव हुआ करता था, वह मेरा पुराना मित्र था। वस जव मन करता उसके वंगले में चला जाता। वैरे 'ठहरो-ठहरो' करते रहते थे। एक दिन हंसी-हंसी में ही मैंने साहिव से कह दिया—साहिव यह तूने क्या विल्ली-कुत्ते दरवाज़े पर विठा रखे हैं, जव आओ टोक देते हैं। वस फिर साहिव को आ गया उनपर क्रोध। पकड़कर ताड़-ताड़, ताड़-ताड़ हन्टर लगाने लगा, फिर वह दिन गया और यह दिन आया, मां मर जाए उनकी यदि एक वार भी मेरी ओर आंख उठाकर देख जाएं। मेरी आदत है जहां एक वार प्रेम-प्यार हो जाए, फिर वहां जान भी देनी पड़े तो मैं पीछे नहीं हटता। इसी वात से खुश होकर साहिव ने मुझे पुल वनाने का ठेका भी दे दिया। वड़े-वड़े ठेकेदार मुंह देखते रह गए। फिर यह जो ठेकेदार होते हैं न यह वड़े ही स्वार्थी होते हैं, और हम हुए कि चाहे सव कुछ ही क्यों न लग जाए पीछे नहीं हटते। मेरा चाचा खुदा ईमान नसीव करेसू मेरी तरह ही खाता-पीता धनवान था। वढ़िया से वढ़िया पशु वह घर पर रखा करता था। एक वार वह एक साढ़े तीन सौ की गाय लाया था। गाय भी वस मूर्ति थी मूर्ति। देखते ही मन प्रसन्न हो जाता था। दिन में उसे तीन वार दोहना और हर वार वाल्टी भर दूध देती। वस, भगवान तुम्हारा भला करे, साहिव की एक वार निगाह पड़ गई गैया पर, मुझे कहने लगा, "मैं तो इस गाय का दिवाना हो गया हूं।" उसके कहने की देरी थी मैंने सायंकाल तक गाय उसके दरवाज़े पर जा वांधी। साढ़े तीन सौ रुपया निकालकर चाचा के आगे ढेरी कर दिया।"

वेचारा प्रेम सोचने लगा, 'मैं क्या मुफ्त में राह जाती वला को गले लगा वैठा हूं।' अन्त में वातें करते-करते करीम उपरोक्त अर्ध-विश्राम पर आकर रुका तो प्रेम ने अवसर पाकर कहा, "मिर्ज़ा ! क्या वताऊं मैं तो एक कठिनाई में फंस गया हूं।"

"कठिनाई मे ? आप ?" जल्दी मे करीम ने कहा, "बात क्या है ? मुझे बताओ यदि मेरे योग्य कोई सेवा हो ?"

"करीम, मैं ठगा गया हूं।" कहने के पश्चात प्रेम ने सारी घटना उसे कह सुनाई।

बाहर से अफसोस प्रकट करते हुए, परन्तु मन ही मन चुटकी लेते हुए, करीम बोला, "लाहौर की ओर ! पर बाबूजी आपके मित्र गोपालसिंह के होते यदि कोई आपको ठग कर ले जाए तो बड़े अफसोस की बात है।"

प्रेम कहने लगा, "गोपालसिंह यदि मिल जाता तो शायद कही न कही पता लगा ही लेता, परन्तु वह तो कल से मिला ही नहीं। उसका नौकर मनोहरी कहता था गुजरांवाला गया हुआ है।"

करीम कुछ तो गोपालसिंह से पहले ही तंग आया हुआ था और उसकी इस नई चालाकी ने, कि वह गुजरांवाला गया हुआ, जैसे उसका गला ही दबा दिया हो। वह मन मे सोचने लगा, 'बेटा गोपाले ! तू भी अकेले मे माल उड़ाता रह, और मैंने भी यदि नारद का अवतार लेकर तेरी जड़ें न काटी तो मुझे भी बाप का बेटा न कहना।'

इसको छोड उसे प्रेम की बेवकूफी पर भी हंसी आई, जो अभी भी उसे अपना मित्र और शुभचिंतक समझे हुए है। गोपालसिंह के प्रति प्रेम के हृदय मे शंका पैदा करने का अवसर इससे अच्छा और कौन-सा होगा, यह सोचकर करीम बोला, "कौन कहता है वह यहा नहीं ? मैं तो अभी-अभी उसे सराफो वाले बाजार मे देखकर आ रहा हू ?"

उसकी बात सुनकर प्रेम सोचने लगा—तो क्या लड़का मेरे से झूठ बोला था ? वहां उसका क्या काम था ? प्रेम के हृदय मे कई प्रकार की शंकाएं पैदा होने लगी। वह पूछने लगा, "अच्छा तो अब मैं क्या करूं ?"

'कूएं में जा' मन में करीम ने कहा, परन्तु बाहर से दुःखी चेहरा बनाकर बोला, "बाबूजी ! मुझे तो अल्ला की कसम, सुनकर बड़ा दुःख हुआ है। परन्तु आप इतने गहनें लेकर रात को निकले क्यो ?"

प्रेम ने सारा इतिहास दोहरा दिया। करीम समझ गया कि सारा कुछ गोपालसिंह की कृपा का फल है।

वह बोला, "अच्छा वावूजी, चिन्ता की कोई वात नहीं। अल्ला ने चाहा तो कोड़ी-कोड़ी आपको वापिस लेकर दूंगा। हमारे होते हुए अमृतसर का कोई ठग आपको ठग ले। अगर कल तक उसे चोटी से पकड़कर आपके सामने लाकर खड़ा न कर दिया तो मेरा नाम बदल देना। भगवान की कसम, मैं उसकी गर्दन पर सवार हो जाता हूं जो मेरे मित्र की ओर बुरी निगाह से देखे। लाला बुलाकी मल सराफ का वेटा आज तक जहां भी मिलता है हाथ जोड़कर कहता है—मिर्जा! यदि तू मेरी जान न वचाता तो आज मैं श्माशानों में होता, सच्चाई और प्रेम से चाहे मेरी कोई जान भी ले ले मैं मना नहीं करता, परन्तु यदि कोई चालाकी से मुझे छलना चाहे तो वेटा वनाकर छोड़ा करता हूं। फगू वनिए के दामाद की नई कार, अभी टायर भी मैले नहीं हुए थे पुलिस के हाथों वे फंस गई। उसका 'डलैवर' अनजान था। मजी वाली सड़क पर सरपट दौड़ाए जा रहा था, आगे से एक टांगा आ रहा था, उस पागल के वेटे को अपने हाथ का ध्यान ही न रहा अ दे मारी कार घोड़े की छाती में। घोड़ा वेचारा वहीं ढेर हो गया सवारियों को भी चोट आई परन्तु अल्ला की कृपा से उनकी जानें गईं। वस, भगवान आपका भला करे, लालाजी का चालान हो ग आधी रात को मेरी ओर आदमी भगाया कि—मिर्जा तेरा और वान का ही आसरा है अगर वचा सको तो वचाओ। फिर मेरी वड़ी खराव है कि मेरे से किसीका दुःख नहीं देखा जाता। था चौधरी गुलाम हैदर को आप जानते होंगे। पीछे गलवाली दरवा लगा हुआ था आजकल उसकी 'मियांवाली' तवादला हो गया है छः पत्र लिख चुका है कि मिर्जा, एक वार आकर मिल जा। व भगवान तुम्हारा भला करे, रात को ही गया मैं उसके पास। सं को जाकर जगाया, सुवह होते ही मामले को ठप्प करवा दिया।"

तंग आकर प्रेम कहने लगा, "अच्छा अव फिर मेरे को को वताओ।"

एक ही तीर से दो निशाने लगाने के विचार से क लगा, "वावूजी! क्या वताऊं। मेरा तो खून उवल रहा है ज ...ती है। अगर वुरा न मानो तो एक वात कहूं?"

"बता मियां करीम, क्या बात है !"

"बाबूजी ! यह जो आप अपना मित्र लिए फिर रहे हैं न, मैं कुरान की कसम खाकर कहता हूं कि यह सारी शरारत उसकी है, तुम्हारा माल उसके अतिरिक्त और किसीने नहीं चुराया।"

करीम की बात सुनकर, प्रेम की आखें खुली की खुली रह गई। गोपालसिंह के बारे में उसके हृदय में अपने-आप ही कई शकाए उत्पन्न होने लगी। वह सोचने लगा—मेरी जेब में जो माल था उसका किसी को पता कैसे लग सकता था। दूसरी बात यह कि कल से गोपालसिंह ने अपनी शक्ल ही नहीं दिखाई और फिर अभी-अभी करीम कह रहा था कि मैंने उसे सराफो वाले बाजार में देखा था।

वह चुप का चुप ही रह गया। करीम की बात का उसने कोई जवाब न दिया।

करीम ने सोचा—जमीन में बीज डाल दिया है, अब उपज, के लिए तनिक पानी की आवश्यकता है। इसलिए वह मुह बनाकर बोला, "बाबूजी ! की हुई बात काफी दूर तक फैल जाती है, परन्तु मेरी आदत है अपने मित्र को सच्चाई से परिचित करवाकर सावधान कर देता हूं। कहते हैं—सियाने का कहा और आमलों का खाया, बाद में पता चलता है। मित्र वह जो समय पर काम आए। तुंगा के नम्बरदार चानन को आप जानते होंगे। कई बार उसे कचहरी में आपने देखा होगा। भारा और छोटे कद का है तथा अधेड़ उमर का है। सिर भी तनिक गंजा है। सच्च उस दिन तुम साथ में ही थे जब नूर ईलाही छीम्बे का मुकदमा सुनाया गया था। (सोचकर) नहीं, नहीं, आप नहीं थे, उस दिन हीरासिंह था। साथ में अपना क्या नाम था उसका···मिस्त्री कालासिंह का दामाद—लखासिंह। उस दिन वह भी चाननसिंह तुंगा का गवाह था। वह एक बार ऐसे पेच में फसने लगा था, भगवान की कसम, अगर आपका यह गुलाम वहां न होता तो वह छुटे नहीं मिलता···।"

प्रेम पहले ही तंग आया हुआ था और इसपर भी वह फस ग करीम जैसे बतंगड़ के साथ। करीम नई कौन-सी बात बताने लगा जानने के लिए वह बड़ा उत्सुक हो रहा था, परन्तु करीम ने

अपना 'अलफ-लैला' का किस्सा। फिर प्रेम को बड़ा डर था पकड़े जाने का, वह जानता था कि पुलिस वारंट लिए उसके पीछे भागी फिर रही है। इसलिए उसने घबराकर पूछा, "हां क्या बात थी मियां करीम! तू और कौन-सी बात बताने लगा था।"

करीम बोला, "देखो बाबू जी! छोटे मुंह बड़ी बात। कहते हुए भी लज्जा आती है, परन्तु करूं क्या, यदि आपको समय पर सावधान न किया तो न जाने कौन-सी कयामत आ जाए। ऐसे गन्दे आदमी पर क्या विश्वास हो सकता है।"

और भी अधिक उत्तेजित होकर प्रेम ने पूछा, "परन्तु बात क्या है?"

"बात यह बाबू जी! आप स्वंय ही समझदार हैं। बात कहती है कि तू मुझे मुंह से निकाल और मैं तुझे शहर से निकालूंगी। और कोई होता तो कसम अल्ला पाक की, मुझे क्या पड़ी थी, कोई पांच पकाए, छटी को पल्ले बांधे, परन्तु यहां ठहरी आपसी बात। जैसी तुम्हारी इज़्ज़त···।"

प्रेम तंग आकर मन में कहने लगा, 'खा खसमों को, अब मरेगा भी या नहीं।' और उससे फिर पूछा, "अच्छा, परन्तु बात क्या है?"

"बात यह बाबू जी! आप हैं हमारे अपने आदमी, इसलिए आपको बता दूं कि गोपाल को अपने घर में न आने दिया करो। यह जो उसने जमना को अपनी पत्नी बनाकर नया नाटक खेलना शुरू किया है, पता है इसकी तह में क्या है?"

सुनकर प्रेम के नीचे से जमीन खिसक गई। तो क्या दुष्ट गोपालसिंह की शान्ति पर भी आंखें हैं? यह सोचकर उसके अंग-अंग में ज्वाला जल उठी। उसे यह बात भी बिलकुल व्यर्थ की नहीं लगी। क्योंकि जिस दिन उसने उसे अपने घर खाने पर बुलाया था, तो उस दिन उसने शान्ति की ओर ललचाई हुई निगाह से गोपालसिंह को कई बार देखा था तथा बातचीत के ढंग को भी नोट किया था, परन्तु इसको अपने हृदय का भ्रम समझकर उसने इस ओर विशेष ध्यान नहीं दिया था।

इतना कुछ जानते हुए भी प्रेम यह सहन नहीं कर सकता था कि करीम के मुंह से शान्ति का नाम निकले, इसलिए बात को घुमाकर वह

कहने लगा, "और मियां करीम ! इस बात का तुझे कैसे पता चला कि मेरा गहना गोपालसिंह के इशारे पर लूटा गया है ?"

"मुझे पता चलने की, आपने अच्छी कही। मुझे छोड़कर आपको भी मिनटों में पता चल जाए, यदि क्षणभर के लिए जमना की बैठक पर चले जाओ तो। आपकी पत्नी का जड़ाऊ गुलूबन्द अभी भी उसके गले में जो गोपालसिंह ने उसे अपनी पत्नी बनने के उपलक्ष में भेंट के रूप में दिए हैं। हाथ कंगन को आरसी क्या, अपनी आंखों स्वयं जाकर देख लो।"

इतना कहकर करीम ने वहां और रुकना अच्छा न समझा और "अच्छा, कल मिलेंगे" कहकर उसने खिसकने की की।

करीम चला गया और प्रेम वहीं खड़ा-खड़ा सोचने लगा—'तो क्या जमना की तरह गोपालसिंह भी विश्वासघाती निकला ? सचमुच वह विश्वासघाती है। बस, अब मुझे पूरा विश्वास हो गया है। मेरे पास गहने थे, गोपालसिंह के अतिरिक्त दूसरा इस बात को कोई नहीं जानता था। फिर शान्ति को भी वह बुरी नजर से देखता है, यह बात भी सच्ची लगती है। ओ दुष्ट गोपालसिंह ! मैं आज समझा कि तू मेरा शत्रु है। जमना के जाल में भी तूने ही मुझको फंसाया और शराब की आदत भी तूने मुझको डाली। विशेषकर परसों उसने जब मुझे कम्पनी बाग की ओर भेजा था तो शराब की बोतल इसीलिए दी थी कि मैं पीकर बेहोश हो जाऊं और उस द्वारा भेजे गए नकली सिपाही मुझे लूट लें। शायद लाहौर जाकर गहने बेचने को भी उसने इसीलिए कहा था। दुष्ट ने मुझे बरबाद कर दिया।'

प्रेम की इस समय बड़ी दयानीय दशा थी। उसका सारा शरीर मानों आग में झुलस रहा था। संसार में जीने या रहने के लिए उसे कोई भी स्थान दिखाई नहीं दे रहा था। अपने चारों ओर उसे भयानक समुद्र की कालरूपी लहरें दिखाई दे रही थीं। वह नहीं जानता था कि इनमें से कौन-सी लहर उसके सिर के ऊपर से लांघकर उसका सदा के लिए नामो-निशान मिटा देगी। वह सभी एक-दूसरी से अधिक भयानक और रक्त की प्यासी थीं। भंवर में फंसी हुई उसकी नाव पल-पल में बोझिल होकर गहरे समुद्र के पेट में धंसती जा रही थी।

हां, यह समुद्र था पाप का, और नाव जिसपर वह सवार था—कागज़ों की थी।

एक-एक करके उसकी सभी आशाएं जा चुकी थीं। उसको शान्ति के साथ किए गए अत्याचारों की याद आई और फिर उसपर किए गए जमना और गोपालसिंह के अत्याचारों की भी। पापी को मारने के लिए पाप का ही सहारा लेना पड़ता है। उसने पहले आत्महत्या करने की सोची थी, परन्तु मरने से पूर्व उसको इच्छा हुई मक्कार जमना और उस जल्लाद मित्र का काम तमाम करने की।

यह विचार आते ही वह सीधा घर की ओर चल पड़ा। पेटी में पड़ा हुआ रिवालवर ही उसकी इस इच्छा को पूरा कर सकता था—दूसरा कोई नहीं।

सायंकाल के साढ़े-छः का समय था जब वह घर पर जा पहुंचा, नौकर से उसे मालूम हुआ कि शान्ति अभी-अभी कहीं बाहर गई है। उसने सोचा चलो यह भी अच्छा ही हुआ, शान्ति के रहते शायद मेरे रास्ते में बाधा पड़ जाती।

सबसे पहले वह अपनी मां के कमरे में गया। मां बेहोश थी या सोई हुई, परन्तु जाग्रत अवस्था में या होश में नहीं थी। यह भी उसकी इच्छा के अनुकूल ही हुआ।

उसने अन्दर जाकर देखा पेटी खुली पड़ी थी। शान्ति ने कल उसे दोबारा बन्द ही नहीं किया था। रिवालवर लेकर और उसको गोलियों से भरकर उसने उसे उसी जेब में रख लिया जिसमें परसों उसने सोना भरा था, और उसी पेटी में से आज उसने अपनी तथा अन्य कईयों की मौत का सामान निकाला।

इसके पश्चात नौकर को "मैं अभी आया" कहकर वह झटपट बाहर निकल गया।

कईयों ने उसे देखा परन्तु उसकी तेज़ चाल को देखकर, उसे बुलाने का किसीको भी हौंसला न हुआ।

प्रेम से मिलने के पश्चात करीम फिर गोपालसिंह की खोज में निकल पड़ा। ढूंढ तो वह उसे परसों से ही रहा था, परन्तु गोपालसिंह उसे मिला नहीं। आज भी प्रात काल से वह उसी की खोज में दौड़ा फिर रहा था। उसके पेट में चूहे उछल-कूद कर रहे थे कि कब गोपालसिंह उसे मिले और वह अपना हिस्सा बटवाए।

इसके अतिरिक्त वह गोपालसिंह और जमना को आपस में टक्करा कर अपने मन का बोझ हलका करना चाहता था। इस कार्य के लिए उसे कुछ मसाला भी मिल गया था।

वह लम्बे-लम्बे पग भरता हुआ बाजारों को कदमों से नापता फिर रहा था कि संयोग से उसे गोपालसिंह एक ठेके में शराब पीता हुआ मिल गया।

इस समय गोपालसिंह अकेला ही बोतल का आनन्द ले रहा था कि करीम ने जाकर सलाम बजाई।

उसने करीम को कुर्सी पर बिठाया। करीम अपनी लम्बी शेरवानी को सम्भालते हुए बैठकर बोला, "तू चाहे कहीं भी छिप-छिपकर बैठ, परन्तु यार तो ढूंढ ही लेंगे।"

शराब का गिलास उसको देकर गोपालसिंह बोला, "सुना मिर्जा! तू इधर कहां? मैं तो आज सारा दिन घूमता ही रहा हूं। अभी थोड़ी देर पहले टांगे पर से उतरा हूं। मैंने सोचा तनिक ताजा हो लूं।"

करीम बोला, "हां जी, अफसर काम वाले आदमी जो हुए। दिन में कचहरी के काम और रात......।" कहते-कहते करीम ने उसके चेहरे के भाव जानने के लिए उस ओर देखा। गोपालसिंह समझ गया कि उसका यहां आने का क्या अभिप्राय था, परन्तु वह उसे नाराज भी नहीं करना चाहता था। एक तो वह समय-असमय पर काम आनेवाला था, दूसरा गोपालसिंह के बहुत सारी बातों का भेदी था। वह लापरवाही से जेब में से दस का नोट निकालकर करीम की ओर फेंककर बोला, "परसों से तू मिला ही नहीं था।"

'हजारों के माल में से मेरे हिस्से में केवल दस रुप

कर करीम के हृदय में आग भड़क उठी, परन्तु वह हाथ लगे धन को छोड़ना भी नहीं चाहता था। उसने नोट उठा लिया और सूखे जवड़ों को तानकर हंसते हुए बोला, "बस यही ?"

"अभी यह तो ले, शेष फिर सही। यह तो मैंने अपनी जेब में से दिए हैं, जब माल हाथ लगा फिर देखी जाएगी" कहकर गोपालसिंह ने मेज़ पर से गिलास उठाकर मुंह से लगा लिया।

करीम समझ गया कि गोपालसिंह जल्दी से जल्दी उससे छुटकारा पाना चाहता है। वह मन में जलते हुए परन्तु बाहर से मुस्करा-कर बोला, "और यार हमें बताना तक नहीं था ?"

"अवसर ही ऐसा था।" उसी तरह बिना करीम की ओर देखे गोपालसिंह ने कहा।

ईर्ष्या रखनेवाले मनुष्य को इतना दुःख अपनी असफलता पर नहीं होता, जितना दूसरे की सफलता को देखकर उसे होता है। करीम जैसे भूखे-नंगे के लिए दस रुपए भी काफी थे, जबकि वह इस समय खाली पेट जमहाईयां ले रहा था। परन्तु उसके सामने ही गोपालसिंह, जिसकी न हींग लगी थी न फटकरी, जब सेरों यार का सोना सम्भालकर बैठा हुआ था और जमना भी एक खासी रकम गहनों के रूप में प्राप्त कर चुकी थी, तो फिर करीम का हृदय कबाब न बनता तो और क्या बनता।

वह टूटी हुई आवाज़ से बोला, "अच्छा तो एक नोट और निकाल।"

गोपालसिंह तंग होकर बोला, "अभी काफी है, फिर देखा जाएगा।"

करीम ने सोचा, अब इससे और अधिक मिलने की आशा नहीं रखनी चाहिए। इसलिए उसे इतने में ही संतोष करना पड़ा, परन्तु लगते हाथ वह गोपालसिंह और जमना में फूट डलवाना चाहता था। वह अब और अधिक सहन नहीं कर सकता था कि उसे दलाली दिए बिना, गोपालसिंह का सम्बन्ध जमना से बना रहे। बेशक जमना, गोपालसिंह के विरोध में काफी कुछ कह चुकी थी, परन्तु करीम को जमना की बातों पर विश्वास न था।

इसके अतिरिक्त उसे एक और भी दूर की सूझी। वह अब प्रेम को

गोपालसिंह के चंगुल में से बाहर निकालना चाहता था। प्रेम पर दया करके नहीं, ऐसा दयालु हृदय प्रकृति ने उसे नहीं दिया था, बल्कि इसलिए ताकि वह गोपालसिंह से अपना बदला ले सके।

इसलिए वह सभी बातों को ध्यान में रखकर, उससे बोला, "जमना कौन-सा शस्त्र (तलवार) उठाकर गई थी जो उसे इतना बड़ा हार मिल गया है। शिकार को फसाने के लिए भाग-दौड़ करते तो हम मरते रहे, और माल बंटवाने के लिए कोई और। मेरे साथ भी यही हुआ कि माल कोई खाए और भुगते कोई।"

गोपालसिंह ने आश्चर्य से पूछा, "तुझे हार के बारे में कैसे पता चला है?"

"हार का पता? हार का पता तो मुझे उसी समय चल गया था, जब तूने उसे दिया था, परन्तु मुझे एक ऐसी बात के बारे में भी मालूम है जिसके बारे मे तू सोच भी नही सकता। गोपाल मियां! तू सर्पणी को पाल रहा है, सर्पणी को। जमना को इसी चोरी के बारे में बताकर, तूने मौत को स्वयं दावत दी है। मेरी आदत है गोपाल मियां! मैं अधिक नही बोला करता। बस बुद्धिमान के लिए इशारा और मूर्ख के लिए डंडा काफी होता है। अल्ला की कसम, मैं तेरे से रुपये लेने नही आया था। साले रुपयों की क्या बात है, ऐसे सैकड़ों नोट तुमपर से न्यौछावर कर दूं। मैं तो तुझे सावधान करने आया हूं। मेरे जीते हुए यदि तेरे पर कोई वार करे तो फिर मेरा होना किस काम का। पिछले साल की बात है, जीवनसिंह दफेदार की हवेली में मेरा एक मित्र रहा करता था। नीलीबार मे उसकी लगभग पन्द्रह-बीस सौ एकड़ जमीन थी और स्वयं फिरोजपुर में सब मजिस्ट्रेट था। यहां जब वह एक मुकदमें के काम से आया तो रास्ते से ही उसके पीछे कुछ लोग लग गए। उसके पास छः-सात हजार रुपया था। अपनी भाजी के विवाह के लिए कुछ गहनें बनवाने थे उसने। दोपहर के समय संयोगवश मैं भी गप्प-शप्प करने के लिए हवेली चला गया। गोपालमियां, बचानेवाले के आगे किसकी चल सकती है। बैठे-बैठे मेरी निगाह अचानक बाहर घूम रहे एक व्यक्ति पर जा पड़ी। बस मैं झट उसके सिर पर चढ़ गया। मैंने सोचा हो न हो इसकी निगाह मेरे दोस्त पर ही है।"

"मैंने वाहर निकलकर धीरे से पीछे की ओर उसका कंधा जा पकड़ा। मुझे देखते ही उसका मां-वाप मर गया। बोला 'सुना मिर्ज़े, तू किधर?' मैंने कहा, 'अरे मैं तो यहीं रहता हूं तू अपनी वता?' अन्त में उसने सारी वात वता दी। मैंने कहा—अरे हमारी ही विल्ली और हमें ही म्याऊं? पता नहीं तुझे यह मेरा मित्र है? वेटा, हमारे हाथों में खेलकर वड़ा हुआ है और अव घर के पीछे ही लग गया है?"

"वस फिर क्या था उसने पगड़ी उतारकर मेरे पैरों में रख दी और लगा तरले लेनें। कहे—मिर्जा, मुझे क्या मालूम था कि यह तेरा आदमी है, अभी भगवान की कृपा समझो कि तू समय पर आ गया है नहीं तो इसका रात को खून भी हो जाता और रुपया भी लुट जाता।"

गोपालसिंह, करीम के स्वभाव से अनजान नहीं था। वह जानता था कि इसकी 'सखियों' का कितना भाग सच्चा होता है। परन्तु उसको इतना ज़रूर विश्वास हो गया कि उसने अवश्य ही जमना को मेरे विरुद्ध कुछ करते देखा है।

इसलिए उपरोक्त वात के समाप्त होते ही, कि कहीं वह कोई और साखी न शुरू कर दे, वह बोला, "परन्तु मेरी नाव को किस तरह वह डुवोना चाहती है। पूरी वात वता। तूने तो कोई और ही किस्सा शुरू कर दिया है।"

"वात? वात यह है कि उसने प्रेम की पत्नी को सारा ही मामला वता दिया है।"

"हैं?" गोपालसिंह के हाथ का गिलास होठों तक ही लगा रह गया, उसने पूछा। "इसका प्रमाण?"

"प्रमाण नहीं तो और क्या यूं ही। क्या विना प्रमाण के ही तुझे कह रहा हूं? मेरी आदत है गोपालमियां जिस वात का सोलह आने प्रमाण न मिल जाए मैं उसपर विश्वास ही नहीं करता। रिश्ते में एक हमारा दामाद हुआ करता था······।"

गोपालसिंह ने जव देखा कि वतंगड़ करीम असली वात को छोड़, किसी और विषय की ओर जाने लगा है, तो वह वीच की काटकर पूछ वैठा, "अच्छा, इसका तेरे पास क्या प्रमाण है?"

"मेरे पास क्यों होगा, इसका प्रमाण जाकर देखना तुम प्रेम की

पत्नी के पास।"

"परन्तु कैसे ?"

"बस यही गुलूबन्द, जो तू परसों उसे देकर आया है, कल प्रेम की पत्नी के गले में देख लेना। अगर न हुआ तो तेरे जूते होंगे और मेरा सिर।"

गोपालसिंह को ऐसे लगा जैसे उसके सिर पर कोई भारी पत्थर आ पड़ा हो। रात वाली जमना की बातों से भी उसे कुछ ऐसा ही लगता था कि वह शान्ति की तरफ ले रही है। परन्तु शराब के नशे में उसने इस ओर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया था। अब करीम की बातें सुनकर उसे पूरा विश्वास हो गया कि जमना ने अवश्य ही शान्ति को उसकी चोरी की बात बता दी होगी।

फिर भी वह करीम से पूछने लगा, "करीम ! भगवान के लिए, पूरी बात विस्तार से बताओ।"

इसके पश्चात करीम ने जमना की बैठक पर जाकर जो कुछ सुना था, उसके साथ तिगुना-चौगुना अपनी ओर से जोड़कर गोपालसिंह को कह सुनाया।

करीम की बातों को बेशक गोपालसिंह कभी भी विश्वास के योग्य नहीं समझता था, परन्तु वह यह भी जानता था कि इतनी बड़ी झूठी बात को जोड़कर कहना करीम के बस का न था। फिर उसके पास रात वाला प्रमाण भी तो था।

शान्ति के एक-दो दिन के मेल-मिलाप ने जमना को उसकी श्रद्धालु बना दिया है, इस बात को गोपालसिंह असम्भव नहीं समझता था। वह जानता था कि शान्ति के पास कोई चुम्बकीय शक्ति अवश्य है। फिर जबकि वह स्वयं घायल हुआ पड़ा था, तो उसे यह बात भी असम्भव नहीं लगी कि शान्ति जैसी सुन्दर स्त्री की दया ने जमना के पत्थर हृदय को भी मोम का बना दिया होगा। इसको छोड़ उस कत्लवाली घटना की भी याद आ गई जब वह जमना को पक्का कर आया था कि शान्ति को वापिस न जाने देना, परन्तु उसने शान्ति को वापिस भेज दिया था।

आंखों द्वारा कृतज्ञता प्रकट करते हुए वह बोला, "करी... बातें कुछ-कुछ सच्ची दिखाई देती हैं।"

"कुछ-कुछ ?" करीम ने अपनी बात पर ज़ोर देकर कहा, "यदि रुपये में से पैसा भी गलत हो, तो मेरा नाम बदल देना।"

"परन्तु करीम ! इसका बेड़ा तबाह हो, तनिक भी जमना को मेरा डर नहीं था ? हरामज़ादी मेरे साथ विश्वासघात कर स्वयं बच निकलेगी ? मैं अपने बाप का बेटा नहीं, जो उसका खून न पी गया तो। उसने मुझे समझा क्या है ?"

अपना जादू चला देखकर, करीम को मन ही मन बड़ी खुशी हुई। वह बोला, "इसी बात से तो मैं जला जा रहा हूं—जब से मैंने सुनी है, नहीं तो इस समय तेरे पीछे दौड़ने की मुझे क्या जरूरत थी। मेरी आदत है, एक बार मुझे जिस बात का पता चल जाए फिर मैं बुरे के घर तक जाकर दम लेता हूं। हमारी गली में एक खटीकों का घर है। उसके......।"

गोपालसिंह के लिए यहां बैठकर करीम से 'साखी' सुनना, अब कठिन था। उसने करीम को कोई भी नई साखी शुरू न करने दी और कुर्सी से उठते हुए बोला, "अच्छा करीम ! कल किसी समय अवश्य मिलना। अब मैं चलता हूं।" और वह बिना जवाब की प्रतीक्षा किए ठेके से बाहर चला गया। उसने अभी तक सारे गहनें अपने घर के एक कोने में दबा रखे थे। उसको भय था कि कहीं मामला बिगड़ गया तो पकड़ा ही न जाऊं, इसलिए जाकर उसने इन गहनों को ठिकाने लगाना था। वह सोचने लगा—'जमना भी वहां पहुंच चुकी होगी, क्योंकि दुकान से आते समय वह मनोहरी को कह आया था कि दुकान बन्द करके पूरे पांच बजे जमना को घर ले जाना। बस इस बदजात छोकरी को अभी जाकर मजा चखाऊंगा, चाहे इसके बदले मुझे सूली पर भी क्यों न चढ़ना पड़े। नमकहराम, कुत्तिया, कृतघ्न।'

करीम अपने काम में सफलता प्राप्त कर, जेब में पड़े हुए नोट को अंगुलियों से टटोलता हुआ कि कहीं गिर तो नहीं पड़ा, एक ओर को चल पड़ा।

४०

सायंकाल के सात बजे गोपालसिंह शराबी बनकर घर जा पहुंचा। दरवाजे मे खड़ा मनोहरी उसे मिला जिसने उसे बताया कि 'मैं जमना को लेने गया था, परन्तु वह आई नहीं। कहती थी—'तू जा और मैं अपने-आप घण्टे-डेढ़ घण्टे तक पहुंच जाऊंगी।'

सुनते ही गोपालसिंह को सांप काट गया। करीम की बातों का प्रत्येक शब्द उसे सच लगने लगा। 'बाद में अकेली आएगी? कहीं कोई और गुल न खिलाए। कहीं मुझे हथकड़ी लगवाने के हथकंडे तो नहीं खेल रही?' डर से उसका रंग पीला पड़ गया। मनोहरी को दुकान पर भेजकर वह स्वयं बाहर के दरवाज़े को भीतर से कुंडी लगाकर पिछले कमरे में जा बैठा। उसको ध्यान आया कि परसों रात को जब वह जमना की बैठक में शराबी बनकर उसे गुलूबन्द देने गया था, तब शायद उसके मुंह से यह भी निकल गया हो कि गहना उसने फलां स्थान पर दबाया है।

इन सब बातों को सोचते हुए वह पिछले कमरे में जाकर बर्फ तोड़ने वाले सुए से फर्श को खोदने लगा।

उसने अभी एक ही ईंट खोदी थी कि नीचे से दरवाज़ा खटखटाने की आवाज़ आई।

'बस, शायद पुलिस आ गई, उसके भीतर से एक भयानक आवाज़ गूंजी और उसके साथ ही उसके हाथ से सुआ नीचे ज़मीन पर गिर पड़ा।

'बस पुलिस के अतिरिक्त यह दूसरा और कोई नहीं हो सकता, गोपालसिंह का दरवाज़ा इतनी ज़ोर से खटखटाने की हिम्मत और किसी में नहीं हो सकती।'

उसका नशा रुपये में से बारह आने रह गया और सारा शरीर पसीने से तर हो गया। दरवाज़ा फिर खटखटाया गया—पहले से भी अधिक ज़ोरों से जैसे कोई डण्डों से तोड़ रहा हो।

अब तो खोलना ही पड़ेगा। उसने चारों ओर निगाह दौड़ाई, परन्तु भाग निकलने का कोई मार्ग न था। छत भी इतनी ऊंची थी कि नीचे

कूदने पर जान जाने का खतरा था। उसका आधे से अधिक नशा जाता रहा।

तीसरी बार फिर दरवाज़ा खटखटाया गया, पहले से भी तेज़।

वह लड़खड़ाता हुआ उठा। खोदी गई ईंट को भी उसने दोबारा उसके स्थान पर न रखा— वह ज्यों की त्यों पड़ी रही। इस समय उसका सारा नशा उड़ चुका था।

धड़कते दिल से उसने बैठक में आकर खिड़की खोली। उसका विचार था कि सबसे पहले उसकी निगाह गली में बिखरी हुई पुलिस पर, और तमाशा देखने को जमा हुई भीड़ पर पड़ेगी। परन्तु नीचे जो कुछ था उसको देखते ही उसकी जान में जान आई। उसका हृदय पहले से भी दुगनी तेज़ी के साथ धड़कने लगा और टांगें पहले से अधिक कांपने लगी, परन्तु डर से नहीं, सफलता की खुशी के कारण।

नीचे शान्ति खड़ी दरवाज़ा खटखटा रही थी। उसने जल्दी से नीचे जाकर दरवाज़ा खोला, शान्ति बड़ी घबराई हुई थी और दरवाज़े के साथ टकरा-टकराकर उसके दुर्बल हाथ इतने लाल हो गए थे कि उनमें से रक्त बहना चाहता था।

केवल 'सत्य श्री अकाल' कहकर और बिना कोई दूसरा शब्द बोले ही शान्ति उसके पीछे-पीछे ऊपर आ गई। शान्ति की आंखें लाल थी शायद रो-रोकर या जागते रहने से, परन्तु गोपालसिंह ने यह लाली क्रोध की समझी।

बैठक में पहुंचते ही शान्ति ने खोजती निगाहों के इधर उधर देखकर गोपालसिंह से पूछा, "भाई साहिब! बहन सरनकौरजी कहां हैं?" कहते-कहते शान्ति बात का अगला भाग कहने से लज्जा गई कि कहीं इसको अपनी पत्नी का उस बाज़ार में जाना पसन्द न हो। इसलिए बात को बदलते हुए वह बोली, "कहीं जाने को उसने वचन दिया था। प्रतीक्षा कर-करके मुझे स्वयं ही आना पड़ा।"

इस एक नज़र ने और उसी एक वाक्य ने गोपालसिंह में फिर कंपकंपी जोड़ दी। ऐसी कंपकंपी जो शायद उसमें पुलिस देखने पर भी न छिड़ती।

अपने सूखे गले को थूक से तर करते वह बोला, "दरबार साहिब

गई हुई है। बीबीजी, बैठ जाओ अभी आ जाती है।"

करीम से वह जो कुछ सुनकर आया था, उसे वह सब सच्चा होता दिखाई दिया। उसने मन में सोचा कि जमना ने मेरी सभी करतूतों का भांडा, खासकर इस चोरी का, शान्ति के आगे फोड़ दिया है। इसीलिए वह जांच-पड़ताल करने के लिए आई है। परन्तु अब जबकि शान्ति उसकी पहुंच में थी, उसे न तो किसी बात की चिन्ता थी और न ही भय।

एक बार तो उपरोक्त बातें सोचकर, वह कांपने लगा, परन्तु पापी के कठोर हृदय पर इस थोड़ी-सी कंपन का क्या असर होना था, उसका दुराचारी मन पहले से भी अधिक दिलेर हो उठा। एक सफलता पर इस दूसरी सफलता का दरवाजा खुला देखकर उसे बेहद खुशी हुई। उसको मुंह मांगा फल मिला। धन भी और शान्ति भी। धन को तो वह घर के एक कोने में पचा गया था, परन्तु शान्ति जैसी पवित्र वस्तु को पचाने या छिपाने के लिए उसके पास कोई स्थान न था। उसका काला हृदय इस रत्न-प्रभा को पहचानने में असमर्थ था।

इतना कुछ होने पर भी गोपालसिंह को अपना हृदय डूबता हुआ-सा लगा। वह शान्ति की सुन्दरता को एक नजर भरकर देखना चाहता था, परन्तु देख न सका। शान्ति के मुरझाए हुए कमल पर पवित्रता कि इतनी तेज दमक थी कि गोपालसिंह की आंखें उस ओर देख सकने में असमर्थ थीं। वह हिमालय की बर्फीली चोटी को छूकर ठंडक प्राप्त करना चाहता था, परन्तु उसको अपने भीतर की आग ही इतनी गर्मी पहुंचा रही थी कि उसे हिमालय की चोटी भी ज्वालामुखी लगने लगी, जिसकी ठंडक को आग समझकर उसे भय लगने लगा।

शान्ति एक कुर्सी पर बैठ गई। दुःखी हृदय तब पानी बनकर बहने लगता है, जब वह किसी दुःख बटवाने वाले साथी हृदय को पा लेता है। इस समय शान्ति को भी कुछ ऐसी ही दशा थी। गोपालसिंह, इस समय उसे अपनी डूबती हुई नाव का खेवट प्रतीत हुआ।

वह बैठते ही यह वाक्य कहते हुए, "भाई साहिब! मुझे बचा लो" चीख-चीखकर रो पड़ी और नेत्रों के साथ उठकर उसने गोपालसिंह के पांव पकड़ लिए।

गोपालसिंह की आंखों के सम्मुख उसका अपना पाप नाचने लगा। उसने शान्ति की इस पुकार का अर्थ यह समझा कि शान्ति मुझे कह रही है—मेरे गहनें, जो तूने लूटे हैं, मुझे लौटा दे। परन्तु वेचारी शान्ति को अभी तक उसके पाप-कर्म की खवर तक न थी।

उसकी आंखें इस समय अपने पांवों में चन्दन के पेड़ की डाली लिपटी हुई देख रही थीं, परन्तु हृदय पर लिपटी हुई थी दुराचार की नागनी।

शान्ति के हाथों के स्पर्श ने गोपालसिंह के शरीर में पांव से सिर तक विजली के करंट के समान झनझनाहट-सी पैदा कर दी, ऐसी झनझनाहट—जो जीवन में पहला पाप करते समय किसीके शरीर में होती है। शान्ति का आंसुओं से गीला चेहरा, मासूम आंखें और उसका केवल एक ही हृदय की अन्तिम सतह तक पहुंचने वाला वाक्य, गोपालसिंह के हृदय को चीरकर पार हो गया। उसका हृदय दहल उठा, उसके पहलू में हृदय तड़पने लगा। उसकी पर्वत के समान पाप-शक्ति दव गई—शान्ति के कोमल और दुःखी भावों के वोझ के नीचे। उसके शरीर का अंग-अंग कांप रहा था। उसके भीतर पाप और धर्म में युद्ध छिड़ गया था—घोर युद्ध।

जव उसने शान्ति को दोनों वांहों से पकड़कर उठाया तो उसके हाथ-पांव गीले थे। हाथ पाप के पसीने से और पांव शान्ति के आंसुओं से।

इसके साथ ही कुछ वाक्य भीतर से उमड़कर उसके गले तक पहुंचे। गोपालसिंह इन वाक्यों को जवान तक पहुंचने से पूर्व ही पीछे को मोड़ देना चाहता था, परन्तु वह अपने-आप ही उसकी इच्छा के प्रतिकूल उसके मुंह से निकल गए, "वीवीजी ! मुझे क्षमा कर दो, मैंने वहुत वड़ा पाप किया है।"

पाप किया है ? गोपालसिंह जैसा नेक आदमी और फिर पाप ? यह असम्भव है, शान्ति के हृदय में से आवाज आई। परन्तु वह तुरन्त ही इसका अर्थ कुछ और समझ वैठी। दरवाजे में प्रवेश करते ही उसे गोपालसिंह से शराव की वदवू आई थी, परन्तु उसके लिए यह कोई अनोखी वात न थी, क्योंकि ऐसी वदवू को सहन करने की वह तो आदी

हो चुकी थी और इस पाप को क्षमा कर देने की उसकी आदत बन चुकी थी। कौन-सी रात थी जब उसका पति ऐसी बदबू को लेकर घर नहीं आता।

शान्ति ने गोपालसिंह का यही पाप समझा और इस पाप को साधारण समझते हुए वह बोली, "कोई बात नहीं भाई साहिब ! मुझे इस बात से कोई दुःख नहीं।" कहते हुए शान्ति सोफे पर बैठ गई।

'हैं ! क्या शान्ति मेरे इतने बड़े गुनाह को भी क्षमा कर सकती है ? एक चोरी, दूसरा विश्वासघात ! इसपर भी कहती है मुझे कोई दुःख नहीं ! क्या मैं अपने सामने सचमुच किसी देवी को देख रहा हूं ?'

वह यह सोच ही रहा था कि शान्ति जिस बात को लेकर आई थी, उसे प्रकट करने के लिए हाथ जोड़कर बोली। बोलते हुए उसकी आवाज़ कांप रही थी और होठों पर इकट्ठे हुए आंसुओं की बूंदें, उनकी कंपन से हिल उठते थे। वह बोली, "भाई साहिब ! मुझ दुःखी की रक्षा करो। मेरे हाल पर रहम करो। मेरा लुटा हुआ गहना यदि वापिस न आया तो उनकी जान खतरे में पड़ जाएगी। मेरे भैय्या ! मैं क्या करूं, वह पागल हो जाएंगे या कुछ खाकर···वह परसों के घर नहीं आए।" इससे आगे कुछ कह सकने में ज़बान ने उसका साथ न दिया, परन्तु हिचकियों ने कमी को पूरा कर दिया।

गोपालसिंह का हृदय, जिसपर ऐसी चीखों का कभी कोई असर नहीं हुआ था, आज शान्ति के दुःखों से परोए हुए इन वाक्यों को सुनकर फटने को हो आया। गोपालसिंह इस समय कहां है, क्या कर रहा है, किसके सामने खड़ा है ? क्षण-भर के लिए वह सबकुछ भूल गया। वह किसी अदृश्य शक्ति का मारा हुआ सोफे पर जा गिरा—शान्ति के साथ।

"बहन ! रो नहीं ! मैं तेरा हरएक कहा मानने को तैयार हूं।" कहते हुए गोपालसिंह ने अपनी कांपती हुई अंगुलियों से शान्ति के आंसुओं को पोंछा।

'क्या गोपालसिंह मेरी सहायता करेगा ? मेरे खोए हुए गहनें और मेरे पति को ढूंढने में मेरी सहायता करेगा ? आह ! इतनी कृपा ! लज्जा की रक्षा करनेवाला क्या ऐसा दूसरा कोई व्यक्ति संसार में होगा ?

शायद मेरा सगा भाई भी इससे अधिक न कर सकता।' यह सोचते-सोचते शान्ति थोड़ी देर के लिए अपने दुःखों को भूल गई। वह भूल गई कि उसके साथ गोपालसिंह बैठा है या मोहन। वह गोपालसिंह की गोदी में गिरकर अपने आंसुओं से उसकी कमीज़ को तर करने लगी।

चन्दन की खुशबू से आस-पास के झाड़ भी चन्दन बन जाते हैं। इस बात का अनुभव आज गोपालसिंह को जीवन में पहली बार हुआ। जिस शान्ति के स्पर्श के लिए उसका अंग-अंग बेचैन था, शान्ति का वही शरीर इस समय उसकी गोद में था, परन्तु इस स्पर्श से जिस तरह के लम्पट सुख की कल्पना वह कई दिनों से करता आ रहा था, इस समय हालत उससे कुछ उलट थी। आग की लपटें उठने की बजाए, उसके रक्त में एक अजीब किस्म की हलचल थी, उसके अंग-अंग में एक मज़ा था, परन्तु कोई स्वर्गीय आनन्द—मधुरता और पवित्रता से भरपूर आनन्द।

बहनों के साथ भाईयों का कैसा प्यार होता है, बहन विहीन गोपालसिंह उससे बेखबर था, परन्तु आज वह जीवन की इस कमी की पूर्ति का अनुभव कर रहा था। उसने शान्ति के सिर पर प्यार से हाथ फेरा—भाईयों के प्यार का, और उसे उठाकर बैठा दिया।

'उदारता नहीं, उदारता की भी एक सीमा होती है! आह! क्या इतनी उदारता एक मनुष्य में हो सकती है? अपने चोर के साथ, केवल चोर ही नहीं, एक विश्वासघाती और दुराचारी के साथ यह उदारता।' गोपालसिंह इस समय इस बात पर सोच रहा था। उसको पूरा विश्वास था कि शान्ति को जमना से मालूम हो गया है कि उसका गहन उसीने ठगा है, बेशक शान्ति इस ओर से पूरी तरह बेखबर थी। शान्ति जब कमरे में आई थी तो गोपालसिंह का विचार था कि आते ही उ बेचारी दुःखी का क्रोध उसपर बरस पड़ेगा। बातों और तानों से शान्ति उसका जीना कठिन कर देगी, परन्तु इस समय जो उसके साथ बीत वह बिलकुल ही उलट थी।

उसने जब इस एकान्त में शान्ति को देखा था तो उसके हृदय में विषैली वासनाओं की लहरें उठी थीं। उसने सोचा था कि अब मुट्ठी आई हुई शान्ति उससे बचकर कहां जा सकती है, परन्तु जो कुछ हु वह था उसके पहली भावनाओं के बिलकुल उलट।

गोपालसिंह अपने पाप के बोझ को और न सहार सका, परन्तु अभी भी अपनी आत्मा को नंगा करके शान्ति को दिखा पाने में वह असमर्थ था। वह शान्ति की निगाहों से वही कुछ बने रहना चाहता था, जो कि शान्ति ने उसे समझा था। अपनी नीच आत्मा को दिखाकर शान्ति का तिरस्कार सह सकने की उसमें शक्ति न थी। वह शान्ति के पैरों तक झुक गया और भर्राई हुई आवाज़ में कहने लगा, "बहन! कल दिन निकलने से पूर्व ही तेरा सारा गहना तेरे पास पहुंच जाएगा।"

धन्यवाद के भावों से शान्ति का हृदय गद्गद् हो उठा। उसका रोम-रोम, ज़बान बनकर पुकारने लगा—कितना बड़ा देवता, उपकार का फरिश्ता, बलिदानी का पुंज, धर्म का अवतार। शान्ति के मुंह से केवल इतना ही निकल सका, "भैय्या, तुम्हारे जैसा महापुरुष मैंने आज तक नहीं देखा और न ही बहन सरनकौर जैसी देखी। कितना भाग्यशाली जोड़ा है। परन्तु मुझे गहनों की इतनी ज़रूरत नहीं, जितनी मुझे अपने सिरताज की है।"

गोपालसिंह के लिए ऐसी बातें सुन पाना असहाय था। शान्ति की बात पूरी भी नहीं हुई थी कि वह सिर को झुकाए हुए बाहर निकल गया, जमना से गुलूबन्द लेने के लिए और प्रेम को ढूंढने के लिए। शान्ति वहां बैठी ही रह गई।

४१

गोपालसिंह के चले जाने के पश्चात् शान्ति काफी देर तक बैठी रही, परन्तु गोपालसिंह वापस नहीं आया। वह बैठी हुई सोच रही थी, 'गोपालसिंह इस तरह बिना कुछ कहे क्यों चला गया, कहां चला गया, सारे गहने बहने वह मुझे सुबह तक लौटा देगा, परन्तु कहां से? क्या वह जानता है कि मेरे गहने कहां पर हैं? शायद इस समय वह जमना के मकान पर ही गया होगा, क्योंकि उसको विश्वास हो चुका है कि गहने जमना के अतिरिक्त और किसी के पास नहीं। परन्तु क्रोध में आकर कोई गलत काम न कर बैठे, जमना को हानि पहुंचाकर कहीं स्वयं क्षति-

नाई में न फंस जाए। आह! कितना परोपकारी स्वभाव है, इस पुरुष का।' वह और भी काफी देर तक ऐसी बातें सोचती हुई गोपालसिंह की प्रतीक्षा करती रही, परन्तु वह न आया।

उसका स्वास्थ्य ठीक न था, वह और भी बिगड़ने लगा। दुःखों और चिन्ताओं के कारण से उसे परसों से बुखार हो आया था। इसके अलावा उसके पेट में भी असहाय पीड़ा हो रही थी, उसे अपनी बीमारी की ओर ध्यान देने की भी फुर्सत न थी।

इस समय उसके शरीर का कष्ट इतना बढ़ गया कि उसके लिए और अधिक देर तक बैठे रहना असम्भव हो गया। विशेषकर उसके पेट का बोझा नीचे की ओर झुकता जा रहा था, उसकी पीड़ा और घबराहट बढ़ती ही जा रही थी। पिछले कई दिनों से इस बारे में उसके हृदय में एक शंका ने घर कर लिया था। तीन-चार मास से उसके हृदय में जो एक नई उमंग पैदा हो रही थी, उस उमंग का बीच में ही अंत होता देखकर शान्ति की आशा निराशा में बदलने लगी कि शायद अभी उसके भाग्य में मां बनना नहीं है, बल्कि इस समय उसे अपनी जान भी खतरे में लगने लगी।

उससे और न बैठा गया। बुखार काफी बढ़ गया था और पीड़ा तो इतनी थी कि वह सीधी खड़ी भी नहीं हो सकती थी।

पहले तो उसने सोचा कि वह वहीं लेट जाए, परन्तु फिर उसे विचार आया कि जैसे-तैसे उसे घर पहुंचना ही चाहिए। क्या पता आनेवाला समय उसके लिए कैसा हो? क्या पता डाक्टर की आवश्यकता पड़े या नर्स की। इसके अतिरिक्त पति के बारे में उसे कोई कम चिन्ता न थी।

आखिर वह उठी, डगमगाते और गिरते हुए उसने घर के द्वार बन्द किए, बिना ताला लगाए ही वह अपने घर की ओर चल पड़ी।

उसने सोचा था कि वह घर तक पहुंच नहीं पाएगी, रास्ते में ही न जाने कहां गिर जाए, परन्तु वह किसी न किसी तरह घर पहुंच गई।

घर पहुंचकर जब उसने आधा मिनट के लिए पति के आने की बात सुनी, तो वह जहां थी वहीं की वहीं बैठ गई। उसकी सास तो होश में

ही नहीं थी कि प्रेम कब आया और कब चला गया। यह सारी बात उसे पड़ौसिनों ने बताई थी या फिर नौकर ने।

घर के निचले भाग में प्रातःकाल से ही जो चहल-पहल हो रही थी, उसकी उसे तनिक भी खबर न थी, और न ही लड़कियों के गाने-बजाने की। यह यह भी नहीं जानती थी कि आज किस समय सुशीला की बारात आई है या आनी है। हां, उसे इतना अवश्य पता था कि कचहरी के दो कर्मचारी कई सेठों के साथ आए थे और निचले किराएदारों को डरा-धमका रहे थे कि आज से किराए का एक पैसा भी मालिक को न दिया जाए, जब तक कचहरी का इस बारे में अन्तिम फैसला न हो जाए।

नौकर ने जब यह बताया कि बाबूजी ने अन्दर जाकर पेटी खोली थी, तो शान्ति जल्दी से भीतर गई। पेटी में पहले ही शेष कुछ न था, परन्तु जो भयानक वस्तु बची थी वह भी इस बार न थी—वही रिवाल्वर। उसको समझने में देरी न लगी कि यह रिवाल्वर किसलिए गया है। बस, पति की जीवन-यात्रा समाप्त हो गई, मस्तिष्क में इस विचार का आना था कि शान्ति के हाथ-पांव अकड़ गए।

आजतक तो वह अपने दु खी और डूबते हुए हृदय को किसी तरह सम्भाले आ रही थी, परन्तु यह देखकर तो उसके धैर्य की अन्तिम कड़ी भी टूट कर गिर गई और इसके साथ ही शान्ति वहीं मुंह के बल धड़ाम से गिर पड़ी। उसका सिर पेटी के किनारे से टकराकर फट गया और शान्ति आंसुओं की बजाए खून बहाने लगी।

सारे मकान में हलचल मच गई। पड़ौसिनों ने उसे आ सम्भाला। मेंहदी से रंगी सुशीला भी सुनकर तड़प उठी। शान्ति को जख्मी और बेहोशी की हालत में उठाकर चारपाई पर लिटाया गया।

शान्ति की चारपाई के चारों ओर झुरमुट बन गया। सिर का जख्म खतरनाक था और पेट की हालत उससे भी खतरनाक।

सारे घर में मातम छा गया, जिसके असर से निचले घर की विवाह की चहल-पहल की गति भी तनिक धीमी हो गई। उसी समय नर्स को बुलावाया गया।

सिर के जख्म पर टांके लगाने के लिए किसी स

क्योंकि पेटी के कोने ने मांस को चीरकर हड्डी तक असर किया था। परन्तु इसके लिए अधिक भाग-दौड़ नहीं करनी पड़ी। निचले भाग में बारात आई हुई थी, जिसका दूल्हा एक निपुण और लायक डाक्टर था, और वह था भी उपकार का देवता। इसका नाम था—सुन्दरदास, वही धर्मशाला वाला सुन्दरदास। उसने इस काम का भार अपने पर ले लिया।

घर की इस समय दशा कहने-सुनने के बाहर थी। एक ओर सास बेहोश पड़ी थी और दूसरी ओर बहू, तथा घर का मालिक कहां है? इसका किसीको भी पता नहीं था।

ठीक इसी समय जबकि सारा घर मातम की सराए बना हुआ था, मोहन और सरला का आगमन हुआ। घर की दशा, विशेषकर अपनी इकलौती और लाड़ली बहन की हालत देखकर, मोहन दिल पर हाथ रखकर बैठ गया। सरला बच्चे को नीचे उतारती हुई नदी की मुंडेर की तरह शान्ति की चारपाई पर जा गिरी और अपने आंसुओं से बेहोश शान्ति के चेहरे को धोने लगी।

४२

कल जिस समय से जमना गोपालसिंह को मिलने के पश्चात आई है, उसका मन बड़ा परेशान है। सारी रात उसने लम्बे-चौड़े हिसाब-किताब गिनते हुए आंखों में बिता दी। शान्ति के दर्द भरे वाक्यों की गूंज उसके कानों का पीछा ही नहीं छोड़ती थी। उसको अपना पापी-जीवन आज बोझिल लग रहा है। आज भूखे-प्यासे रहकर ही उसने सुबह से रात कर दी है। उसको कुछ भी अच्छा नहीं लग रहा।

जिस प्रकार लम्बे सूखे के पश्चात वर्षा होने पर तपी हुई धरती भड़ास छोड़ती है, उसी तरह जमना के इस दुराचारी जीवन पर किसी देवी की पवित्र आत्मा की चमक पड़ी और पड़ते ही उसके सारे पाप कांप उठे। इस कम्पन ने उसके भीतर एक भूकम्प-सा ला दिया, उसका फौलादी हृदय पिघलकर बह निकला। यह बहाव कोई साधारण बहाव

न था, ज्वालामुखी पहाड़ के फटने से जिस प्रकार उसका लावा कयामत ले आता है, उसी तरह उसका बहता हुआ दिल उसके वेश्या-जीवन के रंगीन संसार के लिए कयामत ले आया।

वह आज प्रात:काल से ही बार-बार यही सोच रही है—'आह! शान्ति मुझे कितनी पवित्र कितनी सुशील और परोपकार की मूर्ति समझ रही है, परन्तु मैं क्या हूं? पाप और दुराचार की मूर्ति। राक्षस तो मनुष्यों का रक्त पीते हैं, परन्तु मैं राक्षसों और मनुष्यों दोनों का रक्त पीने वाली एक जोंक हूं। मैं परले दर्जे की खोटी और महा नीच हूं। मैं सब कुछ हूं, सारे पाप कर सकती हूं, परन्तु शान्ति जैसी देव-कन्या को और धोखा देना, उसके साथ विश्वासघात करना अब मेरी हिम्मत से बाहर है। बस मैं अभी जाकर उसके पांव पकड़ लूंगी और अपने असली रूप में उसके सामने जाऊंगी। क्या हुआ यदि वह मेरा तिरस्कार करेगी तो। उसका तिरस्कार भी मेरे लिए वरदान होगा। उसकी घृणा-दृष्टि से मेरे पाप जल जाएंगे, मेरी आत्मा की मैल उतर जाएगी। काश! कुछ समय पहले ही कोई ऐसी देवी मुझे मिल जाती तो मेरे जीवन का इतना बड़ा भाग, जिसे मैं आज पाप की गन्दगी में गला चुकी हूं, बच जाता।

'शान्ति दुःखी है, बेआसरा और अत्याचारियों का निशाना है, परन्तु फिर भी उसके चेहरे पर कुछ है, कोई ऐसी चुम्बकीय-शक्ति, कोई ऐसा जादू, जिसके प्रभाव से पत्थर भी नहीं बच सकते। शायद इसीको पवित्रता की झलक कहते हैं। बस मैं अपना तन, मन, धन शान्ति के चरणों पर न्यौछावर कर दूंगी और इसके बदले उससे केवल एक ही चीज मांगूंगी—क्षमा का दान! परन्तु इतना बड़ा दान मांगूंगी किस तरह, जब तक कि इस नीच कर्म से पीछा नहीं छुड़ा लेती। हां, मैं सब कुछ करूंगी, मैं छोड़ दूंगी इस दुराचार को और मेहनत-मजदूरी करके अपना पेट पालूंगी तथा इस पापी शरीर को दुनिया की सेवा करने में लगाकर अपना प्रायश्चित करूंगी। परन्तु जब शान्ति को मालूम होगा कि उसके पति को, उसके धन को उसके सारे सुखों को बरबाद करने वाली मैं ही पापिन हूं तो क्या वह मुझे क्षमा कर सकेगी? नहीं, कभी नहीं करेगी। यह इतना बड़ा पाप है जिसके लिए 'क्षमा' का शब्द बना

ही नहीं होगा।

'परन्तु मुझे कोशिश तो करनी चाहिए। यदि उसने मुझे क्षमा न भी किया तो कम से कम मेरे मन का कुछ भार तो हलका होगा। हां, सबसे पूर्व मुझे वह सारा धन शान्ति को लौटा देना चाहिए जो आज तक प्रेम से मुझे मिला है। इसके साथ-साथ चाहे कुछ भी करना पड़े, गोपालसिंह से भी शान्ति के गहनें वापिस दिलवाने चाहिएं, जो शायद अभी सारे के सारे उसीके पास होंगे—साथियों में अभी उसने नहीं बांटे होंगे। मैं जानती हूं कि चोरी करने के पश्चात चोर उस माल को कुछ समय के लिए छिपा दिया करते हैं, जब मामला ठंडा हो जाए तब उसका बंटवारा या उसे बेचते हैं। परन्तु गोपालसिंह जैसा चालबाज व्यक्ति भला कब माननेवाला है, क्या वह हजारों रुपये के माल को लौटा देगा। नहीं मानेगा तो कोई और चाल खेलूंगी, परन्तु इससे पूर्व मुझे स्वयं ही आदर्श स्थापित करना होगा।'

ऐसा सोचती हुई वह उठी, और भीतर जाकर बक्सों को उलट-पलट करने लगी। नकली गहनें वाले डिब्बे को तो उसने रहने दिया और शेष सब कुछ निकालना शुरू कर दिया। गोपालसिंह का दिया हुआ गुलूबन्द और प्रेम वाला हार उसने अलग कर लिया और शेष को अलग। इसके पश्चात वह सब कुछ लेकर बाहर ले आई।

तकिए से पीठ टिकाकर उसने सभी गहनों को अपने आगे ढेरी लगा ली और उनमें से एक-एक को उठाकर और उनकी जांच-पड़ताल करके उन्हें अलग रखने लगी। इस ओर से फुर्सत पाकर उसने नकदी वाला डिब्बा उलटा जिसमें अधिकतर नोट ही थे।

अचानक ही गोपालसिंह दरवाज़े में से भीतर झांका।

जमना के चारों ओर माया की ढेरियां लगी देखकर वह आश्चर्य से देखता हुआ भीतर चला आया।

उसको देखते ही पहले तो जमना डर गई परन्तु तुरन्त ही सम्भल गई और उसको अपने पास बैठाकर पूछने लगी, "मैंने तो मनोहरी के द्वारा कहलवा भेजा था कि मैं अपने-आप घण्टे भर तक आ जाऊंगी, फिर तू क्यों दौड़ा आया है?"

उसके प्रश्न का जवाब न देकर गोपालसिंह बोला, "आज तो बहुत

बड़ा हिसाब-किताब हो रहा है···।" बात करते-करते वह रुक गया, जब अचानक ही उसकी निगाह एक चीज़ पर पड़ी। यह रानी-हार था, जो प्रेम के विवाह पर उसीने बनवाया था और जिसके बारे में वह परसों से सोच रहा था कि प्रेम से लूटे गए माल में से वह क्यों नहीं निकला। इसको जमना के पास देखकर उसकी हैरानी का कोई ठिकाना न रहा।

जमना ने उसके भावों को पढ़ लिया, परन्तु इसकी चिन्ता किए बिना वह हार की बात कहने के लिए बोली, "यूंही एक चीज़ नहीं मिल रही थी।"

"कौन-सी ?"

"यह" जमना ने हार को हाथ में उठाकर कहा।

गोपालसिंह बोला, "यह तो···यह तो, अगर मैं गलती पर नहीं तो शान्ति का लगता है।"

"उसीका ही है" जमना ने नोटों की गड्डियां गिनते हुए कहा।

गोपालसिंह पूछने लगा, "और यह तेरे पास कैसे आ गया ?"

वह बोली, "जैसे तेरे पास इसके साथ के सारे गहने आ गए हैं।"

गोपालसिंह ने कोई जवाब न दिया। जमना का विचार था कि हार को देखते ही वह आगबबूला हो उठेगा, परन्तु आम दिनों से उलट आज गोपालसिंह गम्भीरता का अवतार बना हुआ था। जमना को भी आज इस भेद के खुलने का डर न था, जैसाकि पहले इसका विचार आते ही उसे भय लगने लगता था।

जमना ने यह जानने के लिए कि हार को देखकर और फिर इसकी प्राप्ति सम्बन्धी करारा जवाब सुनकर गोपालसिंह के क्रोध का पारा कितनी डिग्री तक पहुंचा है, उसने उसकी ओर देखा। परन्तु उसके चेहरे पर न तो गुस्सा और न ही कोई लोभ-लालच का चिह्न था, बल्कि वह स्थिर और शान्त था।

यह स्थिरता और शान्ति आज जमना ने पहली बार उसके चेहरे पर देखी थी। वह बोली, "आज तो बड़ा भारी साधु बना हुआ है क्या बात है ?"

उसी तरह गम्भीरता से वह बोला, "तभी तो तेरे पास ि मांगने आया हूं।"

"भिक्षा ?" जमना ने आश्चर्य से उसकी ओर देखकर कहा, "कैसी भिक्षा ?"

जमना ने सोचा था कि शायद गोपालसिंह हार को देखकर उसे सहन नहीं कर सका, इसीलिए उसे भिक्षा के रूप में छीनना चाहता है। परन्तु उसकी हैरानी दुगनी हो गई जब गोपालसिंह ने एक की बजाए दो चीज़ें मांग लीं। हार और गुलूबन्द की ओर बारी-बारी से अंगुली करके वह बोला, "यह दोनों चीज़ें।"

जमना सोचने लगी—'यह खूब रही कि वह फिर नाक कटवाने को और वह फिर नथ बनवाने को।' मैं तो इससे बाकी के गहने लेकर शान्ति को देने की सोच रही थी, परन्तु यह पहले से मुंह खोले बैठा है। उसने तनिक क्रोध के साथ कहा, "क्या कहा है तूने ?"

"बस यह दोनों वस्तुएं मुझे दे दे, बदले में जो तेरे मन में आए मांग ले।"

"पर क्यों ? एक चीज़ देकर मन को चैन नहीं आया इसलिए अब बदले में दो मांगता है, मैं तो तुझे आज कुछ और कहना चाहती थी, और तू······।"

"क्या कहना था तूने ?"

"मैं स्वयं आज तेरे से दान मांगना चाहती थी।"

"दान ? तू जो मांगे मैं तैयार हूं।"

"सच्चे हृदय से कहता है ?"

"हां, सच्चे हृदय से।" परन्तु मन में वह सोचने लगा कि कहीं शान्ति के गहनों में से, जिन्हें वह लौटाने का निर्णय कर चुका है, न मांग ले।

जमना कहने लगी, "तू कहां मानने वाला है।"

गोपालसिंह दृढ़ता के साथ बोला, "जमना ! यदि तू मुझे यह दोनों वस्तुएं दे दे तो इनके बदले तू जो कुछ भी मांगेगी, मैं तुझे दूंगा। मेरे प्राण भी मांगेगी तो उससे भी पीछे नहीं हटूंगा।"

जमना बोली, "यदि इसके बदले मैं कहूं कि प्रेम वाले सारे गहनें मुझे दे दे, तब ?"

गोपालसिंह दुविधा में फंस गया। यह तो उसके लिए वही हुआ

जैसे किसी नहरी आफिसर को जाट कहे कि मेरे खेतों को पानी लगवा दे और बदले में जो मांगेगा दे दूंगा, फिर आगे से वह कहे कि पानी तो मैं लगवा दूंगा, पर अगर तू बदले में सारे खेत मेरे को दे देवे।

गोपालसिंह को जैसे सांप सूंघ गया हो। जमना फिर बोली, "देख गोपाल मियां, मेरे को जो इच्छा हो कसम उठाने को कह, मैं उठा लूंगी, मैं अपने लिए तेरे से कुछ नहीं मांग रही।"

"तो फिर किसके लिए मांगती है?"

अपने आगे बिखरे हुए सोने और नोटों की ओर देखकर जमना बोली, "जिसके लिए यह सब कुछ है।"

"शान्ति के लिए?"

"हां।"

"सच्च?"

"अभी देख लेना। सब कुछ लेकर उसीकी ओर जा रही थी।"

सुनकर गोपालसिंह का हृदय प्रसन्न हो उठा। वह सोचने लगा, 'भगवान का शुक्र है जमना भी उसी रास्ते पर चल रही है, जिसपर मैं। और उसने विश्वास जमाने के लिए पूछा, "तू अपना भी सब कुछ उसको दे देगी।"

उसी तरह माल को बखेरे और उसके बीचो-बीच बैठी हुई जमना बोली, "यदि स्वीकार कर लेगी तो अपने-आपको भाग्यशाली समझूंगी। परन्तु गोपालमियां! तू बता तुझे उसपर तनिक भी दया न आई? तेरा हृदय कितना कठोर है। अगर तू कल एक बार भी उसकी हालत देख लेता तो तेरी दशा भी बिलकुल मेरे समान हो जाती। निर्दयी! तूने उसके पास छोड़ा ही क्या था? बेचारी हर तरफ से तो बरबाद हो चुकी थी। पति परसों का अलग से उसका लापता है। घर बेचारी का वैसे ही कुड़क हो गया है। चार गहने यदि बेचारी के पास रहने देता तो क्या था। उसे बेचकर बेचारी कुछ भार तो हलका कर लेती। तुझे दया न आई उसे लूटते हुए? गोपालमियां मैं तेरे पैरों पड़ती हूं जैसे भी हो उसके गहने लौटा दे। आ, भगवान से डरें। जीने के लिए भी ऐसे अत्याचार क्या करने हुए? हमें क्या मरना नहीं? गोपालमियां! तुझे भगवान को……।"

कहते-कहते जमना उसके पैरों में गिर पड़ी।

गोपालसिंह को जैसे काठ मार गया। उसकी आंखें तर और गल खुश्क था।

जमना को उसने पैरों से ऊपर उठाया।

अपने शब्दों का प्रभाव देखने के लिए जमना ने उसके चेहरे की ओर देखा। गोपालसिंह की निगाहें फर्श की ओर झुकी हुई थीं। वह बोला, "जानती है जमना! इस समय मैं तेरे पास किसलिए आया हूं?"

"शान्ति की बची-खुची सम्पति को नष्ट करने के लिए कोई नया हथकंडा बनाने के लिए आया होगा, और किसलिए।"

"नहीं जमना, तू गल्ती पर है। शान्ति को मैं अपने मकान पर छोड़कर आ रहा हूं, वह तुझे ढूंढ़ने आई थी।"

"हैं!" जमना ने सहमी हुई आवाज़ से पूछा, "शान्ति आई थी?" और इसके साथ ही उसका हृदय धड़कने लगा—न मालूम इस शैतान ने उस देवी के साथ कैसा व्यवहार किया होगा, ऐसा सोचकर वह बोली "फिर?"

"फिर क्या बताऊं?"

जमना का डर बढ़ गया, पूछने लगी, "क्या कहती थी?"

इसके जवाब में गोपालसिंह ने उसे सबकुछ बता दिया और जिसके लिए वह वहां आया था, वह भी।

सुनकर जमना की खुशी की कोई सीमा न रही। उसने आज पहली बार स्नेह से गोपालसिंह की ओर देखा। गोपालसिंह को ही क्यों, आज तक उसने किसी मनुष्य को भी प्यार नहीं किया था, प्यार के नाटक चाहे वह अनगिनत खेल चुकी थी। वास्तव में यह उसके जीवन में पहला अवसर था, जब उसने किसी पुरुष को असली और सच्चे प्यार की भावना से देखा।

वह गोपालसिंह का हाथ पकड़कर झूमती हुई बोली, "गोपाल मियां! तू इतना अच्छा है, इतना सुन्दर है, मुझे पता नहीं था।"

इस हृदय में से निकली प्रशंसा ने गोपालसिंह को वह खुशी प्रदान की जो उसे पांच मन सोना भी नहीं दे सकता था। उसने कहा, "जमना!

चल अभी चलकर उसके गहने लौटा दें।"

दोनों हाथों से सबकुछ गोपालसिंह की ओर धकेलती हुई जमना बोली, "ले फिर इसको सम्भाल।"

शक क्या होता है ? केवल दिलों को लगे हुए स्वार्थरूपी ग्रहण की एक परछाई मात्र। परन्तु जो हृदय इस ग्रहण से छुटकारा पा जाते हैं, उनके निकट फिर यह परछाई ठहर ही नहीं पाती। इस समय यह दोनों हृदय स्वार्थ-रहित थे। यही कारण है कि हजारों का माल देते समय जमना को गोपालसिंह की नीयत पर तनिक भी शक नहीं हुआ।

जिन आंखों में से दुराचार और स्वार्थ का मोती-बिन्दू उतर जाता है, उनको फिर हर कहीं रोशनी ही दिखाई देती है। गोपालसिंह को जमना आज बदली हुई-सी लगती थी। शायद शान्ति से छू जाने पर उसमें यह परिवर्तन आया था, इसीलिए गोपालसिंह के हृदय में जमना के प्रति एक अजीब किस्म का अनुराग पैदा हो गया।

अपने हृदय को किसी भविष्य की उमंग से भरा हुआ पाकर गोपालसिंह बोला, "जमना ! और तू अपने गुजारे के लिए कुछ न रखेगी ?"

खुशी भरी मुस्कराहट को होठों पर लाकर जमना बोली, "अपने गुजारे का तरीका, मैं कोई और खोजूंगी।"

"क्या ?"

"अभी पता नहीं। शान्ति जैसा कहेगी।"

"और जमना ! मैं भी इस गन्दे जीवन से तंग आ गया हूं।"

"मैं भी तुझे कहनेवाली थी।"

"अच्छा जमना ! आज से मैंने भी सब कुछ छोड़ा।"

सुनते ही जमना का हृदय खुशी से नाच उठा। उसके हृदय में कोई सूक्ष्म-सी लालसा जागी। गोपालसिंह के आगे उसे प्रकट करने के लिए उसने मुंह खोला ही था कि गोपालसिंह बोल उठा, "जमना ! शान्ति कितनी भोली है ! वह सचमुच ही हमें पति-पत्नी समझ रही है। बेचारी को क्या पता कि हम उसके साथ कैसा छल-कपट खेल रहे थे।"

एक गहरी सांस भरकर जमना बोली, "फिर हमें बड़े नेक और हमदर्दी भी समझती है।"

"परन्तु हम वास्तव में क्या हैं जमना ?"

"बहुरूपिए और मक्कार।"

"फिर जब हमारे झूठ का भांडा फूटेगा, तो हमारे बारे में वह क्या सोचेगी ?"

"घृणा करेगी। हमारी शकल भी नहीं देखना चाहेगी।"

"कितना अच्छा होता जमना, अगर हम वहीं होते जो वह हमें सोच रही है।"

"इतने अच्छे कर्म भी किए होते तब न।"

"क्या तेरे विचार में कर्मों का फल बदल नहीं सकता ?"

"बदल क्यों नहीं सकता—बदल सकता है।"

"कैसे ?"

"प्रायश्चित्त करने से।"

अपने आगे बिखरे हुए वन की ओर देखकर जमना बोली, "यह सबकुछ प्रायश्चित्त के लिए ही तो कर रही हूं।"

उत्साह और जोश के साथ गोपालसिंह का हृदय उछलने लगा। उसकी आंखों में एक अनोखी चमक थी। हृदय के बढ़ते हुए उल्लास को वह रोकते हुए बोला, "मैं भी ऐसा ही करूंगा। चल, जमना जल्दी चल, मेरा हृदय और अधिक नहीं रुक सकता।"

जमना सबकुछ इकट्ठा करके बांधते हुए बोली, "अभी ?"

"हां अभी।"

"कहां ?"

"मेरे घर।"

"तू भी मेरी तरह···?"

उसकी बात को काटकर गोपालसिंह बोला, "तेरी तरह सब कुछ—अपना भी और शान्ति का भी लेकर उस देवी के चरणों पर रख दूंगा।"

जवाब में जमना कुछ भी न बोली। खुशी ने उसका गला बन्दकर दिया और प्यार ने उसके होंठ।

"चल, फिर चलें, रात बढ़ती जा रही है।" कहकर जमना खड़ी हो गई। कपड़े बदलने की तो आज उसे आवश्यकता ही नहीं थी। जिस समय की वह शान्ति से बिछुड़ी थी उसने बाजारू वेश-भूषा को छुआ तक

नही था ।

गोपालसिंह भी उसके पीछे-पीछे बाहर निकला और जूते पहनते हुए बोला, "जमना ! प्रायश्चित्त करने के पश्चात ?"

मुस्कराते हुए जमना बोली, "प्रायश्चित्त करने के पश्चात हम दोनों का मार्ग एक ही होगा। हम सचमुच वही हो जाएंगे जो शान्ति हमें समझ रही है। भगवान के घर से क्या कुछ नही मिल सकता।"

इस समय दोनो के हृदयों में एक जैसे भाव उपज रहे थे और दोनों के हृदय किसी भविष्य की कल्पना से धड़क रहे थे।

जमना ने मकान को ताला लगाया, हाथ वाली गठरी उसने गोपाल को थमा दी और दोनो एक-दूसरे के पीछे नीचे उतर आए।

४२

घर से रिवाल्वर लेकर प्रेम सीधा जमना के घर की ओर चल दिया। वह रास्ते में सोचता जा रहा था—'मेरे रहने के लिए संसार में कोई स्थान रह गया है ?' परन्तु हृदय में से आवाज आती, 'नही'।

जीवन का मोह कितना प्रबल होता है। संसार के किसी कोने में भी अपने लिए स्थान न पाकर, प्रेम ने इसे त्याग देने का निर्णय किया था, परन्तु जीने की लालसा अभी भी इसका पीछा नहीं छोड़ती थी। वह बाजार में से गुजर रहा था। कृष्णपक्ष की रात्रि थी, परन्तु बिजली की रोशनी से सारे रास्ते जगमगा रहे थे। आने-जाने वालों की भीड़ को वह चीरता हुआ रामबाग की ओर बढ़ रहा था और प्रत्येक मनुष्य को बड़े ध्यान और रुचि के साथ देखता जाता था, मानो फिर उसे यह चहल-पहल, यह रौनक देखने को मिले भी या नहीं। उसको हर एक के चेहरे पर मृत्यु की परछाईं दिखाई देती थी। हर एक आवाज उसे मातमखाने की आवाज सुनाई देती थी।

'क्या मैं कुछ दिन और जीवित रह सकता हूं ?' बार-बार उसके भीतर यही इच्छा जागने लगती। सोचता—मरने की बजाए इन दोनों को मार भाग जाऊं तो अच्छा होगा। परन्तु फिर विचार आता—और

"बहुरूपिए और मक्कार।"

"फिर जब हमारे झूठ का भांडा फूटेगा, तो हमारे बारे में वह क्या सोचेगी ?"

"घृणा करेगी। हमारी शकल भी नहीं देखना चाहेगी।"

"कितना अच्छा होता जमना, अगर हम वहीं होते जो वह हमें सोच रही है।"

"इतने अच्छे कर्म भी किए होते तब न।"

"क्या तेरे विचार में कर्मों का फल बदल नहीं सकता ?"

"बदल क्यों नहीं सकता—बदल सकता है।"

"कैसे ?"

"प्रायश्चित्त करने से।"

अपने आगे बिखरे हुए धन की ओर देखकर जमना बोली, "यह सबकुछ प्रायश्चित्त के लिए ही तो कर रही हूं।"

उत्साह और जोश के साथ गोपालसिंह का हृदय उछलने लगा। उसकी आंखों में एक अनोखी चमक थी। हृदय के बढ़ते हुए उल्लास को वह रोकते हुए बोला, "मैं भी ऐसा ही करूंगा। चल, जमना जल्दी चल, मेरा हृदय और अधिक नहीं रुक सकता।"

जमना सबकुछ इकट्ठा करके बांधते हुए बोली, "अभी ?"

"हां अभी।"

"कहां ?"

"मेरे घर।"

"तू भी मेरी तरह…?"

उसकी बात को काटकर गोपालसिंह बोला, "तेरी तरह सब कुछ—अपना भी और शान्ति का भी लेकर उस देवी के चरणों पर रख दूंगा।"

जवाब में जमना कुछ भी न बोली। खुशी ने उसका गला बन्दकर दिया और प्यार ने उसके होंठ।

"चल, फिर चलें, रात बढ़ती जा रही है।" कहकर जमना खड़ी हो गई। कपड़े बदलने की तो आज उसे आवश्यकता ही नहीं थी। जिस समय की वह शान्ति से बिछुड़ी थी उसने बाजारू वेश-भूषा को छुआ तक

नही था।

गोपालसिंह भी उसके पीछे-पीछे बाहर निकला और जूते पहनते हुए बोला, "जमना ! प्रायश्चित्त करने के पश्चात ?"

मुस्कराते हुए जमना बोली, "प्रायश्चित्त करने के पश्चात हम दोनों का मार्ग एक ही होगा। हम सचमुच वही हो जाएंगे जो दुनिया हमें समझ रही है। भगवान के घर से क्या कुछ नहीं मिल सकता।"

इस समय दोनों के हृदयों में एक जैसे भाव उपज रहे थे और दोनों के हृदय किसी भविष्य की कल्पना से धड़क रहे थे।

जमना ने मकान को ताला लगाया, हाथ वाली गठरी उसने गोपाल को थमा दी और दोनों एक-दूसरे के पीछे नीचे उतर आए।

४३

घर से रिवाल्वर लेकर प्रेम सीधा जमना के घर की ओर चल दिया। वह रास्ते में सोचता जा रहा था—'मेरे रहने के लिए संसार में कोई स्थान रह गया है ?' परन्तु हृदय में से आवाज़ आती, 'नहीं'।

जीवन का मोह कितना प्रबल होता है। संसार के किसी कोने में भी अपने लिए स्थान न पाकर, प्रेम ने इसे त्याग देने का निर्णय किया था, परन्तु जीने की लालसा अभी भी उसका पीछा नहीं छोड़ती थी। वह बाज़ार में से गुज़र रहा था। कृष्णपक्ष की रात्रि थी, परन्तु बिजली की रोशनी से सारे रास्ते जगमगा रहे थे। आने-जाने वालों की भीड़ को वह चीरता हुआ रामबाग की ओर बढ़ रहा था और प्रत्येक मनुष्य को बड़े ध्यान और रुचि के साथ देखता जाता था, मानो फिर उसे यह चहल-पहल, यह रौनक देखने को मिले भी या नहीं। उसको हर एक के चेहरे पर मृत्यु की परछाईं दिखाई देती थी। हर एक आवाज़ उसे मातमखाने की आवाज़ सुनाई देती थी।

'क्या मैं कुछ दिन और जीवित रह सकता हूं ?' बार-बार उसके भीतर यही इच्छा जागने लगती। सोचता—मरने की बजाए इन दोनों को मार भाग जाऊं तो अच्छा होगा। परन्तु फिर विचार आता—और

चार दिन जीवित रहने पर क्या बना लूंगा। एक खूनी भगोड़े के रूप में मैं आखिर कितने दिन तक छिपा रहूंगा ? और शान्ति को ? आह ! उस जीवित को मृत्यु के मुंह में धकेलकर, मैं कहीं भी सुख से रह सकूंगा ? उसकी चीखें और आहें क्या मुझे चैन से रहने देंगी ? नहीं, नहीं, मैंने इस व्यर्थ और एक प्रकार से समाप्त हो चुके हुए जीवन को बचाकर क्या करना है—मैं अवश्य मरूंगा।'

मार्ग में पता नहीं उसके मस्तिष्क में क्या आया। टाऊन हाल के निकट पहुंचकर वह एक बिजली के खम्बे के नीचे खड़ा होकर, जेब में से कागज़ और पेंसिल निकालकर लिखने लगा—

"मैंने बिना किसीके इशारे पर—अपनी इच्छा से गोपालसिंह और जमना का खून किया है और इसके पश्चात अपना। मेरे और इनके कार्यों का यही फल होना चाहिए था।

—प्रेमचन्द"

कागज़ को जेब में डालकर वह इन्हीं विचारों के उतार-चढ़ाव में डूबा हुआ रामबाग पहुंच गया। जमना के मकान से थोड़ा पहले ही एक कोठे पर से मधुर संगीत की झंकार और उसके साथ ही किसी के गले में से रसीली आवाज़ निकलकर चारों ओर गूंज रही थी। ऐसी आवाज़ों को प्रेम बड़ी चाह के साथ सुना करता था, परन्तु आज उसके कानों को यह अच्छी नहीं लग रही थी। वह सोच रहा था—संसार दुःखी है, संसार का हर एक जीव दुःखी है, सारी सृष्टि दुःखी है और प्रकृति की हर वस्तु दुःखी है, फिर इस दुःख की घड़ी में किसको संगीत अच्छा लगता है, इसे बन्द क्यों नहीं कर दिया जाता।

जमना का मकान आते ही उसने जेब में पड़े हुए रिवाल्वर की पकड़ मज़बूत कर ली, परन्तु उसने उपर जाने पर देखा कि ताला लगा हुआ था। बूढ़ी डायन भी कहीं नहीं थी। शायद खाली समय पाकर किसी और की दलाली करने चली गई थी। उसको ध्यान आया कि जमना इस समय अवश्य ही गोपालसिंह के मकान पर होगी। 'चलो दोनों इकट्ठे ही यमलोक को जाएंगे' ऐसा सोचकर वह वापिस मुड़ा और सुनियारों वाली गली की ओर चल पड़ा।

वहां पहुंचकर उसने देखा कि गोपालसिंह का दरवाज़ा खुला था

और भीतर से बातचीत की आवाज आ रही थी।

अन्धेरे में ही एक कोने में जहां कुछ लकड़ी के तख्ते पड़े थे, बातें सुनने के विचार से, वह छिप गया।

उसको अधिक समय तक प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ी। अभी पांच मिनट भी नहीं बीते थे कि सीढ़ियों में से किसीके नीचे उतरने की आवाज आने लगी। उसने अपने-आपको और अच्छी तरह छिपा लिया।

उसने देखा आगे-आगे गोपालसिंह और उसके पीछे जगता भाई, दोनों ही मुख्य द्वार से निकलकर एक ओर को चल पड़े हैं। दोनों ने एक-एक पोटली बगल में ली हुई है।

प्रेम के लिए अपना काम करने का यह अच्छा अवसर था। सारी गली में अन्धेरा और एकांत का वातावरण था। उसने रिवाल्वर को जेब में से निकालकर अपने हाथ में ले लिया, परन्तु उसका हाथ इतना कांप रहा था कि उसके लिए रिवाल्वर को सम्भाल सकना कठिन हो गया। उसका सारा शरीर कांप रहा था और पसीना निकल-निकलकर पैरों के रास्ते से चू रहा था। उसको अपने हृदय की धड़कन इतनी ऊंची सुनाई देने लगी कि वह डरने लगा कि कहीं इसको सुनकर दोनों वापिस न आ जाएं।

टांगों पर काबू पाकर वह दबे पांव उनके पीछे-पीछे चलने लगा। उसने सोचा कि यहां से बाजार निकट है, कहीं गोली चलने की आवाज सुनकर लोग न आ जाएं। इसलिए गली के बीचों-बीच पहुंचकर निशाना लगाऊंगा।

'यह दोनों इस समय जा किधर रहे हैं?' सोचता हुआ प्रेम उनके पीछे-पीछे कुछ दूरी तक ही गया था कि उन दोनों में से किसी के मुख से उसने शान्ति का नाम सुना।

'हैं! तो क्या यह मेरे घर ही जा रहे हैं? [illegible] होगा। तब तो मैं बेखटका हो वहीं इनका काम तमाम करूंगा।'

वह तनिक और उनके निकट होकर चलने लगा। [illegible] आवाज आई, "परन्तु शान्ति मान जाएगी?" [illegible] आई, क्यों नहीं मानेगी। मैं…कह दूंगी।"

पहली आवाज गोपालसिंह की थी और दूसरी जगता की। [illegible]

को पूरा वाक्य सुनाई न दिया परन्तु जो कुछ उसने सुना उससे वह समझ गया कि करीम की बात का प्रत्येक शब्द सत्य है। इस समय यह दोनों ही अपने पाप के जाल में शान्ति को फांसने के लिए जा रहे हैं।

उसका खून उबलने लगा। रिवाल्वर को उसने और अधिक मज़बूती के साथ पकड़ लिया।

थोड़ा और आगे जाकर फिर आवाज़ आई, "जमना! आज सायंकाल को जिस समय वह मेरे मकान पर आई थी, मैं प्रेम वाले गहनों को ईंटे उखाड़कर निकाल रहा था, मेरे तो हाथ-पांव सुन्न होने लगे। मैंने सोचा पुलिस आ गई है···परन्तु।"

दूसरी बात भी साफ हो गई कि गहनें इसी दुष्ट ने लूटे हैं, प्रेम को इस बारे में अब कोई शक न था।

इसके पश्चात बाज़ार आ गया। रोशनी आ जाने से प्रेम काफी पीछे रहकर चलने लगा, जिससे वह और कोई बात न सुन सका।

उसने जो सोचा था सच निकला। दोनों उसके घर की ओर ही जा रहे थे और अन्त में जा पहुंचे।

घर के निचले हिस्से में गैसों की रोशनी हो रही थी। बाराती खाना खा रहे थे, जिसके कारण से काफी शोर-गुल था। ऊपर वाली छत को भी लोगों से भरी देखकर और अपने घर से ऊंची-ऊंची आवाजें आती देखकर प्रेम का हृदय धड़कने लगा कि मेरे घर में इतने लोगों का क्या काम। जमना और गोपालसिंह ऊपर चढ़ गए और प्रेम नीचे ही एक ओर को होकर खड़ा हो गया, उसने सोचा कि जब दोनों ऊपर से होकर वापिस आएंगे तो उनके सिर पर जा सवार होऊंगा। बस, फिर मेरे रिवाल्वर की गोलियां होंगी और इनके सिर की खोपड़ियां।

४४

बाबू सुन्दरदास को हमारे पाठक भूले नहीं होंगे। न ही उन्हें उस समय का दृश्य भूला होगा, जब सुन्दरदास के जीवन में कभी न सुलझने वाली गुंजल पड़ गई थी। हां, वह समय जब उसका हृदय किसी

की भेंट चढ़ गया था, परन्तु उससे कुछ दिन पूर्व सामाजिक ढंग से उसके जीवन की गांठ किसी और के साथ पड़ गई थी।

शान्ति से मिलने और फिर जल्दी बिछुड़ जाने के पश्चात सुन्दरदास का जो साल-डेढ़ साल बीता, वह समय वास्तव में न सुख का समय कहा जा सकता है और न ही दुःख का। यदि हम प्रेम के भूखे हृदय को तड़पता देखकर कह दें कि वह दुःखी था तो यह अनुचित होगा, क्योंकि वह इस असहाय पीड़ा को सहन करता हुआ भी शान्त था, उसके हृदय में शान्ति का निवास था। दूसरी ओर जब हम देखते हैं कि उसका शान्ति के प्रेम-रंग में रंगा हुआ हृदय जल्द से जल्द किसी और के अधिकार में आनेवाला है तो हमें कहने के लिए बाध्य होना पड़ता है कि सुन्दरदास के जीवन में नाम-मात्र को भी सुख न था—वह अति दुःखी था।

शम्भूनाथ की साली से उसकी सगाई हो चुकी थी और विवाह का दिन निकट आता जा रहा था तथा ज्यों-ज्यों दिन निकट आता जाता था सुन्दरदास का दुःख बढ़ता ही जाता था। फिर जब उसे फुर्सत मिली तो विवाह की तैयारियां होने लगीं।

मनुष्य का हृदय कितना दुर्बल है और कई बातों में महाबलि भी है। इन दिनों ज्यों-ज्यों वह शान्ति को अधिक भुलाने की कोशिश करता था, त्यों-त्यों शान्ति की शान्त मूर्ति उसके हृदय में उतरती चली जाती थी। जब उसके विवाह को केवल एक सप्ताह रह गया था तो उसकी हालत यह थी कि उसे शान्ति के अतिरिक्त और कुछ दिखाई ही नहीं देता था और शान्ति के किसी समय के कहे हुए शब्दों के अलावा उसे और कुछ भी सुनाई न देता था। वह सब कुछ करते हुए भी वास्तव में नाटक के एक पात्र के समान कुछ नहीं करता था।

उसका हृदय दिन-प्रतिदिन दुर्बल होता जा रहा था। और उसका शरीर इस आत्मा की पीड़ा को सहते-सहते केवल हाड़-मास का पुतला मात्र ही रह गया था। यह शेष बचा हुआ था केवल एक आशा के बल पर। यदि उसको यह आशा न होती तो शायद वह कुछ भी न बचता, उसकी जीवन-लीला समाप्त हो जाती।

यह आशा कौन-सी थी? मिलन-आशा। वह जानता था कि जि-

शहर (अमृतसर) में उसने दूल्हा बनकर जाना है, वहीं शान्ति के ससुराल हैं। बेशक उसे शान्ति के अन्तिम पत्र को मिले वर्ष से भी अधिक समय बीत चुका था कि वह अमृतसर के किसी बहुत बड़े व्यापारी के इकलौते बेटे से विवाह दी गई है।

कई बार उसकी अमृतसर जाकर शान्ति से मिलने की इच्छा हुई परन्तु उसको इसकी आज्ञा न थी। शान्ति के पत्र के इन अन्तिम वाक्यों की वह अवहेलना नहीं कर सकता था—"सुन्दरदासजी यदि मेरे साथ आपका सच्चा और निष्काम प्रेम है तो मुझे भूल जाओ। मुझे मिलने या पत्र लिखने का हठ भी त्याग दो। जब कभी भी आपको इसकी ज़रूरत पड़े मुझे अपने हृदय में ही ढूंढ़ लिया करना मैं अवश्य मिला करूंगी, क्योंकि मैं आपके हृदय में हूं और आप मेरे हृदय में। हमारा शारीरिक मेल अर्थहीन है जबकि हम सामाजिक रूप में एक-दूसरे के लिए बेगाने हैं। ······अन्तिम प्रणाम।"

इतना कुछ होते हुए भी वह इसी आशा के बल पर जी रहा था कि अब जबकि मैं अमृतसर जा रहा हूं—ढूंढ़ने की इच्छा से नहीं, ढूंढ़े जाने के विचार से—तो कौन-सी बड़ी बात है अगर वहां मुझे शान्ति के दर्शन हो जाएं। उस देवी के बस एक बार के दर्शन मेरे शेष जीवन के लिए बड़े लाभप्रद होंगे। मेरे गिरते हुए हृदय को सहारा मिल जाएगा। उसके दो-चार वाक्य ही मेरे मन की दुर्बलता को दूर कर देंगे और जीवन की शेष यात्रा को तय करने के लिए मुझे नया बल, नया उत्साह मिलेगा। मेरी आत्मा कहती है कि अमृतसर जाकर मेरी उससे भेंट होगी और अवश्य होगी।

अन्त में उसकी प्रतीक्षा में दिन बीते और वह अमृतसर दूल्हे के रूप में पहुंचा।

बाबू शम्भूनाथ और देवकी की खुशी का ठिकाना न रहा। अपनी सुशीला के लिए इससे अच्छा घर और वर किसको मिलेगा।

रेलवे स्टेशन से लेकर लड़कीवालों के घर पहुंचने तक सुन्दरदास की आंखें रास्ते की भीड़ पर टिकी रहीं। कई बार उसकी इच्छा किसी से पूछने के लिए हुई परन्तु ज़बान न खुली।

बारात का बड़े जोश के साथ स्वागत किया गया, खूब सेवा

गई, क्योंकि एक तो शम्भूनाथ जन्म से अमृतसर का रहनेवाला था इसलिए शहर में खूब जान-पहचान थी। दूसरा उसने दो साल की नई नौकरी में खूब धन बना लिया था।

बारात के स्वागत आदि के पश्चात खाना खिलाकर बारातियों को बारात-घर में ठहराया गया। बारात को दो रात तक टिकना था। दूसरे दिन दोपहर को फेरे लिए गए और वरी तथा दहेज की रस्में भी पूरी हो गई।

रात का खाना खाने के लिए बाराती शम्भूनाथ के घर आए। खाना खा चुकने के पश्चात बाराती हाथ आदि धो ही रहे थे कि इसी समय एक घटना घटी जिससे रंग में भंग पड़ गई।

बिरादरी वाले जब बारात को खाना खिलाकर हटे तो ऊपर की छत से एक हांफती हुई स्त्री ने आकर कहा, "सुना है आपका दूल्हा डाक्टर है?"

"हां" में उत्तर पाकर वह कहने लगी, "तो उसे थोड़ी देर के लिए ऊपर भेज दो। मालिक मकान की पत्नी को चोट आ गई है, उसके सिर में से खून की नदी बह रही है और वह बेहोश पड़ी है।"

सुन्दरदास को बुलाने की आवश्यकता न पड़ी, वह पास में ही बैठा था। हाथ आदि धोने के पश्चात वह जूते पहन रहा था, जब उसने उपरोक्त के शब्द सुने। उसने एक आदमी को बारात-घर की ओर दवाओं का बक्सा लाने के लिए दौड़ाया। इसको वह हमेशा अपने साथ रखा करता था—दीन-दुखियों को डाक्टरी सेवा करने का पता नहीं उसे कब अवसर मिल जाए।

वह झटपट ऊपर पहुंचा। चारपाई के इर्द-गिर्द की भीड़ को हटाकर वह रोगी तक जा पहुंचा।

रोगी पर पहली निगाह पड़ते ही उसे काठ मार गया। क्षण भर के लिए तो उसकी सांस ही रुक गई। चाहे सिर में से अधिक खून बह जाने के कारण शान्ति का चेहरा बदल गया था, परन्तु सुन्दरदास को उसे पहचान लेने में अधिक देर न लगी।

उसने अपने मन और शरीर पर काबू पाकर अपनी हालत छिपाने की कोशिश की। उसको क्या पता था कि जिस शान्ति के दर्शन करने

के लिए पिछले डेढ़ वर्ष से उसकी आंखें बेचैन थीं, वह शान्ति उसको अचानक और इस हालत में मिलेगी।

जब उसने शान्ति को धर्मशाला में देखा था, तब शान्ति कुछ और थी, उसके अंग-अंग में से सुन्दरता के झरने बहते थे, आज शान्ति क्या थी ? एक हड्डियों का ढांचा मात्र।

सुन्दरदास का हृदय करूणा से भर आया। उसके भीतर से वैराग्य की नदियां फूट पड़ीं, जिनके वेग को रोकने के लिए उसने पूरा ज़ोर लगा दिया।

इसके साथ ही उसको ध्यान आया कहीं मैंने पहचानने में गलती तो नहीं की ? हो सकता है यह शान्ति न हो, कोई और ही हो। परन्तु उसका भ्रम जाता रहा जब कई स्त्रियों ने शान्ति का नाम ले लेकर पुकारना शुरू किया।

सुन्दरदास आया था डाक्टर के रूप में, परन्तु इस समय वह रोगी था, अति रोगी।

उसको अपने डाक्टरी कर्तव्य की याद और सबको कमरे में से चले जाने को कहा

४५

शान्ति लगभग सवा-घंटा बेहोश पड़ी रही। उसके हृदय की कुछ कम न थी, परन्तु उसके सिर की चोट ने उसके शरीर को श हीन बना दिया।

दोनों ही साथ-साथ के कमरों में मातम छाया हुआ था। शान्ति बेहोश पड़ी हुई थी और दूसरे में उसकी सास अन्तिम सां गिन रही थी। शान्ति को पता नहीं था कि उसका भाई और किस समय आए हैं। सुन्दरदास कब से बैठा हुआ उसकी नब्ज़ था, उसे इसका भी ध्यान न था।

वह बेहोशी के पर्दे पीछे अपने जीवन-नाटक की कई झांकि ती थी। उसको कुछ-कुछ होश आने लगी। विवाह से लेकर

की सारी घटनाएं स्वप्न की भांति उसके सामने से गुजरने लगी। सारे वैवाहिक जीवन में कोई सुख की घड़ी बीती है? उसका निराश हृदय सारे जीवन में इसकी खोज कर रहा था, परन्तु इतने लम्बे समय में उसे ऐसी एक भी घड़ी दिखाई न दी। दुःखों पर दुःख और कठिनाईयों पर कठिनाइयां इन्हीं से उसका वैवाहिक जीवन भरा पड़ा था।

पति का व्यभिचार, सुशीला का विश्वासघात, धर आदि की कुड़की, यह सभी मृत्यु का रूप धारण करके उसके आगे-पीछे घूम रही थी।

रिवाल्वर वाली बात अभी तक उसे याद नहीं आई थी, उसकी याद आते ही उसकी होशी फिर बेहोशी में बदल गई।

अब उसने अपने-आप को एक ऐसे स्थान पर देखा जहां अन्धेरा ही अन्धेरा था, जहां न हवा पहुंच सकती थी न रोशनी। इस समय वह एक ऐसे गहरे गड्ढे में पड़ी हुई थी जहां से निकलने के लिए वह काफी हाथ-पांव मार रही थी, परन्तु सब व्यर्थ।

जब मनुष्य का दुःख अन्तिम सीमा तक पहुंच जाता है तो उसे सुखों की याद आने लगती है। उस अन्धेरे, दम-घोटू स्थान पर पड़ी हुई शान्ति के चित्त-प्रवृत्ति पीछे को मुड़ी और वैवाहिक जीवन की निराशाजनक सीमाओं को लांघती हुई अन्त में अविवाहित जीवन तक जा पहुंची। वहां सुख ही सुख था, खुशी ही खुशी, भाई का सुखदायक स्नेह और भाभी का स्वर्गिक राज्य, न कोई चिन्ता और न कोई दुःख। नाज, प्यार, लाड़ और कभी-कभी भाभी संग अठखेलियां भी। छोटा-सा सुन्दर भतीजा, जिसकी छोटी-छोटी गुलाबी गालों पर के एक-एक चुम्बन में हजारों खुशियों के फुव्वारे बन्द थे। स्थान-स्थान के सैर-सपाटे। विशेषकर फिल्म की शूटिंग के समय उसके भाई और भाभी का तरह-तरह की वेश-भूषा पहनकर जाना और उनकी नाटक-लीला को शान्ति ने देखना, फिर देखकर फूले न समाना। ग्रीष्म ऋतु में पहाड़ों की सैर···।

पहाड़ों की सैर करते-करते उसका मन एक स्थान पर जाकर उलझ गया—धर्मशाला के हैल्थ आफिसर के मकान पर। उस प्रेम-पुजारी की बेचैनी पैदा कर देनेवाली बातें, फिर उस दिन दोनों का मिलकर सैर को जाना, आदि सभी बीती हुई घटनाएं ताजी होकर उसके सामने आ गईं। इस समय वह ऊंचे-नीचे राहों वाली एक पहाड़ी पर चढ़ रही थी,

अपना हाथ किसी प्रेम-रंगे हाथ में देकर हांफती हुई। उसके कानों में आज भी वही आवाजें गूंज रही थीं। फिर उसने सुन्दरदास को अपने साथ किसी पहाड़ी सड़क के किनारे एक बेन्च पर बैठे देखा। मानों इस समय भी उसका दायां हाथ सुन्दरदास के हाथ में था, जो दूसरे हाथ से शान्ति के माथे से वर्षा की बून्दों को पोंछ रहा था। इसके साथ ही उसके कानों में आवाज़ आई—प्रेम से व्याकुल गले में कम्पन पैदा करनेवाली आवाज़, "शान्तिजी!"

उसके होश लौटे आए। इसके साथ ही उसकी आंखें खुलीं, उसको ऐसा लगा जैसे उसने सचमुच किसी प्यार-भरे गले में से अपना नाम सुना है और इससे भी बढ़कर उसने सचमुच ही अपने हाथ को किसी प्रेम से घुले हुए हाथ में दबा हुआ पाया। इसके साथ ही उसके माथे पर किसीका रुमाल फिर रहा था।

उसकी होश लौट आई। उसकी आंखें लगभग आधी खुलीं। स्वप्न की हालत में नहीं, बेहोशी की हालत में भी नहीं, बल्कि होशी की हालत में आकर उसने वही कुछ देखा।

उसने धीरे-से आंखें और खोलीं, हाथ से पट्टी बन्धे हुए सिर को टटोला और उसकी थकी हुई निगाहें एक बार चारपाई के इर्द-गिर्द बैठे हुए लोगों के चेहरों पर घूम गई, परन्तु कौन-कौन बैठा है, इसे वह जान न सकी।

डाक्टर जो उसका हाथ पकड़े बैठा था, उसकी आंखें खुलते ही सबसे कहने लगा, "आप सब लोग चले जाओ, कहीं आप लोगों को देखकर यह फिर बेहोश न हो जाए, विशेषकर कलकत्ता से आए हुए भाई-भाभी को देखकर तो यह और भी चंचल हो उठेगी, जिससे हृदय की गति रुकने का भी भय है।"

सभी उठकर चले गए, केवल डाक्टर ही रह गया।

शान्ति ने आंखें बन्द करके जब फिर खोलीं तो उसके आस-पास कोई न था, केवल एक ही धुंधला-सा आकार उसके सामने था।

थोड़ी-सी और चेतना आने पर निश्चित रूप से उसने अपने दाएं हाथ को किसीके हाथ में देखा। रुमाल के साथ वर्षा की बून्दें नहीं, परन्तु बन्धी हुई पट्टी के नीचे से चू रहे रक्त को पोंछा जा रहा था।

दूसरे हाथ से आंखें मलकर जब उसने सामने बैठे हुए को बड़े ध्यान से देखा, तो उसने फिर आंखें बन्द कर लीं, जो कुछ उसने देखा था शायद उसे स्वप्न समझकर।

परन्तु आंखें बन्द करने से उसका स्वप्न वास्तविकता में बदल गया। इस समय फिर उसकी कानों में आवाज़ पड़ी, "देवीजी! होश में आओ न, एक बार मेरी ओर देखो, मुझे पहचानो।"

फिर आंखें खुलीं, फिर बन्द हुईं और फिर खुलीं। हर बार वही कुछ—वही प्रेम का देवता, वही मधुर आवाज़, वही हृदय को मोह लेने वाला चेहरा, वह हृदय को जानने वाली निगाह।

शान्ति के दोनों हाथों को अपने हाथ में लेकर डाक्टर ने फिर कहा, "शान्तिजी! मुझे पहचानो, मैं वही हू सुन्दरदास।"

इस नाम को शान्ति ने सुना और सुनते ही पूरा ज़ोर लगाकर आंखों को पूरा खोलकर डाक्टर की ओर देखने लगी। करवट बदलकर उसी ओर को मुड़ी जिधर डाक्टर बैठा था। इसके पश्चात् उठने की कोशिश करती हुई बोली, "आप···यहां···आप?" इसके साथ ही उसकी दृष्टि कई चीज़ों पर पड़ी—केसरी रंग की पगड़ी, हाथों में 'गाना' और केसरी रंग के छींटों पर। फिर सबसे पश्चात जिस वस्तु पर उसकी निगाह पड़ी—वह थे सुन्दरदास की आंखों से टपक रहे आंसू, जो केसर की छींटों को धो रहे थे।

शान्ति उसके रोकने पर भी उठकर बैठने की कोशिश करने लगी, परन्तु सुन्दरदास ने उसे उठने न दिया। शान्ति ने सुन्दरदास की बांह को पकड़कर उत्तेजित होकर पूछा, "सुन्दरजी! आप···आप सुशीला के पति···!"

"हां, देवी केवल तेरे आदेश की पालना करने के हेतु।"

"अच्छा!" कहते-कहते शान्ति के हृदय से एक दर्द-भरी निश्वास निकलने लगी, परन्तु उसने पूरी शक्ति लगाकर उसे भी रोक लिया—केवल उसके शरीर में तनिक-सी झनझनाहट-सी हुई।

सुन्दरदास ने फिर कहा, "भाग्य ने देवी की बड़ी कठिन परिक्षाएं ली हैं, मैं अपना सबकुछ लगाकर भी अपनी देवी···।"

बीच में ही बात को काटकर शान्ति कहने लगी, "सुन्दरजी!

सबकुछ समाप्त हो चुका है। अब इन बातों की आवश्यकता नहीं रही।"

सुन्दरदास का हृदय फटने को हो आया। उसकी आंखों में आंसुओं की झड़ी लग गई। उसके रोम-रोम में से पीड़ा के फुव्वारे फूट पड़े।

शान्ति के सिर पर हाथ फेरता हुआ वह बोला, "नहीं देवीजी! ऐसे मत कहो। मेरा हृदय फट जाएगा। मुझे क्या पता था आप इस हालत में हैं, मैं तो आपके आदेश···।"

शान्ति का ध्यान इस समय सुन्दरदास की बातों की ओर न था। वह सुशीला के बारे में सोच रही थी, वह सोच रही थी कि एक देवता और एक राक्षसी का यह संयोग कितनी देर तक निभेगा। दोनों का जीवन नष्ट हो जाएगा। सुशीला की चंचल प्रवृत्ति से वह भली-भांति परिचित थी।

यही सोचते-सोचते उसे आवाज़ सुनाई दी, "आह! स्वर्ग की देवी के भाग्य में यही कुछ लिखा था? काश! कि मुझे इसका पता होता।"

इस बात का जवाब न देकर शान्ति बोली, "सुन्दरजी! सुशीला मेरी सहेली है।"

"मैं अभी-अभी इसीके बारे में सोच रहा था।"

"मेरे से एक प्रण करो।"

"बताओ देवीजी।"

"सुशीला को हमेशा प्रसन्न रखोगे, उसको शान्ति की सहेली नहीं, बल्कि शान्ति का एक रूप ही जानोगे, उसके हरएक दोष और गलती को क्षमा करोगे, उसको सुखी रखोगे।"

"जी आपका आदेश मेरे सिर-माथे पर···परन्तु।"

"परन्तु का मतलब?"

"सुखी रखना और न रखना, मेरे बस की बात नहीं, यह तो कर्मों के हाथ में है। बाकी मैं अपनी देवी की हरएक बात को मानूंगा।"

शान्ति निरुत्तर हो गई।

सुन्दरदास फिर पूछने लगा, "भाई साहिब को मिलना है?"

"आ गए है ?"

"उनको आए तो पूरा घन्टा होने को है।"

"और सरला भी।"

"सरलादेवी और साथ मे बच्चा भी।"

"उनको जल्दी बुलाओ।"

सुन्दरदास ने आवाज़ दी। मोहन और सरला आ गए। बच्चा सो गया था। मोहन ने बहन का सिर भुजाओ मे लेकर आंसू बहाए और सरला शान्ति को गले से लगाकर चीख-चीखकर रोने लगी।

काफी देर तक किसीके मुह से कोई बात न निकली। फिर मोहन उसे दोबारा गले के साथ लगाकर आसू बहाते हुए बोला, "आह! शान्ति! मा ने तुझे जन्म दिया था, भाग्य क्यों न दिया?"

अपने दुर्बल हाथो से भाई के आसू पोछती हुई शान्ति बोली, "भैय्या! उसके बसकी बात होती तो सारे ससार का भाग्य मेरे को देकर जाती।"

"शान्ति तुझे क्या हो गया है, देखते ही देखते तेरी यह क्या दशा हो गई है?"

"भैय्या, मेरा भाग्य।"

सरला नहीं बोल पा रही थी, यह बात करने को होती तो उसका हृदय बाहर को उछल-उछल पड़ता।

मोहन शान्ति के सिर पर हाथ फेरते हुए बोला, 'कोई बात नहीं, मेरी भोली बहन! मन पर चिन्ता न लगाना। भगवान ने चाहा तो सब कुछ ठीक हो जाएगा, मैं बहुत सारा रुपया लेकर आया हूं। उस बदज़ात (प्रेम) की करतूतें मैं सुन चुका हूं। अब सब कुछ ठीक हो जाएगा।"

भाई की बातें सुनते-सुनते शान्ति का ध्यान किसी दूसरी ओर चला गया। उसे कुछ देर से भूल गई हुई बात को फिर से याद आ गई, उसी रिवाल्वर को जिसे सायंकाल को प्रेम पेटी में से निकालकर ले गया था।

मोहन कहने लगा, "शान्ति! इन डाक्टर साहिब को पहचाना है? पता है तुझे धर्मशाला में हम इनके मकान में......?"

मोहन की बात समप्त होने से पूर्व ही बाहर से गोपालसिंह और जमना अन्दर आते हुए दिखाई दिए, जो शान्ति को छोड़कर शेष सबके लिए अपरिचित थे। दोनों के हाथों में छोटी-छोटी परन्तु भारी पोटलियां थीं।

शान्ति को देखते ही दोनों हक्के-बक्के रह गए, क्योंकि दोनों ही उसे अच्छी-भली देख चुके थे।

लेटे हुए ही जमना ने दोनों हाथ फैलाकर जमना को बाहों में भर लिया, फिर गोपालसिंह को बड़े आदर और श्रद्धा से देखकर बोली, "आओ भाई साहिब ! मुझे तुम्हारी ही प्रतीक्षा थी, आप बिना कुछ बताए ही चले गए। तंग आकर मैं दरवाज़े में कुंडी लगकर चली आई······।"

इसके पश्चात शान्ति ने संक्षिप्त में अपने सिर में चोट लगने और प्रेम द्वारा रिवाल्वर ले जाने की बात दोनों को बताई।

'प्रेम रिवाल्वर लेकर गया है' यह सारे सुनकर सुन्न रह गए।

बुझने से पूर्व दीपक की ज्योति जिस तरह और अधिक तेज़ी से जलने लगती है, उसी तरह शान्ति इस समय अति दुर्बल होते हुए भी बढ़चढ़कर बातें कर रही थी, जैसे उसको कुछ भी न हुआ हो।

सुन्दरदास समझ रहा था कि शान्ति का अंतिम समय निकट है। वह नहीं चाहता था कि शान्ति अधिक बोले, परन्तु उसके रोकने पर भी शान्ति ने बोलना जारी रखा।

उपरोक्त बातों को समाप्त करने से पूर्व ही मोहन की ओर देखकर शान्ति इस तरह बोलने लगी, "आपके अतिरिक्त भैय्या, मेरा एक और भी भाई है" कहकर शान्ति ने गोपालसिंह की ओर देखा। फिर वह एक ही सांस में बोलती गई, "इन जैसा देवता और मेरी (सरनकौर और अपने साथ भींचती हुई) बहन जैसी देवी कहां मिल सकती है। मैं इनको बड़ा प्यार करती हूं, मेरे हृदय में इनके प्रति काफी आदर है। मेरा··· बस चले तो मैं इनको पल भर के लिए भी आंखों से ओझल न करूं। हां, आ गया याद। वह कहां गए ? भाई साहिब ! आपको मिले थे ? वह रिवाल्वर···हां ले गए थे। किसलिए ?······(फिर सुन्दरदास की ओर देखकर) मेरी सुशीला को क्षमाकर देना···उसने···उसने मेरे

साथ विश्वासघात……नहीं, नहीं उसने मेरे साथ विश्वासघात… नहीं, किया। बुरी संगत…श्राह! भगवान उसको क्षमा कर…।" कहते-कहते शान्ति एकदम हांफने लगी। उसका कांपना देखते ही देखते तेज़ होता गया श्रौर श्रन्त में उसका सांस टूट गया।

जमना श्रौर गोपालसिंह जिस काम के लिए श्राए थे, उसकी उन्हें याद ही भूल गई। उनका ध्यान केवल शान्ति के सिर पर बन्धी हुई पट्टी श्रौर उसकी बातों की श्रोर था। पट्टियां ऊपर तक खून से भरी हुई थीं, जिनके नीचे से भी रक्त चू रहा था।

सुन्दरदास ने सुशीला सम्बन्धी शान्ति के वाक्य सुने, परन्तु मतलब न समझा। तो भी उसको सुशीला सम्बन्धी कुछ शक जरूर हो गया। इससे पहले भी सुशीला के गुनाह क्षमाकर देने के लिए शान्ति उसे काफी कुछ कह चुकी थी।

मोहन श्रौर सरला विस्मय में पड़ गए थे। उनकी कुछ भी समझ में नहीं श्राता था कि भाग्य उनके साथ कौन-सा खेल खेल रहा है।

शान्ति की हालत को बिगड़ता देखकर सभी घबरा गए, परन्तु सबसे श्रधिक घबराहट जमना श्रौर गोपालसिंह को थी, जिनको चिन्ता थी कि शायद गुनाहों का प्रायश्चित करने का उन्हें श्रवसर भी मिलेगा या नहीं।

डाक्टर सुन्दरदास ने शान्ति को फिर चुप रहने के लिए कहा। इस श्रवसर को भगवान का वरदान समझकर उसने श्रपनी श्रौर जमना की पोटली को शान्ति के श्रागे उड़ेलते हुए कहा, "लो बहन जी, यह श्रपनी श्रमानत।"

शान्ति ने देखा, गोपालसिंह की पोटली वाला गहना, उसके खोए हुए गहनों से कहीं श्रधिक था। चाहे सुन्दरदास ने उनको बोलने के लिए मना कर दिया था, परन्तु फिर भी वह रुक न सकी। कहने लगी, "भाई साहिब! यह तो…यह तो बहुत श्रधिक है…सारे तो मेरे नहीं।"

गोपालसिंह श्रद्धा के साथ सिर झुकाकर बोला, "बहन जी! यह सबकुछ श्रापका ही है।"

इसके पश्चात जमना (जो उसके लिए सरनकौर थी) वाली पोटली खुली, देखकर तो वह श्रौर भी हैरान हुई। बोली, "बहन! श्रपना

जमना कंजरी का सब कुछ लूट कर ले आई हो।" जमना ने कोई जवाब न दिया, उसके आंसू वह निकले।

शान्ति के सांस की गति तेज होती जा रही थी। उसने गोपालसिंह और जमना की ओर वारी-वारी से प्रेम भरी निगाहों से देखकर कहा, "भगवान इस जोड़ी को, रहती दुनियां तक रखे।"

इस समय तक घर के अन्य सदस्य भी, जो डाक्टर के कहने से वाहर चले गए थे, भीतर आ इक्कठे हुए।

वेचारा सुन्दरदास घबरा गया। वह सारी शक्ति शान्ति को बचाने के लिए लगा रहा था, परन्तु उसकी शान्ति जा रही थी। जमना अभी तक शान्ति से अलग नहीं हुई थी। उसके सिर को उसी तरह गोदी में लेकर वह चारपाई पर बैठी थी।

ज्यों-ज्यों उस अन्धेरी और भयानक रात की घड़ियां वीतती जा रही थीं, त्यों-त्यों शान्ति के जीवन-यात्रा का अन्तिम पड़ाव निकट आता जा रहा था।

इस समय वाहर से एक लड़खड़ाता हुआ व्यक्ति दरवाजे को जोर से धकेल कर भीतर आया, उसके चेहरे पर क्रूरता वाले चिह्न थे, यह था प्रेम।

आते ही उसने दाईं वांह को ऊपर खड़ा किया। उसके हाथ में पकड़ी हुई चीज़ को देखकर सभी भयभीत हो उठे। यह वही रिवाल्वर था।

आते ही उसने जमना की ओर निशाना साधा और इसके साथ ही एक धमाका हुआ। सारा घर धुएं से भर गया।

इससे पहले कि वह गोपालसिंह पर दूसरी गोली चलाए, कमरे में इतना धुआं हो गया कि उसके लिए तुरन्त ऐसा कर पाना असम्भव हो गया।

निशाना चूक न जाए, यह सोचकर वह कूदकर गोपालसिंह के सिर पर आ खड़ा हुआ। रिवाल्वर की नाली अभी पूरी तरह गोपालसिंह के सिर तक पहुंची ही नहीं थी कि उसकी निगाह चारपाई पर पड़ी। जमना की वजाए शान्ति का कन्धा रक्त से लथपथ हुआ पड़ा था, जमना से चूककर गोली शान्ति को लगी थी।

शान्ति को देखते ही खूनी का शरीर सुन्न रह गया। रिवाल्वर उसके हाथ से गिर गया और, "आह ! मेरी शान्ति !" कहते हुए वह सूखे हुए पेड़ के समान उसकी चारपाई पर जा गिरा।

पागलों की भांति मोहन शान्ति की ओर झुका और उसके कन्धे से बह रहे रक्त को हाथ से पोंछकर फिर क्रोध में आकर प्रेम की ओर लपककर बोला, "ओह निर्दयी। अभी ऐसा करना बाकी था?"

सरला बेहोश हो गई। सुन्दरदास के सिर पर यदि डाक्टरी कर्तव्य का बोझ न होता तो शायद वह भी उसी रिवाल्वर से अपने जीवन का अन्त कर लेता। उसने, गोपालसिंह ने, जमना ने और मोहन ने बारी-बारी से शान्ति को हिलाया-डुलाया। परन्तु शान्ति अब कहां थी! उसकी आत्मा इस दुःखमय संसार से सम्बन्ध तोड़ चुकी थी।

शान्ति की चारपाई के पास बैठा प्रेम, अभी तक आंखें फाड़-फाड़कर देख रहा था—कभी शान्ति के शरीर की ओर और कभी पास में बिखरे पड़े सोने की ओर। वह इस समय पत्थर का पत्थर बन चुका था। न रोता था न हंसता था, न ही अपने ऊपर हो रही आरोपों की बौछार का उसे कुछ ध्यान था। उसकी आंखें इतनी खुली हुई थी कि जोर लगाने पर भी वह झपकती नहीं थीं, न ही आंखों की पुतलियां हिलती थीं। उसका मस्तिष्क हिल चुका था—उस दो क्षणों से पागलपन के लक्षण दिखाई देते थे। उसका रंग इस समय जली हुई लकड़ी के समान था।

इस हालत में प्रेम कितनी देर तक बैठा रहा और किस समय उठकर चला गया? कोई नहीं जानता था। सबका ध्यान एक तो शान्ति की मृत्यु की ओर था और इसपर भी दूसरी ओर उसकी सास ने दम तोड़ दिया था।

प्रेम कहां चला गया? इसके बारे में आज तक कोई कुछ नहीं बता सकता। उसको न किसीने जाते देखा और न ही किसीने लौटते हुए।

○ ○ ○